दो शब्द

'जिन्दगी के घेरे' का तरुण लेखक हमारे समाज की नयी पीढ़ी की परिस्थितियों और उसके मन और मस्तिष्क के क्षोभ का प्रतीक है। आज का विचारवान नौजवान समाज की पीड़ा को अनुभव करता है और उस पीड़ा के कारणों के प्रति समाज के शैथिल्य और उपेक्षा से क्षोभ अनुभव करता है। यह क्षोभ उसमे विरोध और प्रतिहिंसा नहीं उत्पन्न करता, बल्कि समाज के प्रति एक कर्त्तव्य की अनुभूति जगाता है। कर्त्तव्य की उसी अनुभूति ने 'जिन्दगी के घेरे' के रूप मे अपने समाज का उद्बोधन करने का यत्न किया है।

उपन्यास के रूप मे 'जिन्दगी के घेरे' को बहुत बड़ी साहित्यिक या कलात्मक सफलता के उदाहरण के रूप मे पेश नहीं किया जा सकता। इसका कारण यह भी है कि हमारे समाज के नौजवानों को इतना धैर्य रखने का अवकाश नहीं कि कला को मॉजते रहे और काल को अनवधि मान कर अपनी बात कहने का अवसर आने की प्रतीक्षा करते रहे। प्रतीक्षा मे जो भी समय बीत जायगा, वह उनकी और उनके समाज की हानि ही है। इसलिए तरुण लेखक ने चारो ओर व्याप्त विषमताओं के प्रति अपना क्षोभ व्यक्त करने मे न तो कला को मॉजते रहने की प्रतीक्षा की है और न शोषितों की मुक्ति के संघर्ष के विज्ञान-मार्क्सवादी दृष्टिकोण की गहराइयों मे पैठ कर संभव और क्रियात्मक सुझाव देने की। वह काम है भी बहुत कठिन।

प्रकाशकीय

नए किन्तु होनहार लेखक श्री 'अनन्त' का यह उपन्यास प्रस्तुत करते समय मुझे काफी संतोष है। तटस्थ होकर समस्याओं या व्यवस्था का विवेचन लेखक ने नही किया है, न आज उसकी जरूरत है। अनाचार और अन्याय के प्रति तटस्थ रहना उन्हे बढ़ावा देना है। क्या जो कुछ लेखक ने सामने रक्खा है, वह समाज मे नही होता ? यदि होता है तो 'जिन्दगी के घेरे' हमारे इस वर्तमान समाज की ही करुण कहानी है।

हॉ, प्रयोग के लिए प्रयोग के भी दर्शन आप इसमे न पायेगे पर जिस घुली-मिली मीठी, भाषा का प्रवाह इसमे है वह निश्चय ही आप को ताजगी देगा।

'जिन्दगी के घेरे' प्रेमी-प्रेमिका के बन्द चौखटे मे रति की गाथा नहीं है। उसका कलेवर हमारे आप के साधारण जीवन से ही निर्मित हुआ है।

नवयुग ग्रंथागार,
छितवापुर रोड
लखनऊ

रामेश्वर तिवारी

सामने शिवनाथ बैठा था। वहाँ से गाँव की अमराइयों के पार तक रात उतर आई थी। टूटा हुआ चाँद अपनी धुँधली काया लिए आकाश में उठ रहा था। नीम की टहनियाँ हिल जाती और हवा की मद्धिम लहर उन दोनों को छूकर निकल जाती। गाँव उदास था।

'अच्छे तो हो शिबू जैसे दुबले हो गए हो!' नरेश ने उसकी ओर स्नेह से देखते हुए कहा।

शिवनाथ की भरी देह नहीं रह गई थी। कितनी ही स्मृतियाँ उसके मन को घेरती गईं। अमराई से लग कर खड़ा बरगद का वृक्ष, उसे लगा, बोल रहा है।

उसने कहा—'कैसे कह दूँ कि ये दिन ठीक नहीं बीते लेकिन नरेश 'अच्छा' क्या होता हैं, मै जान नहीं पाया।'

नरेश ने उसकी ओर देखा। वह विचारक की भाँति बोल रहा था, जैसे बहुत दिनों से सोच-सोच कर जिसका हल नहीं पा सका, वही कहने लगा हो।

'ऐसा टूटे हुए मन से क्यों बोल रहे हो?'

शिबू बोला—'वह अपनापन, जब हम तुम इन फैले-फैले खेतों की मेड़ों पर घूम लेते थे, जब उस बड़े बरगद के नीचे हम लड़ा करते और दूसरे दिन फिर लिपट जाते ·· वह सब क्यों नहीं होता, नरेश!'

वह उस अतीत को कुरेद रहा था जो साँप की भाँति

केंचुल छोड़ कर आगे बढ़ गया था। नरेश ने कहा— मैं जानता हूँ तुम्हारे मन को धक्का लगा है। तुम आगे बढ़ना चाहते थे, तुम कहते थे, मै इस दुर्गन्ध से भरे समाज से लोहा लूँगा, किन्तु नहीं ले सके। इसीलिए यह निराशा है जो तुम्हें पीछे की ओर ढकेल रही है। जानते हो यह सब क्यों है ?'

'क्यों ?' उसकी भारी पलकें फिर उठीं।

'तुम अपने से ही हार गए। जिन परिस्थितियों मे तुमने हिम्मत छोड़ दी, उन्हें तुम आसानी से दबा सकते थे। वही टीस है जो रह-रहकर टपक जाती है। मेरे दोस्त ! सदा पीछे की ओर देख कर कोई खुश नहीं रहा। उसे खंडहर ही दिखलाई पड़े हैं।'

नीम की पत्तियाँ फिर हिलीं जैसे वायु के स्पर्श से उन्हे रोमांच हो गया हो।

शिबू बोला—'नहीं-नहीं ऐसा नहीं है। मेरे बीच में दीवार तभी खड़ी हुई, मेरे पाँव में बेड़ियाँ उसी समय बँधीं जब मैंने ब्याह किया और बच्चे पैदा करता गया।'

'ब्याह ?' नरेश ने फैले-फैले अंधकार को देखते हुए कहा—'ब्याह भूल नहीं है शिबू, न वह बेड़ी है। बिना उसके व्यक्ति आधा है। वह आगे बढ़ सकता है किन्तु उसे दूनी शक्ति लगानी होगी, उसे दूना समय देना होगा !'

'लेकिन मुझे क्या मिला ? मैं तो पीछे की ओर ढकेला गया हूँ।'

'कभी नहीं !' नरेश ने दृढ़ता से कहा। 'तुम्हारी जिन्दगी पहले से अधिक मजबूत है। यदि तुम कहते हो तुम्हें कुछ नहीं मिला तो मै कहूँगा तुम्हे बच्चे मिले, तुम्हारी जिन्दगी के साथ कुछ और लोग हो लिए जो तुम्हारी बाहों को सहारा देंगे, देते होंगे।'

'पर मुझे लगता है मैंने अपना कुछ खो दिया है·······

'हाँ खो दिया है।' नरेश के स्वर में प्यार था। 'अतीत के लिए तुमने अपना वर्त्तमान खो दिया है। भाभी और बच्चों की ओर देखो, तुम्हे स्नेह मिलेगा। जो कुछ सामने है उसे कभी मत भूलो शिवू!'

वह उठा और शिवनाथ की बाहों को पकड़ कर कहने लगा, 'चलो, उन कछारों तक घूम ले। मुर्दा नहीं होना है मेरे दोस्त!'

दोनों चल रहे थे। ऊपर के चाँद की किरने बादलों की ओट से नदी के कछारों पर हरी होती जा रही थीं। धरती की झुकी हुई बालियाँ उठतीं और झूम जातीं।

मेड़ों पर होते हुए वे जा रहे थे।

नरेश ने कहा—'इन लहराते हुए खेतों की ओर देखो, जिन्दगी ऐसी ही है शिवू! उसे घेर दिया गया है। हमें इस घेरे को तोड़ देना है।'

शिवू ने कुछ कहना चाहा कि कुछ बच्चे आते हुए दिखलाई पड़े। वे पास आते गए और नरेश ने देखा उनमें गिरीश भी था।

'भइया' वह बोला—'मैं नीली दीदी के पास गया था।'

नरेश ने उसे प्यार से थपथपाया और कहा—'जा तुझे माँ बुला रही थी, दौड़ जा।'

और अनेक नन्हे-नन्हें पाँव मेड़ों की मिट्टी पर दौड़ गए।

शिवू ने नरेश को देखा और कहने लगा—'नीली तो उमानाथ की हो गई नरेश!'

'नीली!' नरेश ने जिस भावना से बचने के लिए भाई को हटा दिया था वही शिवू ने उभार दिया। वह जानता है कि नीली उमानाथ की है। वह कानपूर मे काम करता है। उसने कहा—'मैने कब 'नहीं' कहा? मुझे उससे क्या?'

इस बार शिवू हँस पड़ा—'यह तुम कह रहे हो? मै जानता हूँ नरेश कि तुम्हारे अन्दर क्या है?'

नरेश मौन था। शिवू ने फिर कहा—'नीली क्यों दूसरे की हो गई दोस्त ?'

नरेश के पोर-पोर में एक दर्द फैल गया। आग की गर्म लपटों की भाँति पिछले दिन आँखों में लहर गए। '""आम की नरम डालियाँ और उस पर झूलते हुए दो दूध से धुले पाँव""" वह कहती—'छोड़ जाओगे तो प्राण दे दूँगी।'

'मैं नही जाऊँगा नील, तू चली जायेगी।'

'धत्' और वे गोरी उँगलियाँ उसके मुख को घेर लेतीं""""

कोहरे की भाँति वे रेखाएँ घनी होती गईं !

कुछ नहीं, कुछ नहीं—वह सब स्वप्न था।

किन्तु जैसे अन्दर कोई चीख उठा हो—वह सत्य था पागल, जो कभी नहीं मरेगा।

उसने शिवनाथ को पकड़ लिया और बोला—'लौट चलो शिवू, मै घर जाना चाहता हूँ।'

शिवू ने उसे देखा।

वे लौट रहे थे और गगन का चाँद बादलों मे छुपता जा रहा था।

उसके घर में पाँव रखते ही गिरीश पास आ गया और कहने लगा—'भइया मै नीली दीदी के पास गया था। जानते हो क्या कह रही थीं ?'

नीली ? उसे लगा उसके चारो ओर वह व्याप गई है। वह घिरता गया है, बाहर नहीं आ सकता !

राजेश्वरी गिरीश की बात पर हँस पड़ी। कहने लगी—'कुछ कहेगा भी कि क्या कह रही थी तेरी नीली दीदी !'

'कहती थीं माँ ! कल अपने भइया को लिवा लाना और यदि नहीं लिवा लाया तो बहुत पीटूँगी।'

'पीटेगी ?' नरेश ने उसे अपने पास खींच लिया। राजेश्वरी हँसती रही।

'भइया, तुम नहीं जाओगे तो वे मुझे क्यों मारेंगी ?'

नरेश हँसा, 'नहीं पगले वे तो तुझे प्यार करती हैं।'

'हाँ, वे जब भी आती है तो मेरे लिए जरूर कुछ लाती हैं।'

फिर एक जिज्ञासा जगी, 'वे कहाँ चली जाती है भइया।'

'कानपूर !......अपने घर।'

राजेश्वरी बोली—'चलो, खा लो तुम दोनो ?'

नरेश का मन स्नेह से भर उठा। यह घर, यह गाँव उसे अपने मे मिला लेना चाहते थे।

थाली रखते समय राजेश्वरी बोली—'एक बात कहूँ बेटा !'

नरेश ने माँ की ओर देखा। 'मै जानता हूँ तुम क्या कहोगी।'

'तू जानता है फिर भी चुप रह जाता है।'

नरेश ने कहा—'तुम्हारी उमर बड़ी लम्बी है माँ ! अभी जल्दी क्या है ?'

राजेश्वरी समझ गई कि बात को घुमा रहा है। उन्होंने कहा, 'ऐसी ही उमर लेकर और बहू को देखने की आस लिए तेरे बाबूजी चले गए। मैं भी चली जाऊँगी किसी दिन !'

नरेश मौन था। वह माँ की भावना को समझ रहा था किन्तु उसे लग रहा था कि कोई विवशता है जो उसे ऐसा नहीं करने देती ! वह क्या है ? क्या हो सकती है वह विवशता ?

वह खा चुका था। उठ गया। अपनी खाट तक आकर उसने लैंप की बत्ती को तेज कर दिया, जैसे कुछ खोज रहा हो। लेकिन यह क्या, उसे लगा, जो कुछ वह चाहता है इस रोशनी मे नहीं पा सकता। और वह चाहता क्या है ? उसके मन को हर ओर से कोई जकड़ता जा रहा है। और दीवारों के ऊपर धुँधली सी झुकी

हुई एक परछाईं बढ़ रही है, बिशाल होकर उसकी सारी देह को घेरती जा रही है !

वह किसकी परछाईं है ?

नीली की ? या पैंजो की ?

नहीं-नहीं, किसी को नहीं ।

केवल नारी की ! नारी की ।

उसने अपनी भुजायें फैला दीं । उनमे कुछ नहीं था। एक शून्य ।

उसने लैंप को बुझा दिया और कस कर आँखों की पलकें मींच लीं ....

सुबह होते ही कुओं पर पानी चलने लगा । बागों में जिन्दगी भर गई । सोंधी-सोंधी गन्ध छप्परों से फूट कर बाहर निकलती और हवा की हर सांस से लिपट जाती। ओखली के गीत ऊपर तक फैलने लगे । रेशम सी देह लिए मिट्टी से वस्त्रों में सुन्दरियाँ चल पड़ीं—कुओं पर, खेतों मे, कोठारों में !

नरेश बाहर बैठा था । महेश पंडित चले जा रहे थे 'राम राम सीता राम' कहते । डंडा, पत्रा काँख में दबाये, दोनों हाथों से सुरती ठोंकते हुए । मुँह काली-काली भुरभुरी पत्तियों से भर गया।

नरेश ने पूछा—'कहाँ चल दिये काका ?'

पंडित रुक गए । बोले—'अगले गाँव में रामदीन महाजन के यहाँ आज कथा है । वहीं जा रहा हूँ ।' एक लम्बी साँस लेकर उन्होंने फिर कहा—'अब क्या भइया, अब तो दुनियाँ से कथा वार्ता उठ रही है। कलियुग है भइया घोर कलियुग ।'

'लेकिन इस कलियुग में भी कुछ सतयुगी लोग तो हैं ही काका।'

'हाँ भइया, तभी तो दुनिया टिकी हुई है। और यह सब तो उसकी माया है।' सूने आकाश की ओर उँगली उठाते हुए वे बोले। जैसे कह रहे हों—उधर देखो उधर, मैं देख रहा हूँ।

और पत्रा हाथ में लेकर वे चले गये।

वहाँ महाजन उनका पाँव छुवेगा। मिठाइयों के थाल सजे होंगे। महेश आशिर्वाद देंगे, श्लोक पढ़ेंगे, पूजा करेंगे। फल महाजन का होगा। उसका व्यापार चमकेगा और महेश का व्यापार भी चलता रहेगा। इसी तरह यह सब होगा क्योंकि यह सब होता आया है। आगे क्या है? समाज कहाँ है? मनुष्य क्यों भूखा है, नंगा है? इसका इससे कोई सम्बन्ध नहीं। यह अपने में ही तुष्टि है। यही मुर्दंगी है। यही इन्सान का गला घोंट रही है। यह तुष्टि व्यक्ति तक सीमित है और वह भी हर एक तक नहीं, इसीलिए समाज खोखला है। इसीलिए इतनी गरीबी, इतनी पीड़ा, इतनी कराहें है।

नरेश ने भाई को पुकारा। वह दौड़ता हुआ उस तक आया।

नरेश ने कहा—'नीली दीदी के यहाँ नहीं चलेगा?'

'चलूँगा' और उसने बड़े भाई की उँगलियाँ पकड़ लीं।

सूर्य वृक्षों की पत्तियों पर, नदी के कछारों पर, हर जगह, हर छोर पर चमकने लगा था। धरती की गोद मे इन्सान थे। हल और बैल थे। धरती के अलसते अंग पर हरी-हरी चूनर थी जो लहर रही थी, जो झूम रही थी।

घर के भीतर घुसते ही नरेश को लगा, वह ऐसी जगह आ गया है, जिसकी दीवारें बोल रही हैं। जैसे उनके सीने मे दिल है और वह दिल कह रहा है—हम तुम्हें पहचानते हैं ...... वे नेह भरी बातें याद हैं ...... हमने वह सब छिपा रक्खा है।

उसे भी तो वह स्मृति रह-रह कर छू जाती है। हृदय के सबसे प्रिय कोर में उसने उस स्मृति को बाँध रक्खा है। वह उसे तृप्ति देती है। वह एक मादक छुवन है जो निरन्तर लगा करेगी।

गिरीश नीली से कह रहा था—'नीली दीदी! लो भइया आ गए। अब तो नहीं मारोगी मुझे ?'

नीली ने उसका मुँह दबा दिया। वह लज्जा से लाल हो उठी थी। बीच मे एक खाईं बन गई थी जिसमें ज्योति की हर किरन को अन्धकार की लहर काटती गई थी। किन्तु मन ? जिसने नेह भरा संस्पर्श पाया था, वह तो उस तिमिर में भी कुछ खोज-खोज कर पा लेता। उसके लिए कहीं कुछ नहीं था। खाईं एक समतल भूमि थी, क्योंकि वह अपने मन से प्यास की बात कह देती········

रसोईघर से नीली की माँ बोली—'कौन आया है रे गिरीश !'

'भइया चाची; मेरे नरेश भइया।'

वे बाहर निकल आईं। नरेश ने प्रणाम किया।

'ओह नरेश !' उन्होंने कहा ! जीते रहो बेटा। तू तो जैसे यह गाँव ही भूल गया। कलकत्ता गया है न, और हमारा गाँव का ही नाता है, हमें तू क्यों याद करने लगा ?'

'नहीं चाची ! तुम लोगों को भूल सकता हूँ। इस घर से मुझे जो मिला वह कहीं नहीं मिल सका।'

नीली खड़ी थी। उसने सुना, नरेश क्या कह रहा था। वह समझती थी कि उस भावना से जो झाँक रहा है वह कहाँ है, कौन है। एक सिहरन सारे शरीर मे व्याप गई।

चाची कह रही थी—'चल हट ! बातें बनाना खूब जानता है।'

नरेश ने नीली को देखा—सकुचाई, आँखों की पुतलियों में

कुछ कहती सी। कभी उन आँखों को उसने बड़े निकट से देखा था, घुँघराले केशों के बीच के उस मुख को चूम-चूम लिया था। अब दो व्यक्ति थे, एक दूसरे से दूर-दूर, दोनों ओर दहकन थी, अधूरी तृप्ति थी। झूम-झूम कर तैरते मेघ बिन बरसे उड़ गए थे। नीली उमानाथ की थी। नरेश किसी का नहीं था। कहानी के दो टुकड़े हो गए थे...

चाची बोलीं—'तुम दोनों बातें करो। मैं कुछ बना कर लाती हूँ।'

वे चली गईं।

नीली को लगा उसे भी नहीं रहना चाहिए! क्यों? क्यों? माँ भी तो कह गई है। लेकिन वह क्या बात करे? अपने मन की बात कह दे! कह दे कि वह सुलग रही है?

'पीली पड़ गई हो' नरेश ने कहा।

उसके होंठ हिले जैसे कहना चाहती हो—तुम्हे इससे क्या?' बोली—'पीली कहाँ मैं तो नीली हूँ?'

नरेश नही हँस सका। वह जानता था कि हास्य में सब कुछ पिया जा रहा है। उस हँसी के भीतर वह छटपटा रही है।

उसने कहा—'तुम मेरे लिए शून्य हो। कुछ नही हो। मैं सब कुछ भूल गया हूँ। भूला नहीं हूँ तो याद भी नहीं रखना चाहता।'

'सच कहते हो? अब मैं कुछ नहीं हूँ?'

नरेश को लगा, बिजली की कोई लहर आई और तन-मन को हिलाती गई।

'अब मैं मानूँ भी तो क्या होगा? कौन मुझे मानेगा?'

उसने स्वर को दबा कर कहा—'क्यों? क्योंकि मुझे बाँध कर बलि के लिए सौंपा गया है। मैं छूटना चाहती हूँ। बाँह दोगे?'

नरेश काँप गया। अभी वह बदली नहीं थी। उसका हास्य, उसका हठ वही था। वह क्या कह रही थी। वह कह रही थी जो नहीं हो सकता। केवल एक दिशा है—अन्दर ही अन्दर सुलगना। वह तो हो ही रहा है। नहीं नही वह सुलगन भी छलना है। अब कुछ नहीं होगा। अब उन रुई के गालों जैसी बाँहों को वह छू भी नही सकता।

नरेश ने मद्धिम स्वर मे कहा—'वह सब भूल जाओ नीली! वह असत् था।'

'लेकिन मैं इस सत् को नहीं चाहती, नहीं चाहती! जो मुझे मिला है।'

वह मौन हो गई। सूनी - सूनी सी वह नरेश को देख रही थी। जिन उँगलियों से उसने नरेश को छुआ था, वे अब भी थीं। वह भी पास ही था लेकिन वह नहीं छू सकती। उसने चाहा कि वह अपने भुज फैला दे, फैलाती चली जाए किन्तु जैसे वे झूल गए थे, उनकी शक्ति लुट गई थी।

नरेश दीवार की उस गोल छेद की ओर देख रहा था। दो ओर से चीटियों की पंक्ति चल रही थी। हर चींटी, हर चींटी से मिलती कुछ कहती और आगे बढ़ जाती। दो दिशायें थीं और मिलने वाली चींटियाँ दो ओर जा रही थीं। दिशाओं की दूरी बढ़ती जा रही थी······

नीली ने कहा—'अपना पता लिख दोगे?'

'पता?' नरेश ने काँप कर पूछा—'क्यों?'

'इतनी बात भी नहीं मानोगे?' स्वर में अदम्य पीड़ा थी।

नरेश दहल गया। पता लिख दिया। उदासी और बिछ गई।

चाची पकौड़ियाँ लाई और बोलीं—'हम गरीब हैं, और क्या दे ही सकती हैं?' उन्होंने गिरीश को पुकारा।

'नहीं नहीं, यह तो अमृत है चाची। इतना नेह तो कलकत्ते में कभी नहीं मिला।'

गिरीश खा रहा था। नरेश ने भी खाया।

नीली सोच रही थी, जो दुनियाँ कैना के फूलों जैसी होने वाली थी, वह क्या सचमुच सूख गई? हरियारी उसे नहीं छूयेगी, नही छूयेगी?

चलने लगा तो चाची ने कहा—'जाते ही भूल जाएगा तू, मै जानती हूँ।'

'नहीं चाची! मैं इस घर को कभी नहीं भूल सकूँगा। यहाँ मेरे अपने लोग हैं। यह दीवारे—इनकी मिट्टी सब कुछ मेरी अपनी है······

नीली चाहती थी वह उसे रोक ले, वह उससे कहे मत जाओ! मै तुम्हारी हूँ। किसी की नहीं थी और किसी की नहीं हूँ····ओ मान जाओ!

उसने देखा, उसके चारों ओर एक भँवर सी बन गई है। गोल-गोल लहरे, चकराती उफनती तैरती जा रही हैं···उफान के उस पार, भँवर की छोर पर नरेश है, और वह डूबती चली जा रही है। लहरों की गाज में, लहरों के फेन मे······

शिवनाथ स्टेशन तक आया ही। नरेश ने बार-बार कहा कि वह चला जायेगा, किन्तु वह नहीं माना। सोमा भाभी ने भी तो कहा—'साथ जाने में क्या है भाई जी! अब आप कब आयेंगे कोई जानता थोड़े ही है।'

'अच्छा भाभी, तुम्हारी इच्छा है तो कैसे टाल सकता हूँ। क्यों शिबू!'

शिबू ने उसकी ओर देखा और आँखों को दूसरी ओर घुमा लिया।

वह फिर बोली, 'इस बार आओगे तो सिर पर मौर धरवा के छोड़ूँगी, भाई जी। अब बिना बहू के नहीं रह सकते।'

शिबू बोला—'एक तो मैं ही बहुत पा गया हूँ तुम्हें लाकर, अब इसे भी बाँध देना चाहती हो।'

'नहीं शिबू! सोमा भाभी जैसी कोई मिल जाएँ तो आज ब्याह कर लूँ। समझे।'

सोमा हँस पड़ी। शिबू भी हँसने लगा। फिर वे दोनों स्टेशन आ गए थे।

गाड़ी आने में देर थी। उस छोटे स्टेशन के पीछे पीपल की छाँव मे दोनों बैठ गए। शिबू मौन था। उसका मन रीत नहीं पाया था। जब वह अकेला था। तब""खेतों मे घूम-घूम कर वे सबको छेड़ा करते—बूढ़ों को और नवेलियों को भी। अब सोमा है। तीन बच्चे हैं। वह अपने को बुढ़ापे के पास बढ़ता देख रहा

है जब कि वह नरेश का साथी है। सब कुछ दूर फिसलता गया है, नहीं लौटेगा। बस जिन्दगी से जूझना है किसी भाँति! नहीं......

उसने कहा—'एक बात कहूँ नरेश?.........लेकिन नहीं कहूँगा।'

'क्यों? कहो न।'

'सुनोगे तो हँस दोगे या बिगड़ जाओगे!'

'नहीं, कुछ नहीं कहूँगा!'

वह झिझकता हुआ बोला—'कलकत्ते में मुझे भी नौकरी दिला दोगे? मैं यहाँ नहीं रहना चाहता। मेरा मन ऊब गया है।'

नरेश उसकी ओर आश्चर्य से देखता रहा। बोला—'कलकत्ते के लिए रतनपुर छोड़ देना चाहते हो? यह धरती कलकत्ते से भली है भाई।'

'मैं यह नही कहता कि मुझे इससे नेह नहीं' लेकिन मन जो नही लगता। ऐसा लगता है जैसे बोझा है जो ढोए जा रहा हूँ। कितना सूना-सूना सा है यह गाँव!'

वह मौन हो रहा। उसके भीतर जो था उसने कह दिया। नरेश को पीड़ा हुई, इसलिए कि वह कलकत्ते को नहीं जानता। वह बोला—कलकत्ता क्या है, यह तुम नहीं जानते शिवू! फूस को आग की लपटों में जलते देखा है न? कुछ ऐसा ही है वह कलकत्ता और उस आग को कोई बुझाता नहीं, हर एक देखता है और देखता रह जाता है।'

शिवनाथ ने सोचा, वह उसे नहीं ले जाना चाहता। अभी वह जा भी तो नहीं सकेगा, लेकिन जायेगा। नहीं तो यह गाँव उसे काट खायेगा। इस धरती मे उसका मन जो नहीं रमता!

गाड़ी आ रही थी। दोनों स्टेशन पर आ गए। टिकटघर पर

भीड़ हो गई थी। नरेश ने शिवनाथ का हाथ पकड़ कर कहा—'भाई, सोमा भाभी और बच्चों को देखो। इस धरती को प्यार करो, इस जीवन को भी। ऊबो मत दोस्त, ये गाँव सदा ऐसे नहीं रहेंगे।'

जब वह गाड़ी में बैठा तो उसने देखा, शिबू हँस कर आँखों के आँसुओं को छिपाना चाहता है। उसने हाथ जोड़ दिए और कहा—'माँ और गिरीश को देखना शिबू और सोमा भाभी को प्रणाम कहना। फिर मिलेंगे।'

गाड़ी चीखी और सरकने लगी। शिवनाथ बहुत देर तक जाती हुई गाड़ी की काली रेखा को देखता रहा।

रेल भाग रही थी। साथ में तार के खंभे थे। छूटते खलिहान और अमराइयों में उसे प्यासी आँखों से देखती गाँव की भोली मुग्धाएँ। सब कुछ दौड़ रहा था, भाग रहा था और रेल के साथ-साथ ढलते हुए दिन का सूरज चलता था।

उसके सामने दो व्यक्ति बैठे हैं। उनके पावों के पास एक बुढ़िया है जो पाँवों को हटाने के लिए कहती है। वे गरजते हैं बुढ़िया चुप हो जाती है और आकाश का मद्धिम सूर्य्य नीचे की ओर झुका जाता है। मैदानों की हवा तीर की तरह अन्दर घुस कर चीख पड़ती है।

रतनपुर बहुत पीछे छूट गया है। किन्तु उस धरती में एक खिचाव है जो मन से उतरता नहीं पर जिसे घेरती गई हैं रूढ़ियों की काई भरी पर्तें—काली-काली जिन पर पाँव पड़ते ही मनुष्य दूर तक फिसलता हुआ चला जाता है।.......नरेश की आँखों में शिबू घूम गया—आशाओं के टूट जाने पर जिसने हिम्मत छोड़ दी है........नीली, साँझ की बिछती हुई धुन्ध की तरह जो हरदम हृदय मे रहा करती है....... वे सब कुछ दूर खिंचते जा रहे हैं।

कल भोर को हवड़ा आयेगा, आगे कलकत्ता होगा और फिर कारखाने, दफ्तर, जिन्दगी सब एक दूसरे मे मिल जायेंगे।

संतोष ? जीवतराम मलकानी का पुत्र अपनी मोटर मे बैठा कर कहेगा—यह चौरंगी है, इसकी रंगीनी मे मोहने की शक्ति है, विक्टोरिया मेमोरियल ......वह बालीगंज लेक, जहाँ सुन्दरियों का मांसल शरीर जल की लहरों मे विजली पैदा करता है ...

संतोष का समाज ?

नरेश सिहर उठा ! क्या वह अपनी स्थिति को भूल गया है ? वह उस ओर भटक रहा है, जहाँ उसे राह नहीं मिलेगी। चौरंगी—ऐश्वर्य की प्रतीक, जहाँ गरीबों का दम फूल जाता है !

वह जे० आर० मिल्स के स्वामी का पुत्र और मै एक मिल के, उसी के मिल का छोटा सा मजदूर अफसर... "नहीं-नहीं उन काले कमकरों का बाबू

उसे लगा कोई भयावनी छाया अपनी बली भुजाओं मे बॉध कर उसका गला घोंट रही है, सचमुच

रात उतर रही थी। डिब्बे मे विजली के लट्टू एकाएक जल उठे। दूसरे स्टेशन पर तीन विद्यार्थी आ गए। एक सफेद पोश युवक-दम्पति भी आया।

विद्यार्थी नवोढ़ा को घूर रहे थे। तीनों अंग्रेजी पोशाक में थे और अंग्रेजी मिली हिन्दी मे बोलते। एक ने दूसरे से कहा—'जरनी ड्राई नहीं रहेगी शंकर !' दूसरा जो 'स्क्रीन' की किसी तस्वीर पर ऑखे गड़ाए हुए था, मौन ही रहा।

तीसरा बोला—'रीता हेवर्थ की कोई पिक्चर इधर देखी पांडे, इतना सेक्स अपील तो मैने कहीं नहीं पाया।'

दरवाजे के पास तीन-चार देहाती खड़े थे। उनकी लाठियाँ खड़ी थीं। वे परस्पर धीमे स्वर मे बोलते और हँस देते। जब

कई बार उन्होंने ऐसा किया तो एक विद्यार्थी उनकी ओर देखने लगा। सामने 'फिल्मफेयर' का वह पृष्ठ खुला था जिसमें हॉलीवुड की कोई अभिनेत्री अधनंगी खड़ी थी। अपनी स्वीमिंग गाउन में। रंगों से भरी उस तस्वीर में देहातियों की आँखें दब-दबकर हँसने की चीज पा रही थीं। विद्यार्थी ने वह पृष्ठ बंद कर दिया और मुस्कराया।

तभी उनमें एक ने पूछा—'बाबूजी ई कौन देस के औरत रहीं?'

दबी सी हँसी हर चेहरे पर भर उठी। दूसरे लड़के ने कहा, 'यह अमेरिका की एक फिल्म एक्ट्रेस थी। अमेरिका का नाम सुना है न, जहाँ की सभ्यता सबसे बढ़ी-चढ़ी है।'

ग्रामीण मुस्कराए, जैसे उन्हे विश्वास न हुआ हो—'ई कैसी सभ्यता जहाँ की औरत बदन उघार के फोटू खिंचवाती हैं।' वे सोचते रहे।

एक किसान ने अपने साथी से पूछा—'तुम्हारी ओर भूमि-दान चल रहा है कि नहीं भाई?'

'खूब चल रहा है भइया! जइसे ई गाड़ी चल रही है औ चलते-चलते टीसन पर धस्स से रुक जाती है।'

सारा डिब्बा हँस पड़ा। जवान किसान ने वृद्ध से पूछा, 'भूमिदान का मतलब क्या है? क्या सबको बराबर जमीन मिलेगी और ई साधू बाबा कौन हैं जो आजकल चारो ओर घूम रहे हैं।'

वृद्ध कुछ नहीं बोले। वे इतना जानते थे कि भूदान हो रहा है लेकिन उसका मतलब क्या है यह तो उनको भी पता नहीं था। जमीन लोग दे रहे हैं, कागज पर लिख-लिखकर खूब दान हो रहा है लेकिन क्या सचमुच जमीन का बँटवारा होगा, सबके पास जमीन होगी, यह तो कोई नहीं जानता था।

बाबा को चुप देख कर युवक ने कहा—'ई बाबू से पूछो सायत बता दें।'

वृद्ध ने नरेश से पूछा, 'बाबू भूमिदान के मतलब क्या है ? हमारी ओर ई दान आजकल खूब चल रहा है।'

नरेश ने उन भोली आँखों को देखा और बोला—'साधू गाँधी जी के एक चेला हैं जो उनका सपना पूरा कर रहे हैं।'

विद्यार्थियों ने नरेश की ओर देखा। वृद्ध बोला, 'ऊ कौन सपना रहा बाबू ?'

'सपना ?' एक लड़के ने बीच में दखल दिया, 'कि सेठ भी सुखी रहे और मजदूर किसान भी। कोई किसी के धन की ओर न देखे। जो लोग गरीब हैं उनको इतना मिल जाय कि आराम से जिन्दगी कट जाय। उसी के लिए जमींदार लोगों से थोड़ी-थोड़ी जमीन ली जा रही है, जो बाद मे बाँट दी जायगी।'

युवक किसान ने पूछा, 'लेकिन बाबू ई लोग जमीन कैसे दे रहे हैं, यही तो हमारा खून पीते थे न ?'

नरेश मुस्कराया, 'उनका दिल बदल गया है। जैसे पुराने जमाने के महात्मा लोग मनुष्य का चोला बदल देते थे वैसे ही आजकल के बड़े-बड़े महात्मा पैसेवालों का दिल बदल देते हैं।'

वृद्ध हँस पड़ा। विद्यार्थियों को भी आनन्द आया। किसान कहने लगा—'इसीलिए राजा-रईस लोग जो जमीन दान में दे रहे हैं—कोई टूटी-फूटी गढ़ी है, कोई काँस का जंगल है; और कहीं पचीसों साल से कूड़ा फेका जाता रहा है।'

नरेश ने कहा—'दिल है न, धीरे-धीरे बदलेगा।'

बाहर रात घनी हो गई थी। हवा की घनी पर्तों को चीरती हुई रेल दौड़ती जा रही थी। सूनापन बढ़ने लगा। हरेक की आँखों में नींद थी और बातों का क्रम टूटता गया था !

देहातियों ने अपनी लाठियाँ सँभाली और अगले स्टेशन पर उतर गए।

नरेश ने बिस्तर बिछाया। वह दम्पति दूसरी बेंच पर ऊँघ रहा था। बिजली के जलते लट्टुओं को घेर कर पतंगे ढेर होते जा रहे थे। सब कुछ सूना-सूना था। उसकी आँखों की पलकों में झुकन थी और वे एक दूसरे को छूने लगी थीं…

भोर को आकाश बिल्कुल साफ था। पूरब से किरनों का झरना बह आया था। उसने देखा, साथ-साथ दौड़ रही थी बंगाल की हरी-हरी धरती। आदमी फावड़े और बैल लेकर जूझ रहा था। धरती का बेटा इन्सान माँ को सोना बना रहा था और मां अपने बेटे की मेहनत पर झुकी-झुकी बालियों में झूम रही थी।

यह हवड़ा आ गया। गुञ्जान और संकुल।

यह कलकत्ता है—गरीबी और भुखमरी का घर, दूधिया …च का स्रोत! यहाँ मौत ऐंठ-ऐंठ कर मिलती है। यहाँ …बड़ी फैली इमारतें हैं और हर इमारत में आदमी भरा …ा है। यहाँ छज्जों में साँस लेता आदमी भी बेचैन है, यहाँ …की इमारतों की कोठरियों में बसता इन्सान भी पीला पड़ …है। यहाँ रोशनी की कमी है, यहाँ हवा की कमी है, …कमी को सड़ाँध पूरा करती है, उस कमी को तपेदिक पूरा …ी है।

यह कलकत्ता है।

इधर नरेश की बस्ती है। उस बस्ती में एक इमारत है। …मारत के हर कमरे में मनुष्यों की अधमरी बोलती लाशें …है। यह लाशें मरती नहीं, इसी तरह बोलती रहा …हैं।

सीढ़ियों पर पॉव रख 'कर नरेश ऊपर पहुॅच गया है। श्यामू उसे देख कर उसके पास दौड़ आया है और नरेश ने उसे वॉध लिया।

'आराम से तो आए वावू ?' श्यामू ने नरेश को छोड़ते हुए कहा।

'हॉ श्यामू वहुत आराम से ! तुम तो ठीक हो ?'

'और वापू ?' श्यामू ने हॉ करते हुए फिर प्रश्न किया।

'हॉ मंगल मिले थे ! तुम्हे वहुत पूछ रहे थे।'

श्यामू ने नरेश की ऑखों में देखा, जैसे उसे अपना बूढ़ा वापू मिल गया हो। और उसकी ऑखों मे तस्वीरें दौड़ रही थीं—अपने गॉव की, अपने वापू की, अपनी धरती''''''

संतोप मलकानी प्यानों पर था । संगीत की लहरियाँ उठतीं और वातावरण को परिव्याप्त कर रिसरिस कर विलीन हो जातीं।

नरेश को देखते ही वह उछल पड़ा। 'हल्लो, तुम आ गए ?'

'यह तो तुम देख ही रहे हो । लेकिन तुम्हे अकेला पा रहा हूँ।'

संतोप ने उसे विठाते हुए कहा—'माया दारजिलिग चली गई और मिसेज कौल के पतिदेव आ गए हैं। शायद वह भी चली जायेंगी।'

'लेकिन पैंजी ?'

मलकानी हँस पड़ा । 'डा० खेमराज को भूल गए ? प्रो० खेमराज के चंगुल में नारी सब कुछ भूल जाती है । तुम होते तो.......

नरेश ने वीच में ही कहा—'मेरे रहने से क्या होता ? एक हफ्ते पहले भी तो मैं था। याद नहीं, पैंजी से मेरा परिचय तुम्हीं ने कराया था।'

संतोप ने सिगरेट जलाई और क्षण भर मौन रह कर वोला-'यह सच होते हुए भी क्या तुम कह सकते हो कि तुम पैंजी की ओर नहीं खिंचे या उस खिंचाव का कोई उत्तर नहीं मिला। यदि मिला तो वीच मे मैं कहीं नहीं हूँ दोस्त। इसकी मुझे ईर्ष्या भी नहीं है। मुझे और कुछ नहीं चाहिए। मैं इस दुनिया में अपनी हर भूख को मिटा सकता हूँ। वस, मैं संतुष्ट हूँ।'

नरेश उसकी ओर देखता रहा। वह जानता था कि सन्तोप ने जीवन के भीतर से कुछ पाने का प्रयत्न नहीं किया। जो ऊपर है, वही भीतर भी है वहुत भीतर, तल तक—यही उसका दृष्टिकोण है।

उसे लगा, मलकानी झूठा है और यदि वह जो अनुभव करता है, वही कहता रहा है तो वह सत्य होते हुए भी खोखला है, ऊपर तक फैले हुए खड़खड़ कर उठने वाले बॉस की तरह।

उसने कहा—'यथार्थ सुख व्यक्ति का नहीं समाज का होता है, कम से कम समाज से उत्पन्न होता है। तुम्हारी इस तुष्टि के परे, इस आनन्द के वाहर भी जिंदगी है और वह वैसी नहीं है इसे तो तुम मानोगे ?'

'मै उससे इन्कार नहीं करता। मैने जीवन के दो रूप देखे हैं, देखता हूँ। एक से मुझे प्यार है, दूसरे से घृणा !'

'हा हा हा !' नरेश हँस पड़ा। विन चाहे ही उसकी हँसी मे कुछ तीखा-तीखा सा था, जो संतोप मलकानी तक पहुँचा और उसे कुतरने लगा। 'मैं चाहता था कि तुम यही कहोगे। तुम्हारी घृणा से जीवन का वह दूसरा रूप जिसमे घुटन है और जो तुम्हारे चारो ओर फैल गया है, मर नहीं जाता। उसका अस्तित्व उसी भॉति बना रहता है, जैसी तुम्हारी मोहक जिन्दगी का। इसीलिए कहता हूँ तुम वस्तु के एक रूप को भूल जाते हो केवल दूसरा ही याद रखना चाहते हो।'

संतोष ने देखा, नरेश हँसकर गम्भीर हो गया है। वह जानता था, जीवन को केन्द्र मान कर जितना ही विचार करो, उलझन उतनी ही वढ़ती है। तो क्यों न उस उलझन से दूर ही रहा जाय।

वह बोला—'तो तुम मुझसे यह आशा करते हो कि मै समझूँ

कि जीवन मृत्यु ही है, रहने के लायक नहीं, संसार माया है और उस माया से छूटने के लिए मै तुलसी की भॉति राम की काल्पनिक मूर्ति को हृदय में बसा लूॅ। लेकिन मै इस दुनिया को माया ही जो नहीं मानता।'

नरेश सिहर उठा। क्या अनजाने में उसने ऐसा कुछ कह दिया है जो वह नहीं कहना चाहता था। किन्तु वह जीवन को माया माने, इसे जंजाल कह कर फड़फड़ाये, ऐसी भावना तो उसे लग कर भी नहीं रही।

उसने कहा—'मै यह कहॉ कहता हूँ मलकानी! माया की भावना मुझसे उतनी ही दूर है जितनी तुमसे, किन्तु इतना तो करना ही होगा कि सामाजिक गठन के कारण जीवन के जो दो पहलू दीख पड़ते हैं उनमें एक को मिटाया जाय, जिससे हम और तुम जीवन-चित्र के दोनों रूप देखें। दूसरे रूप को जिसे तुम नहीं देखना चाहते उसे ही पहले रूप की भॉति जिससे तुम्हें प्यार है, एक कर दिया जाय; तभी यथार्थ सुख का जन्म होगा और वह तभी होगा जब समूची मानवता एक हो।'

संतोप ने सिगरेट ऐशट्रे में रख दिया। फिर उठ कर बिजली का स्विच दबाया। शो रूम मे रेंग कर आने वाला अन्धकार रंगीन लट्टुओं की किरनों में तिरता गया। वह कुछ कहना चाहता था किन्तु बाहर पॉवों के उभरते चाप पास आते गए और पैजी तथा प्रोफेसर अन्दर आ गए।

'मि० नरेश?' दोनों ने कहा।

नरेश और मलकानी खड़े हो गए थे। नरेश ने कहा—'जी, आज ही आया और आज ही आप दोनों से भेंट हो गई।' अनजाने ही 'दोनो' शब्द पर उसने जोर दे दिया था।

प्रोफेसर ने उसकी ओर देखा और बैठ गया। नरेश को

ग्लानि हुई। क्यों उसने कह दिया। उसे न कह कर भी तो वह कुछ कह सकता था।

तभी रेखा आई। नरेश ने उसे देखा। रेखा ने हाथ जोड़ दिए। पैंजी उठ कर उसके पास चली आई और वे दोनों बैठ गई।

रेखा ने पूछा—'आप घर से कब आए?'

'आज सुबह आया हूँ।' नरेश ने देखा, वे दोनों एक साथ बैठी थीं—रेखा और पैंजी। एक संतोष की बहन, किन्तु उसके जैसी नहीं, न विचारों मे न दृष्टिकोण मे। और पैंजी? उसका मस्तिष्क झनझना उठा। उसने महसूस किया कि उसे गले में कुछ अटक रहा है, वह बोलना नहीं चाहता किन्तु उसे बोलना चाहिए!

नौकर चाय की ट्रे रख गया। उसने प्याले भी सजा दिए।

रेखा ने चीनी डालते हुए प्रोफेसर से पूछा—'कितनी शुगर दूँ?'

'मैं कम ही लेता हूँ।'

नीले ग्लोब के भीतर से छनती हुई रोशनी और चाय से उठती हुई भाप की रेखाएँ मिल कर एक होती जा रही थीं। उनका भी एक रूप था। उनका अपना आकर्षण।

संतोष ने चाय की एक घूँट लेते हुए कहा—'नरेश का यह कहना कि इस नई सभ्यता के दो रूप हैं मुझे ठीक नहीं लगता। यही नहीं सभ्यता को दो भागों में बाँट देना और उसके काले, भयंकर रूप की ओर रुख करना कहाँ तक ठीक है, इसमे भी मुझे सन्देह है।'

'जिसका अर्थ है' पैंजी ने कहा, 'कि ऊपर से इतनी प्यारी लगने वाली जिन्दगी, जो सभ्यता के कारण ही ऐसी लगती है, झूठी है और गंदगी से भरी हुई है। शायद यही कहना चाहते हैं मि० नरेश?'

नरेश मुस्कराया। संतोष मलकानी ने विवाद का छोर बढ़ाने के लिए ही ऐसा कहा था।

उसने कहा—'यह मेरी बात नही कही गई है मिस पैंजी! किन्तु मेरी आड़ में कही गई यह बात पूरी तरह से गलत भी नहीं है। वास्तव मे नयापन केवल अपना अलग अस्तित्व नहीं रखता, वह सदैव पुरानेपन से जुड़ा रहता है और इसीलिए हर पुरानी वस्तु पहले नई होती है। जब तक सड़ी हुई पुरानी वस्तु को अलग नहीं किया जायेगा नई वस्तु मिल भी नही सकती। इस नई सभ्यता का ढॉचा तो नया दिखता है किन्तु भीतर वही सड़न है, जिसे मै पुरानापन ही कहूँगा।'

खेमराज ने चाय ढालते हुए कहा—'तो आप यह कहते है कि इस कल्चर्ड दुनिया के दो रूप हैं?'

'हॉ, मै यही मानता हूॅ और मेरी इस बात मे भूल कहॉ है प्रोफेसर? क्या तुम इस सभ्यता के सर और धड़ को अलग-अलग नहीं देखते?'

प्रोफेसर बोला—'हमेशा से ये सर और धड़ अलग रहे हैं।'

संतोष मुस्कराया। उसकी बात को बल मिल रहा था।

नरेश ने कहा—'इसीलिए कहता हूॅ, यह सभ्यता नकली है। जो जिन्दगी इसके भीतर दिखलाई पड़ती है वह उन दोनों की, सर और धड़ की छटपटाहट है। जब तक ये नहीं जुड़ेगे तब तक कुछ नही होगा डा० खेम।'

प्रोफेसर मौन था। पैंजी को चोट पहुँची।

रेखा बोली—'नरेश बाबू की यह बात ठीक ही है। जिंदगी के दो रूप हो गए हैं। मनुष्य दो भागों मे बॅट गया है। हो सकता है, पैंजी कि हम उस दूसरे गंदे रूप की ओर से ऑखे फेर ले किन्तु वह सत्य हर स्थिति मे हमारी ऑखों के सम्मुख खुला पड़ा है।'

पैंजी ने रेखा की ओर देखा। वह समझती थी, रेखा उसकी बात ही कहेगी। किन्तु उसकी बात से उसके विश्वास को ठेस लगी। आँखों मे अविश्वास भर आया। वे आँखे जैसे कह रही थीं कि इस रंगीन दुनिया के विरोध मे जो कुछ कहा जाय, झूठा है—शो रूम की मजेदार बहसे, बिजली के पंखे के नीचे नीले ग्लोब की खूबसूरत रोशनी और दूसरे की बाहों को छूकर रोमांच हो आना! क्या यह सब झूठा हो सकता है? नहीं, कभी नहीं—बहुत भीतर तक उसके अन्तर में कोई चीख उठा, ऐसा कभी नहीं हो सकता!

ये सच है—कासमेटिक्स के बीच में महक उठने वाला जीवन झील के लहरते जल में तैर उठने वाली मांसल देह, यह छलकती रंगीनी, आँखों की रसमग्न पुतलियों मे दो और पुतलियों का पैठ जाना!!!

रेडियो से धीमा-धीमा स्वर उठ रहा था। उस वातावरण मे संगीत की मंदिम लहरमयी गूँज, हृदय के पास तक बह कर चली आती और हर बैठा हुआ व्यक्ति सोचता इस सभ्यता मे कितना आकर्षण है, कितना खिचाव है, विज्ञान की इन छितरा उठी सांसों में जिनके हर संस्पर्श मे असीम रस है, अनन्त कान्ताएँ है जो पनपती हैं, मरती हैं और फिर नए-नए रूप लेकर, बल खाती हुई नागिन की तरह रेंग जाती है!

फिर वे देर तक बातें करते रहे और जब महफिल खत्म हुई तो मिस पैंजी ने जाते समय कहा—'मि० नरेश इस शोरूम की खूबसूरती, अन्दर रेडियो से उभरता हुआ संगीत कह रहा है कि इस नई सभ्यया की जिदगी इतनी ही रंगीन है।'

प्रोफेसर मुस्कराया किन्तु नरेश बोला—'मिस पैंजी इस खोखली सभ्यता की देन यह मादक संगीत ही नहीं है, उन

नरेश के जीवन की धुरी जहाँ घूम जाती है, वह जीवतराम का सूती कारखाना है। वहाँ मजदूर है। ऊँची चिमनियाँ है, जो धुआँ उगला करती हैं और बत्तख के डैनो जैसे सफेद कपड़ों का ढेर लगा देती हैं। उस ढेर के इर्द-गिर्द अधनंगे इन्सान रहते हैं जो उसे पैदा करते है, जो उसे अपना नहीं कह सकते! वह जीवतराम का तैयार माल है। वह जीवतराम का सूती कारखाना भी है। और वे सैकड़ों मजदूर—पसीने के सागर में भीग जाने वाले इन्सान, वे भी जीवतराम के हैं। पसीना मजदूर का वहता है। खून मजदूर का जलता है और माल जीवतराम का है। क्योंकि वे पूँजी के स्वामी है। क्योंकि पूँजी भाग्य से मिलती है! और भाग्य, भगवान देता है। जो पिछले जन्म मे सत्कर्म किए हुए होता है, जैसा कि 'पृथ्वी के देवताओं' के धर्म-ग्रंथ कहते है, वही इस जन्म मे सुख की राशि भोगता है, वही जीवतराम वनता है, वही सेठ होता है, वही पेशेवर पंडित होता है और जो पिछले जन्म मे पाप करता है, ब्राह्मण द्रोही होता है, सेठ द्रोही होता है वही इस जन्म मे मजदूर वनता है, वही खेतिहर है और वही दफ्तरों मे घुट कर मर जाने वाला बाबू वनता है।

यह दर्शन (philosophy) है उस समाज का, जो संस्कृति का पुण्य प्रतीक, विश्व को सभ्यता नाम की चीज देने वाला और अहिंसा का महामंत्र फूकने वाला है। इस दर्शन के दो केन्द्र

हैं—एक कारखाने (पहले जमींदार की हवेली भी थी) दूसरे मन्दिर और ब्राह्मण देवता ! यहीं इस दर्शन की मार्मिक व्याख्या होती है, यहीं सिखाया जाता है कि मनुष्यों मे सेठ सबसे बड़ा है और ब्राह्मण तो देवता ही हैं।

नरेश का सम्बन्ध मिल स्कूल (Factory School) से है यद्यपि इस सीख का एक अंश भी उसके मस्तिष्क में नहीं उतरा। आस-पास रेंगते हुए मजदूर, दफ्तर के बाबू, कपड़ों के सफेद गट्ठर यह सब कुछ वहाँ है। अधनंगी औरतें, भूख और जिन्दगी की टूटी कमर यह भी वहाँ हैं। ईंटों की बड़ी-बड़ी इमारतें जहाँ इतना सोना होता है कि आप उन्हे बटोर नहीं सकते, जहाँ इतनी गरीबी होती है कि आप उसे सोच नहीं सकते ....

वे टेलीविजन जो हजारों मीलों की फिसलती तस्वीरों को सामने खड़ा कर देते हैं, वे सिनेमास्कोप, बेतार के वे तार, हेलीकॉप्टर की उड़ाने—उनका उस जगह से क्या सम्बन्ध है, कैसा रिश्ता है उस विज्ञानी सभ्यता का इन कारखानों की इन्सानियत से, उन आदमियों से जिनकी जिन्दगी ने कभी उन हसीन रंगीनियों की एक झलक भी नहीं देखी, जहाँ आकाश के सूरज की कौंधती किरणें आदमी को बेजान होने से नहीं बचा पातीं .....

ऊपर हवाई जहाज के पंख तैरते हुए चले जाते हैं, धरती और आकाश के बीच में, लेकिन यहाँ कुछ नही बदलता, यहाँ आदमी पसीनों का है, हड्डियों का, मशीन का—और उन उड़ते जहाजों मे सेठ और राज्यपाल, नेता और मंत्री; फिल्मी सितारे और खिलाड़ी होते हैं; कोई व्यापार के लिए जाता है, कोई राजनीति का संदेश देने, किसी को मैच खेलने होते हैं और कोई शूटिंग के लिए उड़ता हुआ ऊपर ही ऊपर गुज़र जाता है,

जहाँ झील के नीले जल में पाँव डाले, बाँहों में बाँह देकर हीरो और हीरोइन प्यार करेंगे, आँखों में हँस देंगे, एक दूसरे को चूम लेंगे....

लेकिन यहाँ वह सब कुछ नहीं होता, क्योंकि आदमी नालियों के पास से आता है, मशीन उसका साथ देती है और फिर " फिर वह वहीं लौट जाता है, अपनी तपेदिकी बीवी के पास, अपने मरियल बच्चों के बीच या चकलों में जहाँ औरतें गर्मी और गिनोरिया में झूले हुए सीनों को छिपाए बैठी रहती हैं, वहीं वह बीड़ी पीता है, घरघराते फेफड़ों में हँस देता है और औरत की भूख मिटा कर अपने बाड़ों में लौट जाता है !

बाड़ों में ? जहाँ से जिंदगी शुरू होती है, जहाँ जिंदगी मर जाती है !

नरेश के सम्मुख हिलते हुए इन्सानों का समूह फैला था। हर दिन वह उन्हें देखता है, जब ऊपर वायुयान तैरते हैं, जब बाहर की सड़कों पर नई-नई मोटरों का झुण्ड चलता है, लेकिन वह कुछ नहीं कर सकता, उसके हाथों में बेड़ी है, उसकी देह जकड़ दी गई है और उससे छूटने के प्रयत्न पर भूख की बेड़ियाँ घेर लेंगी, तब वह क्या करेगा, तब ....

वह बाहर आ गया। हर आदमी काम में लगा हुआ था। हरेक दिल से मेहनत कर रहा था जैसे वह अपना फर्ज जानता हो, जैसे वह फर्ज से कभी दूर नहीं जायेगा........

किन्तु नरेश को लगा, उसे यहाँ से निकल जाना चाहिए, यहाँ से इतनी दूर जहाँ वह हड्डियों के ढाँचे न देख पाए, जहाँ आदमी हैवान की तरह न हो, जहाँ ... ...

अचानक कुछ दूरी पर मजदूरों ने काम बंद कर दिया। वे दौड़-दौड़ कर कुछ घेर कर खड़े होने लगे। बिजली की भाँति एक खबर फैली और उन सबके हाथ थमते गए।

नरेश ने वहाँ पहुँच कर देखा—सामने एक स्त्री पड़ी थी। दो आदमी पानी के छींटे दे रहे थे और सभी के चेहरों पर उदासी थी, जैसे उनके सीने पर किसी ने वजनदार पत्थर रख दिए हों!

'क्या बात है?'

'बाबूजी, मूर्च्छा आ गई है?'

'कोई बात नहीं' नरेश ने कहा—'सामने से हट जाओ, हवा आने दो।'

उसने फिर पूछा—'कोई इसे जानता है?'

एक मजदूर सामने आया।

दूसरा मजदूर सामने आया।

तब तक स्त्री हिली। मजदूरों मे जान आ गई।

मज़दूर ने कहा—'इसके पाँव भारी हैं, बाबूजी।'

'पाँव भारी हैं!' नरेश चौंक गया, 'तो यह काम पर क्यों आई?'

स्त्री की आँखे खुल गई। फिर बंद हो गई।

नरेश ने मजदूरों से कहा—'अभी इसे होश हो जायेगा, इसे घर तक पहुँचा आओ। इसके पति को यहाँ भेज देना! मुँह क्या देख रहे हो?'

'वह भी काम पर गया होगा।'

'दूसरे साथी को ले लो। उसके पास जरूर जाना, समझे? और भेज देना।'

किन्तु स्त्री ने आँखें खोलीं, उठने का प्रयत्न किया। एक ने पूछा—'कैसी तबियत है?'

वह उठ कर बैठ गई, बोली—'ठीक हूँ। अब काम करूँगी।'

नरेश ने डाँट कर कहा—'कुछ नहीं, जाओ। जहाँ रहती हो, आराम करो।'

भीड़ छँट गई। मजदूरों ने बड़ी मासूम आँखों से नरेश की ओर देखा, जैसे वे उसके बोझ से दब गये हों। काम होने लगा। स्त्री चली गई थी और मशीन की गरज मे कोई फर्क नहीं आया था !

नरेश अपने कमरे तक लौट आया। कुर्सी पर बुत की भाँति बैठ कर वह सोच रहा था। उसे कुछ अच्छा नहीं लग रहा था। आवाजे हो रही थीं किन्तु उसे बिलकुल सूना सा लगता। बगल के कमरे मे दफ्तर था। बाहर चपरासी था, अन्दर कुछ बाबू थे.....

ज्ञान चटर्जी फाइलों के बीच से सर उठाकर कह रहा था, 'तुम नहीं जानता रोबीन्द्र बाबू ! हम यहाँ सोरह बरीस से है। जो आदमी लेबर क्लास से सिम्पैथी दिखलाया उसे सेठ ने नहीं रहने दिया। यह सेठ का मिल है, सेठ का ! आदमी यहाँ मोशीन हो जाता है। लेकिन नोरेश बाबू तो मानता ही नहीं....

रवीन्द्रनाथ ने एक बार चटर्जी की ओर देखा और फिर काम में लग गया। हर दिन चटर्जी आता है। मेहनत से काम करता है और अपनी जिन्दगी की लम्बी ऊब को दफ्तर के साथियों में भरना चाहता है !

उधर टाइप मशीन पर उंगलियाँ घुमाने वाला आदमी खट-खट करता जाता है और कहता है—'चटर्जी बाबू, तुम्हारी घर वाली का क्या हाल है ; डाक्टर ने क्या बतलाया ?'

चटर्जी की आँखों मे ही नही सारे तन मे एक सिहरन भर गई। दफ्तर आकर वह सब कुछ भूल जाना चाहता लेकिन यह कैसे होता ! कैसे होता जब घर वाली को छठे बच्चे के जन्म के बाद खून ही खून आ रहा था। इस प्रश्न से उसके अंदर डाक्टर का वाक्य गूँज उठा—कंट्रोल के बाहर है। तुमने देर कर दिया बाबू।'

उसका चेहरा उतर गया, उसने कहा—'शोम्भुनाथ अस्पताल का डाक्टर बोलता है देर कर दिया। वह नहीं बचेगी लेकिन हमारा बच्चों का क्या होगा ? छोटा-छोटा तो है ....

उसके गले मे कुछ अटकने लगा। वह चुप हो गया। तभी चपरासी कहता है—'आप को नरेश साब बुलाते हैं।'

वह उठता है और नरेश के कमरे मे चला जाता है।

'आप के घर मे क्या हाल है ?'

'ठीक नही है नोरेश बाबू ! वह मर जायेगी।'

नरेश के मस्तक पर रेखाएं खिच उठीं। वह जानना चाहता है कि यह आदमी जिसकी घरवाली मर रही है, दफ्तर कैसे आया और क्यों इतनी सरलता से स्वीकार कर लेता है—वह मर जायेगी।

'आप छुट्टी ले लें चटर्जी बाबू।'

'लेकिन मेरा कोई लीव बाकी नही है। और ... और मेरे रहने पर ही क्या होगा ...'

नरेश ने उसकी ओर देखा और बोला—'पैसा मैं दूँगा बाबू ! आप शाम को मेरे पास आयेंगे।'

'नहीं-नही नोरेश बाबू, आप नही जानता। सेठ को पता चल गया तो हम नहीं रहने पायेगा। मै आप से कई बार बोला सिम्पैथी मत रखिए। यहाँ सिम्पैथी क्राइम है ... ...

और उसकी आँखें गीली हो गई।

'आप माफ करें माफ करें' कहता हुआ वह अपने कमरे मे चला आया।

शम्भू ने पूछा—'क्या काम था चटर्जी ?'

'कुछ नहीं जी।' चटर्जी बोला—'मै बार-बार नोरेश बाबू से बोलता हूँ—सिम्पैथी मत दिखलाओ, लेकिन मानता नही ... .
एक बीड़ी देना तो रोबीन.......

रवीन्द्र ने तीन बीड़ियाँ सुलगाईं, एक-एक चटर्जी और शंकर की ओर बढ़ा दीं।

चटर्जी बीड़ी पीने लगा और अपनी फाइलों को देखने लगा। सभी बाबू अपने काम मे लग गए। बीड़ी का कड़ुआ धुआँ ऊपर की छत तक टेढ़ा-मेढ़ा होकर उठ जाता और उसी तरह की कड़ुआहट उन बाबुओं के तन-मन को घेर लेती। यहाँ जिन्दगी के घेरे कितने तंग हैं। एक घुटन है जो छत से फर्श तक, आदमी से आदमी तक बेदर्द सी फैल गई है। उसी फैल की तह में ये बाबू हैं, ये दफ्तर हैं........

चपरासी ने नरेश से कहा—'एक आदमी मिलना चाहता है साब।'

'बुलाओ।'

एक काला आदमी अन्दर आया। कपड़े मैले थे और गालों की हड्डियाँ ऊपर खिंच आई थीं। उसने सर झुकाया।

'मुझे राधो ने भेजा है।'

'तो तुम राधो के आदमी हो। बड़े अजीब हो तुम कि उसे बच्चा होने वाला है और तुम उसे काम पर भेजते हो।'

पुरुष ने जैसे कहना चाहा—तो क्या करूँ ?

नरेश फिर बोला—'कल से उसे मत भेजना। वह काम करने लायक नहीं।'

'लेकिन खायेंगे क्या ?' राधो का पति बोला।

'खायेंगे क्या ?' नरेश के स्वर में कठोरता थी, 'यही बात तुम लोग हमेशा से कहते आए हो। खाने से बड़ी चीज जिन्दगी है।'

'मालिक' पुरुष ने गम्भीरता से कहा—'खाने से ही जिन्दगी है।'

नरेश ने उसकी ओर देखा। सामने वह पतला-दुबला आदमी था, जो मजदूरी करता था, जो फॉका करके जिन्दगी काट रहा था, लेकिन जिसकी बात का कोई जवाब नहीं था।

नरेश को बड़ी शर्म आई। उसने कहा—'ठीक कहते हो लेकिन जिन्दगी को बचाना है न? यह लो!' एक नोट देते हुए वह बोला—'उसे आराम से रखना। मुसीबतों मे हिम्मत नहीं खोना चाहिए।'

'बाबूजी' नोट न लेते हुए वह बोला—'आप किस-किस की तकलीफे कम करेंगे? हमारी बस्ती मे यही तो है। मेरे पड़ोसी का लड़का कल रात को चेचक से मरा और वह उसे नहीं बचा पाया, मेरे एक साथी का भाई मेरी बगल में सन्निपात में बर्राता है और उसके बचाने के लिए हम कुछ नहीं कर सकते·······

वह कहानी को और भी बढ़ाता लेकिन नरेश ने वह नोट उसके हाथों में भर दिया और बोला—'जाओ!'

वह चला गया।

इधर शाम घिर आई थी—वह शाम नहीं जो चीख-चीख कर कहती है—चले आओ, ओ चले आओ, कोई काफी हाउस मे मिरर के सामने वाली सीट पर तुम्हारी इन्तजारी कर रहा होगा, कोई घूम गई कमर मे बाहों का पाश डाले आरकेष्ट्रा की आवाज पर पॉव थिरका कर नाच रहा होगा, बल्कि वह शाम जो उबन की बेचैनियाँ लाती हैं, कारखानों से आदमियों के जत्थे बाहर कर देती है, बिजली के कुमकुमों से हट कर इन्सानियत के आबदार मोती उस शाम से लगे-लगे खून थूक देते हैं···

नरेश उठ गया। सड़क पर आदमियों का ज्वार था, बीड़ी के धुएँ थे, कमजोर फेफड़ों की खॉसियॉ थीं, रिक्शे थे, ट्रामें थीं, जिन्दगी का पूरा हंगामा था!

उसने बस का टिकट लिया। उसके पीछे एक लम्बी कतार, फिर आदमी, आदमी, चारों ओर आदमी ! भरी हुई ट्रामें, कसी हुई बसें, भागते रिक्शे—और हर चेहरे पर एक शिकन, किसी के बच्चे का जिगर बढ़ गया है, कोई आँखों में सुरमा डाले इशारा करती है, पैसे चाहती है··· नीचे सड़क पर झोली फैलाए आदमी भीख चाहता है ··· भीड़ बढ़ जाती है · किसी की जेब कट जाती है·· ····

बस मे एक पंजाबिन का पाँव कुचल गया। वह एक मोटी गाली देती है। आदमी भूल मान जाता है। लोग चुप हो जाते हैं। फिर शोर बढ़ जाता है। बस रुक जाती है। फिर चलती है। फिर रुक जाती है·

नरेश उतर गया और चलने लगा। उसके मस्तिष्क मे बातें रह-रह कर गरज जातीं—मालिक खाने से ही जिन्दगी है, खाने से जिन्दगी है, यहाँ सिम्पैथी क्राइम है, क्राइम है नरेश बाबू ! जैसे वे बातें नहीं थी, जलती हुई सलाखें थीं जो दिमाग में चुभो दी गई थी।

अगर ऐसा

किसी ने उसके सामने हाथ फैला दिए।

'नहीं है पैसे।' उसने डाँटा।

'मेरी बहन को तपेदिक है।' भिखारी बोला।

नरेश को एक झटका लगा। उसने एक दुअन्नी दे दी। माँगने वाला भला मनाता हट गया। नरेश बुदबुदाया, मेरी बहन को तपेदिक है ! से दुअन्नी से क्या होगा ? क्या वह दुअन्नी, स्ट्रेप्टोमाइसिन की सुइयाँ है ? क्या वह हरे-भरे हसीन पहाड़ है या वह दुअन्नी फलों का, दूधों का, विटामिनो का खाना है········

फिर उसके सामने हाथ फैल गए। इस बार कई हाथ थे। शायद उन्होंने देखा था कि वह दाता है।

'बाबूजी पैसे दे दो !'

'दाता भीख' भीख'

'भूखी हूँ।'

'नंगी हूँ' उसके स्तन खुले थे।

उसने देखा, वह घिर रहा है। वह तेजी से कदम बढ़ा कर भागने लगा। वह दूर जाना चाहता था, उसके पाँव भाग रहे थे और आवाजें आ रही थीं।

'पैसे दे दो !'

'भूखी हूँ !'

'नंगी हूँ।'

उसने पीछे की ओर देखा। भिखमंगे दूसरी ओर जा रहे थे। तेजी से वह चला जा रहा था। दौड़ कर वह चाहता था कि अपनी इमारत तक पहुँच जाय, उस इमारत तक जहाँ वह पगली मिलेगी जो बड़ी भयानकता से हँसेगी और हँसती रहेगी, वह सिन्धी मिलेगी जिसका लड़का सुबह कय करते-करते ढेर होगया" और' 'और वह श्यामू मिलेगा, वह श्यामू जिसका बूढ़ा बाप, गाँव के टट्टर में अपने बेटे की राह तकता होगा, राह तकता होगा '

लौटते समय राधो का पति सोच रहा था—क्या ऐसे आदमी भी कलकत्ते में हैं ? सात वर्ष हो गए, कोई भी तो ऐसा नहीं मिला था जो इतने प्यार से बोलता। सदा उसे घृणा ही मिलती रही। कारखाने, मजदूर और काम—इन्हीं के बीच में वह रहता रहा। जिन्दगी ने सदा बोझ ढोया, देह की हड्डियाँ चिलकती रहीं''' '''लेकिन वह बाबू किस तरह बोल रहा था और पाँच रुपए के नोट को दबाता हुआ वह सोच रहा था—यह तीन दिनों की मजदूरी के बराबर है। जब राधो सुनेगी तो कितनी खुश होगी''''''मैंने कहा था कि काम पर न जाया कर लेकिन नहीं मानी '' ''''

अचानक उसे याद आया—जब मैं चला था तभी वह कह रही थी, उसे दर्द हो रहा था।

उसके पाँव बढ़ने लगे !

अब उसे बच्चा होने वाला है। मेरे पास पैसों की इतनी कमी है। कैसे यह सब कर सकूँगा। उसको अच्छे खाने की जरूरत है और जब नन्हा सा बालक होगा ठीक उसी के समान तो वह हँस देगी और वह बालक जब बड़ा होगा तो अपनी बोली मे कह उठेगा—बापू मै ताऊँगा'''''' मै तॉद लूँगा

बस्ती आरम्भ हो गई है। यह दूसरी दुनिया है। घरों के ठीक सामने कूड़े फेंके जाते है और कीड़े उसमे बजबजाते है 'कोई खॉसता है और कहता है—हे भगवन ! उठा लो, कब तक इस नरक

में गलता रहूँगा ..... खों खों ! बच्चे रोते हैं और रोटी माँगते हैं.... कूड़ों के वे बच्चे और रोटियाँ ... गलियों मे कुछ जवान गन्दे गीत गाते हैं और हँसते हैं। इस पुण्यात्मा देश के जवान क्योंकि उन्हे जिन्दगी से प्यार है.......

जब मै राधो को पहली बार कलकत्ते लाया था, वह सोच रहा था—तो हमारी इस बस्ती मे चमक आ गई थी। रामू की बहन कहती थी—दादा राधो भाभी को तुम कष्ट दोगे और मैं जानती हूँ भाभी का चाँद सा रूप यह बस्ती लील जायेगी। रामू की बहन चली गई। जब तक वह पड़ोस में थी, सदा उसकी हँसी गूँज जाती थी। आज तक किसी ने न जाना कि वह कब खाती है और कब भूखी सो जाती है; लेकिन उसके जाने पर पड़ोस में वही उदासी फैल गई है जो पहले रहती! उसकी बाते मेरे सामने हैं ... मैंने राधो को कितनी तकलीफ दी। हरदम वह इन मजबूरियों की आग के बीच रही है; लेकिन उसने कराहा तक नहीं ... अब उसकी आस, उसका रूप, ऊसर भूमि की भाँति होता गया है! राजू दादा कह रहे थे—धीरज धरो! एका करना है, मेहनत की कीमत लौटेगी, जरूर लौटेगी .....

उसकी कोठरी आ गई थी। भीतर घुसते ही उसने देखा, कोई बैठा हुआ है। पास आकर वह बोला, 'राजू दादा! अभी मैं तुम्हें ही सोच रहा था।'

राजू मौन था। बाहर अन्धकार की लहरे बस्ती की नस-नस में पैठ रही थीं।

राधो ने पति से पूछा, 'किसलिए बुलाया था बाबू ने ?'

लोचन प्रसन्न था। उसने सारी बातें कह दीं और अन्त में बोला, 'राजू दादा! आज तक तीस बरस की जिन्दगी मे इतने हमदर्द आदमी से भेंट नहीं हुई थी।'

'हाँ, दादा' राधो बोल उठी ; वह बाबू हम सब पर इतनी दया रखता है कि हम कभी भी उऋण नहीं हो सकतीं। आज ही देखो न मुझे छुट्टी दे दी और ये पाँच रुपए का नोट भी लाए।'

राजू गम्भीर हो गया था। मन मे रह-रह कर कुछ चुभने लगा था—छुट्टी दे देना, पति को बुलाना, पाँच रुपए का नोट... इतनी कृपा ? किसी कारखाने का मजदूर अफसर! यह कैसे हो सकता है ?

'लोचन' राजू ने कहा—'तुम कल वे रुपए लौटा देना।'

'लौटा देना ?' राधो और लोचन दोनों बोल उठे—'लेकिन क्यों ? क्यों राजू दादा ?'

'मुझे लगता है इन रुपयों की तह में कोई छाया मड़रा रही है।'

बाहर कुत्ते रो उठे जैसे बस्ती भी रो रही हो!

राजू ने पूछा—'तुम्हारी कौन सी मिल है राधो ?'

मस्तिष्क की तह में जैसे वह कुछ खोज रहा था।

'जीवतराम मलकानी की' राधो का उत्तर था।

'जीवतराम की कौन सी मिल ?'

'कपड़ेवाली जो किदिरपुर की राह मे पानी की टंकी के पास है। लेकिन यह सब तुम क्यों पूछ रहे हो ?' वह घबड़ा रही थी!

'कपड़े की ?' राजू बुदबुदाया जो पानी की टंकी के पास है.

और अचानक जैसे उसे झटका लगा हो, बिजली की करेन्ट शरीर को छूकर झन्न कर गई हो—'सचमुच! तुम सच कह रही हो राधो ? लोचन क्या उस मिल के मजदूर अफसर ने ऐसा किया! सच बोलो लोचन! राधो!'

'बिल्कुल सच दादा! यह लो।' और लोचन ने पाँच रुपए का नोट उसकी हथेली पर रख दिया!

'लोचन' जैसे उफनते हुए ज्वार को भाटा खींच रहा हो,. इस तरह राजू ने कहा—'यह नोट नहीं लौटाना होगा। यह तुम्हारा नोट है और जिसने तुमसे इतनी हमदर्दी दिखलाई है, वह मेरा पुराना दोस्त नरेश है। लोचन, यदि यह सब सच है तो मैं कितना खुश हूँ, कितना खुश''''

राजू मौन हो गया। पिछले दिनों की एक धुन्ध सी काया मन में फैलने लगी। अतीत की अनुभूति ने न जाने कितने सुम विचारों को लहरों को फेन की भाँति उठा दिया!

अचानक राधो ने कहा—'एक बात पूछूँ राजू दादा?'

'पूछो?'

वह एक बार झिझकी और कहने लगी—'हम दुखिया और गरीब लोगों के सुख-दुख से तुम्हें क्या मिलता है दादा! जो तुम अपना सारा समय, अपनी जिन्दगी ही हमारे लिए दे रहे हो?'

'यही पूछना था तुम्हें!' राजू ने उसकी ओर देखा, जिसकी आँखों में गीला-गीला सा कुछ भर उठा था—'मैंने तुम सबके लिए, इस बस्ती के किसी आदमी के लिए क्या किया जो तू ऐसा कह रही है। मैं तो तुम जैसे लोगों में से ही हूँ और इसीलिए तुममें रहना चाहता हूँ।'

राधो बोली—'लेकिन तुम तो ब्राह्मण हो दादा! और हम सब यहाँ नीच जात की।'

राजू के स्वर में कुछ तीखापन था—'मैं केवल आदमी ही बन कर रहना चाहता हूँ राधो! और उसके आगे मुझे कुछ नहीं चाहिए न ब्राह्मणत्व, न हिन्दुत्व।'

लोचन ने उस व्यक्ति की ओर देखा, जिसकी आँखों में कुछ तेज जैसा चमक रहा था। वह निज का रीत गया सा अनुभव कर रहा था।

राजू ने कहा—'चुप क्यों हो लोचन ? क्या सोच रहे हो ?'

'सोचता हूँ दादा ! क्या सभी आदमी तुम्हारे जैसे नहीं हो सकते ?'

वह आगे नहीं बोल सका । राधो की आँखें भी नम थीं । आज न जाने क्यों उन सबको लग रहा था कि सूनी-सूनी जिन्दगी में कुछ मिल गया है, किसी ने उनके मन को छूने वाले प्यार से भर दिया है……नरेश…राजू दादा…

राजनारायण ने कहा—'रोते हो पागल ! आदमी कोई बुरा नहीं होता, मजबूरियाँ उसे बुरा बना देती हैं …

कुछ देर वह बैठा रहा । फिर चला गया; लेकिन जैसे उसकी वात वातावरण मे बोल रही थी…आदमी कोई बुरा नहीं होता लोचन · ·

आदमी कोई बुरा नहीं होता राधो … ·

लोचन ने राधो को प्यार से छूकर कहा—'अब तो दरद नहीं हो रहा है रे ?'

'नहीं, अब बिल्कुल नहीं है !' और राधो ने अपनी हथेलियों से लोचन की उँगलियों को अपनी छाती से लगा दिया !

* * *

सुबह हो गई । पूरब से सूर्य की किरणें फूट पड़ीं । उस वस्ती तक भी वे चली आई है । सोए हुए घरों से लोग वाहर होने लगे हैं । किसी की खाँसी उठ रही है और वह दर्द से काँप रहा है । कोई अपने नन्हें वालक को गोद मे लेकर गाता है । रात को जो स्थान सूने थे, धीरे-धीरे जिन्दगी उनके सीने से वाहर आने लगी है और उन पीली किरणों के वीच मे इस समय सवसे व्यस्त जगह है जहाँ से हर आदमी कलकत्ते की उस उमस में जिन्दा रहने के लिए पानी पाता है, जहाँ सुवह और शाम को

एक हलचल रहती है। स्त्रियाँ अपने झाँझर लिए इस नल के चारो ओर इकट्ठी हो जाती हैं। अनेक कहानियाँ यहाँ के वातावरण में गूँज उठती हैं, हर तरह के परिहास इसकी धरती में खो जाया करते हैं।

राधो भी आ गई है और उसके साथ जोहरा और मालती हैं। जोहरा सबसे अधिक चंचल है। वह जवान है और जवानी के दो चाँद झूम-झूम कर अपनी चाँदनी फैला देते हैं। उसका भाई हसन है और उसकी भाभी तो हसन से भी अधिक उसे प्यार करती है ...

जोहरा ने किसी वृद्धा को देखा और दुपट्टा उसके शरीर से खिसकने लगा, छाती में एक भूचाल आ गया। वह भूचाल हर वृद्धा के हृदय मे समा जाता है और कोई भी वृद्धा हो, कह उठती है—'वेश्या है, बदन खोले फिरती है' और पुरानी बातें याद करती हुई वह बड़बड़ाती चली जाती है। जवानी और बुढ़ापे का यह द्वन्द अटूट है।'

प्यार तो मालती उसे बहुत करती है लेकिन राधो और जोहरा बहुत गहरी साथिन हैं। इन सबका काम झाँझर लेकर नल के पास आते ही बढ़ जाता है। किसी पर व्यंग करना, किसी वृद्धा को देख कर हँस पड़ना और किसी को तीखे परिहासों द्वारा उभार देना और फिर फूटती हँसी और उस हँसी से उत्पन्न होने वाला जीवन का गतिमान चक्र ! यह सब कुछ उस धरती का अपना बन गया था।

जोहरा ने कहा—'राधो ! तू अब काम न किया कर, तुझे तकलीफ होती होगी। याद है जब मालती को गर्भ था तो एक महीने पहले ही मैके चली गई थी।'

बात ठीक थी किन्तु सूरज की माँ से कैसे रहा जाता—'तो

तू ही न उसका काम कर दिया कर। अच्छी खासी फूली तो है।'

इस बार मालती बोली—'जोहरा तेरी आदत बड़ी बुरी है। जब बड़ी-बूढ़ी हों तो कुछ नहीं बोलते । चुप रह ! अपना दुपट्टा ठीक कर और राघो तू तब तक काम कर जब तक चाची तुझे मना न करें।'

इतना बहुत था । सूरज की माँ उबल पड़ीं—'अरे तू क्या बोलती है रे। मैं तो तुझसे नहीं बोल रही । तू जोहरा से भी बढ़ कर है। बड़ी कानून करने वाली आई। जब तुझे बच्चा होने वाला था तो किशोरी ने मुझी से कहा था कि चल कर सँभाल दो न चाची ...

'और तुमने चाची, मालती का सारा कष्ट दूर कर दिया, क्यों चाची ? चाची बहुत भली हैं।'

जोहरा का व्यंग लहर उठा। सूरज की माँ झूठ कह रही थी। तभी राघो ने कहा—'चाची लड़ती ही रहोगी कि पानी भी ले जाओगी।'

बुढ़िया चारो ओर से घिर गई थी । उसने पानी उठाया और चुनी हुई गालियाँ देती निकल गई।

राघो ने कहा—'जोहरा तेरी आदत बिगड़ती जा रही है।'

'नहीं राघो तू नहीं जानती' जोहरा का उत्तर था। 'इतनी शीघ्र यह बुढ़िया खिसकने वाली नहीं थी। इन बुढ़ियों से लोहा लेना मैं खूब जानती हूँ।'

तीनों ने अपने गागर लिये और चलने लगीं! चलती हुई मालती ने जोहरा से पूछा, 'क्यों! हसन भाई की तबियत कैसी है ?'

जोहरा ने घड़े को ऊपर खींचते हुए कहा—'ठीक ही है

लेकिन इससे क्या होता है; हमारी इस जिन्दगी में आराम कहाँ ? गरीबी तो हमारी जिन्दगी से बँध गई है बहन ! और इसीलिए हमारा दम घुटता रहता है। इससे बचने का क्या रास्ता है कौन जाने ?'

राधो सोच रही थी—हमारे जीवन में तकलीफ के कीड़े भर गए हैं हम सभी जोहरा, मालती, सूरज की माँ उन कीड़ों के शिकार हो रहे हैं न जाने कब से इनके बढ़ने का काम जारी है और कब तक रहेगा कौन जाने; नहीं-नहीं…राजू दादा कह रहे थे, अब यह सब कुछ नहीं होगा…

जोहरा का प्रश्न उसके मस्तिष्क में गूँज उठा, 'इससे बचने का क्या रास्ता है, कौन जाने ?'

राधो बोली, 'एक ही रास्ता है, और वह यह कि हम चुपचाप इस भुखमरी से नाता न जोड़ लें। हम समझें कि हमारे ऊपर अन्याय की भट्टी जल रही है, तभी हम उसे हटाने की सोचेंगे और दबाने वाले लोगों में भी एक घबड़ाहट होगी।'

उसकी झाँझर सरकने लगी थी। उसे लगा, अन्दर कोई तेज चीज करवट बदल रही है और उस करवट से, इस बेचैन जीवन के जहर के प्रति एक आग निकल कर मन को, मस्तिष्क को सारे शरीर को छू रही है

तीनों चुपचाप चलने लगी थीं। मालती का घर आ गया था और जोहरा आगे चलकर गली से मुड़ गई। राधो आगे बढ़ गई

अन्दर घुसते ही जोहरा ने देखा, अहमद हसन के पास बैठा है। उसे खुशी हुई। जब कभी वह अहमद को अपने यहाँ पाती है उसकी बातों में एक रस उसे मिलता है। मुसीबत की घड़ियों में अहमद ने उन सबको सदा कितनी दिलासा दी है।

सदा कहा है कि इन्सान ही सब कुछ है और उस इन्सान के बनाए हुए समाज और सभ्यता की कमजोरियों को इन्सान मे ही ढूँढ़ना पड़ेगा।

ज्यों ही जोहरा ने झाँझर रख कर साँस खींची, हसन बोल उठा—'मुझे बस इसी की फिक्र है। जब कभी रात मे सपने आते हैं, मुझे यही दिखलाई पड़ता है कि इसी के लिए अम्मी और अब्बा की रूह तड़प रही है। मैं इसे आराम नहीं दे सका''' लेकिन मै मजबूर था अहमद भाई'' मजबूर था !'

भाई की बात सुन कर वह बोली—'भाई तुम्हारी यह बात कितनी दर्दनाक है। तुम मेरे ही लिए परीशान रहते हो, लेकिन सच मानो इस घर में, इस बस्ती में सभी की यह हालत है।'

अहमद सुन रहा था। उसे लगा—जोहरा की नस-नस से सचाई की गंध आ रही है। वह जो कुछ कह रही है, वही उसके अन्दर है।

वह बोला—'हसन, इसमें कोई शक नहीं कि जोहरा को और तुमको, लोचन को और शकीला को और इस तरह की बस्तियों में रहने वाले हरेक इन्सान को बेहद तकलीफ है ; लेकिन आस-पास, दुनिया के हरेक मुल्क में जहाँ पूँजी कुछ हाथों मे बन्द है। जब तक पूँजी आजाद नहीं होगी, तकलीफों मे कोई फर्क नहीं आयेगा।'

हसन लेट गया था। जोहरा ने पूछा—'लेकिन अहमद भाई ! क्या इंग्लैंड और अमरीका में भी लोग इसी हालत मे है, जिसमें कि हम हैं ? क्या विलायत वाले इतने दिनों तक हमारा खून पीकर हमारी ही हालत मे है !'

'नही' अहमद का उत्तर था—'योरोप और अमरीका में ज्यादातर मुल्कों की हालत अच्छी है ; लेकिन वहाँ भी कुछ ऐसी

जगहे हैं, जहाँ अब भी गरीबी का राज है। जहाँ आदमी परीशान है। जैसे इटली, स्पेन आदि। एशिया मे गरीबी ज्यादा है। पहले चीन की भी बुरी हालत थी। दुनिया चीनियों को अफीमची कहती थी; लेकिन आज चीन मे नई जिन्दगी है, नई राहो पर आदमी पाँव बढ़ाए चला जा रहा है। हम भी आजाद है; लेकिन हमारे यहाँ मुनाफाखोरी और बेइन्साफियों का सर खड़ा है।'

हसन पानी माँगने लगा और जोहरा पानी लेने चली गई। लौट कर उसने पूछा—'लेकिन हम क्या करे ? क्या हम इसी तरह पिसते रहेंगे ? क्या खुदा की मार हम गरीबों के ऊपर कम न होगी ?'

'खुदा की मार ?' अहमद हँसा—'अगर हरेक तकलीफ जो आदमी उठाता है, खुदा की मार के नाम पर बर्दाश्त कर ली जाय तो हालत मे सुधार का सवाल ही कहाँ उठता है ? जोहरा, गरीबी इसलिए है कि अमीरी है। इन दोनों के बीच मे कोई जंजीर नहीं है जो इन्हे बाँध कर साथ-साथ रख सके। मै यह नहीं कहता कि सबके पास बराबर ही दौलत हो ; लेकिन आदमी को दौलत पाने का बसूल तो सबके लिए एक होना चाहिए। इसमे खुदा को लाने की कोई बात नही है।'

'तो अहमद भाई, क्या खुदा हमारे लिए कुछ नहीं, सिर्फ एक वहम है। वह हमारी मदद नही करता, वह हमारी गुत्थियाँ नही सुलझाता, तो क्या हम उस पर यकीन न करे ?'

उसकी बात मे मासूमियत थी। जो मन से निकला, उसने पूछा।

'नहीं बहन ! तुम्हारे उस यकीन को मै कुछ नही कहता। अगर तुम सोचती हो कि वह तुम्हारी मदद करता है तो तुम्हे अधिकार है कि तुम उस पर यकीन करो, उसकी इबादत करो। लेकिन मेरी बहन" अहमद की बात मे स्नेह उभर आया था, 'जब तुम्हे इसका पूरा यकीन हो तभी। मुझे नहीं है और न मैं समझता हूँ,

हमारी इन परेशानियों का हल हमारे पास न होकर कहीं और है।'

हसन खाँसने लगा था। जोहरा उसकी पीठ सहलाने लगी। जब खाँसी दबी तो अहमद ने कहा—'चलता हूँ हसन! फिर आऊँगा।'

'नहीं-नहीं' शकीला, जो खाना पका रही थी, बोली—'अहमद भाई! खाना पक गया है खाकर तब जाना।'

'लेकिन मेरा खाना पक रहा होगा शकीला। और तेरे यहाँ तो खाने वालों की भी कमी नहीं है।'

वह हँसा। हसन ने हँसना चाहा किन्तु खाँसी फिर उभरी।

शकीला बाहर आगई—'राजू दादा तो कभी इन्कार नहीं करते और तुम हो भाईजान कि खाते तक नहीं।'

बाहर अंधेरा था। अंधेरे में वे बस्तियाँ थीं। उन बस्तियों में आदमी थे। और जैसे चारों ओर से आवाजें उठ रही थीं—यहाँ जिन्दगी मौत से भी बदतर है, यहाँ इन्सानियत अधमरी लाश की तरह है, वह लाश छटपटाती है" और कोई खुदा यह कहने नहीं आता......मैं तुम्हारा दर्द कम कर देता हूँ, ओ मैं तुम्हें नई जिंदगी देता हूँ"' कोई पैगम्बर नहीं कहता—लो, मैं खुदा का बन्दा तुम्हारी मुसीबतों पर जादू फेरे देता हूँ '

कलकत्ता और जलते कुमकुमे, फिसलती मोटरों का झुण्ड। खुशबू में नहाए हुए लोग। यह सब कितना अच्छा है। यहाँ जिन्दगी से भीनी-भीनी महक आती है।

यह ग्राण्ड होटल की खुशनुमा शाम है।

अन्दर लोग नाच रहे हैं। एक औरत और एक मर्द, लिपस्टिक और लैवेन्डर, उभरे-उभरे सीने, हिलती कमर और नाच नाचते हुए जोड़े, अनेको जोड़े, बाहों से बाँह थामे, आँखों मे आँखे डाले!

यह ग्राण्ड होटल की मदभरी शाम है।

तेज बेयरे और प्लास्टिक की ट्रे ज, उनमे जिन्दगी का लाल और सफेद रस बोतलों की छाती तक भरा हुआ है। बाल डान्स खत्म हो जाता है और मेजों पर 'शैम्पेन' और 'व्हाइटहार्स' की बोतलें फैल जाती हैं।

नाचते जोड़े थक गए हैं न!

किन्तु नाच बंद नहीं होता। आरकेस्ट्रा से नया संगीत फुँक उठता है और एक 'डान्सर' नाचने लगती है। अकेली औरत, भरे-भरे भुज, हँसते कपोल और थिरकन! उसकी कमर हिलती है, उसके मांसल नितम्ब हिलते हैं और हवा में खुमारी है, आदमी मे नशा है।

कोई कहती है—मैं अब नहीं लूँगी। thats all और उत्तर में कोई पेग उसके ओठों से लगा देता है। वह पी जाती है और हँस देती है। जिन्दगी को नशा हो आता है।

डान्सर नाचती हुई एक मेज तक आ जाती है। वह चाहती है कि अपने सीने पर निकले हुए दो हसीन गुम्बदों को हर बैठे हुए पुरुष की आँखों में भर दे ‥ ⋯इस मेज पर पैंजी है। संतोष और प्रोफेसर है। नरेश है।

संतोष मलकानी पीता है। उसकी आँखों मे माया है, मिसेज कौल हैं, पैंजी है।

डान्सर नरेश को देख रही है। उसके सीने का गोरापन नरेश की आँखों में भरने लगा है। पैंजी ईर्ष्या से नरेश की ओर देखती है ‥ नारी का यह रूप भी कितना सुन्दर होता है। हृदय के भाव आँखों मे छलक आते हैं। 'डान्सर' दूसरी मेज की ओर चढ़ गई और संतोष सोचने लगा—इसी तरह यह हरेक मनुष्य के पास आती है और चली जाती है। यह किसी तक नहीं रुकती। एक बेचैनी बढ़ा कर, इस क्लब के लिए आकर्षण बना कर आगे बढ़ जाती है। यही इसका काम है। क्योंकि इसी के लिए इसे पैसे मिलते हैं और ये पैसे भूखे आदमी की भूख मिटाते है ⋯

पेग बढ़ाते हुए संतोष बोला—'मिस पैंजी, इधर कई दिनों से आप दिखलाई नहीं पड़ी।' वह चुप हो गया। फिर उसके मस्तिष्क मे भावनाओं का स्रोत सरकने लगा। जिसकी हर साँस से पैसों की बू आती हो, वह ठीक ऐसे व्यक्ति की तरह सोच रहा था—जिसके जीवन का रस सूख गया हो⋯⋯और जब इस 'डान्सर' के यौवन का यह उभार ढल जायेगा, इस हाल में बैठी हुई इसी तरह की शराबी तस्वीरे, नशीली आँखे इसकी ओर नहीं देखेगी—ये आँखे नई चीज चाहती हैं‥ ‥

खेमराज ने नरेश से कहा—'मि० नरेश! आपने तो बहुत कम पी।'

'जी मै कम पीता ही हूँ।' नरेश ने उत्तर दिया।

नरेश की ओर देखती हुई पैंजी बोली—'ये बिलकुल कम पीते हैं और संतोष तो पीते ही नहीं।'

लोग हँस पड़े। प्रोफेसर ने कहा—'इनके न पीने की बात तो मिस माया भी जानती है।' यह दूसरा व्यंग था, जिसने संतोष की विचार-शृंखला को हिला दिया, वह मुस्कराने का प्रयत्न करता हुआ बोला—'और शायद मिस पैंजी सबसे अधिक जानती है; क्योंकि माया के दार्जिलिंग जाने के बाद अब यही रह गई हैं और मै चाहता हूँ, मेरी कोई भी बात इनसे छिपी न रहे।'

नरेश ने उसी समय कहा—'तुम्हारी इस इच्छा को भी पैंजी अच्छी तरह जानती हैं।'

क्षण भर मे पैंजी की मुस्कराहट बिलीन हो गई और उसने देखा कि पुरुषों का चंचल समूह उसके एकमात्र व्यक्तित्व को घेर रहा था।

किन्तु संतोष पुनः बोल उठा—'पैंजी को यदि कुछ बुरा लग गया हो तो मुझे दुख है। माया की तुलना मे पैंजी को रख देना सचमुच एक भूल थी।'

पैंजी मुस्करायी। व्यंग बह गया और रंगीन जीवन की मादकता पुनः अपने गोरे-गोरे पंख फैला कर उन सबसे लिपटने लगी। वह भावना कि जीवन अनन्त सुखों का ढेर है, हर मेज पर बैठे हुए लोगों के सामने जैसे झनझना कर नाच रही हो। वहाँ एक होड़ है। प्रत्येक, सुखों की उस अनन्त राशि से अधिक लूट लेना चाहता है। कोई सोचता है कि चाँदी और कागज की शक्ति से नारी की जवानी का खिचाव मेरी मुट्ठी में है ...शैम्पेन के रंग मे किसी के लाल-लाल अधर मेरे अधरों से लग रहे हैं मैं किसी की मांसल गोद मे सिर रक्खे उसकी आँखों

में देख रहा हूँ——जीवन यही है····आरकेस्ट्रा की ध्वनि पर नाचने वाली लड़की की कमर की लचक, गले को छूकर अन्दर तृप्त कर देने वाली मदिरा ···'मास्टर ब्यूक' और 'काडिलाक' के कोमल कुशन्स् पर कपोलों और अधरों का छू जाना और झील के उस झिलमिल करते जल में 'स्वीमिंग गाउन' मे नारी की उभरी जवानी का पुरुष को समर्पण ···· ··

डा० खेमराज ने एक पेग और लेते हुए पैंजी की ओर अपनी गुलाबी आँखों से देखा। नसें तनने लगीं थीं, अन्दर की सारी भावनाएँ मस्तिष्क की कोरों में छहरा रही थीं। सेक्स का आकर्षण उसकी आँखों में भर गया और वह अपने पास वाली मेज की [illegible] लड़की की ओर देखते हुए मुस्करा उठा। बोला—'क्या खूबसूरती का भी कोई अन्त है ?'

ऐसे स्थान पर जहाँ युवतियाँ पुरुषों को अपने आकर्षण से खींच लेना चहती हैं, जहाँ पुरुष अपनी लोलुप आँखों में नारी का खुला रूप चाहता है, यह प्रश्न मेज के उन व्यक्तियों के कानों में गूँज उठा। बगल की मेज वाली जवान लड़की तक भी वह प्रश्न पहुँचा और वह जोर से हँस पड़ी। उसके दोस्त ने हँसी को बातों के उसी क्रम में जुड़ा हुआ समझा और बोला—'हँस रही हो, मैं सच कहता हूँ·· ···

पैंजी ने सोचा, डा० खेमराज का मतलब उसी से है। इस तरह की सम्भावित भावनाएँ नारी के अन्तर को छू भर देती हैं और वह पुलक उठती है। उसकी आँखों में स्नेह की एक नई किरण फैल गई।

संतोष ने प्रोफेसर की ओर तीक्ष्ण दृष्टि से देखते हुए कहा—'प्रोफेसर तुम्हारा यह प्रश्न नया नहीं है।'

'यह मानना पड़ेगा संतोष' प्रोफेसर बोला 'कि तुम मुझे

ठीक समझते हो। कई वर्ष हुए इसी स्थान पर मेरा तुमसे परिचय हुआ था और उस समय माया तुम्हारे साथ रहती थी। तुमने मुझसे कहा भी था कि माया की यह खूबसूरती मेरे हृदय के हर अणु में साँस ले रही है, किन्तु माया कहीं चली गई और फिर तुम कह उठे थे, सुन्दरता छलना है। जो लोग कहते हैं कि सौन्दर्य असीम है वे सेक्स के आकर्षण मे खो जाते है, उसी मे उलझ कर अपनी सारी वाह्य क्रियात्मक प्रवृत्तियों को भुला देते हैं। मैं पूछता हूँ क्या तुम सही कह रहे थे ?'

संतोष के कुछ कहने के पूर्व ही नरेश बोल उठा—'सौन्दर्य चाहे असीम न हो किन्तु व्यक्ति के देखने का ढंग असीम है। वह एक ही वस्तु को' प्रोफेसर की ओर संकेत करते हुए वह बोला—'आप कहेंगे नारी को अनेक रूपों में देख कर अनेक भावनाओं से भर उठता है। वस्तु की अनेकरूपता के अन्दर ही उसका सारा आकर्षण भरा हुआ है।'

प्रोफेसर नरेश की ओर घूर रहा था। पैंजी के हृदय में एक गूँज थी, यदि प्रोफेसर का प्रश्न उसी से सम्बन्धित है तो क्या सचमुच वह इतनी सुन्दर है ? उसकी बाहों मे इतना गोरापन है जो खुला रह कर पुरुष को अपने मे उलझा देता है ?'

डान्सर के उभरे नितम्ब हिल रहे थे, उसके सीने पर खूबसूरती की दो मीनारें बिजली की उस रोशनी में रह-रह कर जागने लगतीं और उस हाल मे उठने वाली हँसी का स्वर वहाँ के हर इन्सान को अपने मे बाँध लेता। प्रोफेसर की बड़ी-बड़ी आँखों का लाल रंग उस डान्सर की हर थिरकन मे भर उठता, पास बैठी हुई पैंजी की खुली हुई बाहों का गोरापन और बगल वाली मेज पर हँसती हुई हसीन लड़की के लाल अधर सेक्स और शराब की दुनिया मे जान भर देते ...

नरेश ने फिर कहा—'किन्तु इसके पूर्व कि आपकी बात का स्पष्ट उत्तर हो, आपका सौन्दर्य से अर्थ क्या है ?'

प्रोफेसर की नशीली आँखें अचानक हँस पड़ीं।

'मेरे लिए और मेरी ही तरह हर व्यक्ति के लिए नारी ही सबसे सुन्दर वस्तु होती है। मेरे प्रश्न का आरम्भ और अन्त नारी के उसी आकर्षण मे है, जिसे हम सेक्स कहते हैं। ऐसी वस्तु जो हमारी सेक्सुअल भूख को नहीं मिटा सकती मैं उसे सुन्दर मानने के लिए तत्पर नहीं हूँ।'

पैंजी की आँखों से प्रोफेसर की आँखें टकरा गईं।

'तो आप यह कहना चाहते हैं कि जब तक नारी आप के सेक्स की भूख मिटाती रहे तभी तक वह सुन्दर है।' नरेश की यह बात मेज के चारो ओर बैठे हुए प्रत्येक व्यक्ति के मस्तिष्क में गूँज उठी। डाक्टर की नशीली आँखों में विवशता भर गई। सचमुच वह यह नही कहना चाहता था। वह कुछ कहने वाला ही था कि पैंजी बोल उठी—'यदि प्रोफेसर यही कहना चाहते हों तो भूल कहाँ है ? सेक्स के लिए पुरुष जो सोचता है, यदि वह प्रोफेसर की तरह ही सोचे तो नारी भी यही सोचती है।'

बात समाप्त होने के साथ ही संतोष और नरेश जोर से हँस पड़े। सन्तोष बोला—'प्रोफेसर, मिस पैंजी की इसी बात में तुम्हारे प्रश्न का उत्तर है।'

डान्सर की कमर हिल रही थी, उसके पाँव शिथिल पड़ने लगे थे और उस रंगीन हाल में बैठे हुए अनेक लोग खुमारी लिए हुए उठने लगे थे। डान्सर ने नाचना बन्द कर दिया। पसीने से उसके चेहरे पर पड़ी हुई पाउडर की पर्त धुलने लगी थी। आरकेस्ट्रा अब भी बज रहा था किन्तु जैसे उसमे वह गति नहीं थी, न वह ध्वनि और न संगीत ! नाचने वाली लड़की

के उरोजों का उठना और गिरना, उसकी मॉसल देह का हिल उठना, शराब की वे खुलती हुई बोतलें और सायंकाल की उतरती हुई परछाई के साथ उस हाल में घुस आने वाली जिन्दगी, योरोप से लॉघ कर आने वाला नग्न सौन्दर्य—यह सब कहाँ रह गए थे ?

प्रोफेसर ने बिल चुकाया और उठते हुए बोला—'मि० नरेश ! मेरा नशा उतर रहा है क्योंकि पैंजी की बात में मेरा उत्तर है। मैं कुमारी पैंजी का आभारी हूँ।'

क्षण भर के लिए प्रोफेसर की ओर देख कर पैंजी का मुख मंडल लाल हो उठा।

मोटर मे 'स्टीयरिंग ह्वील' पर संतोष और उसकी बगल मे नरेश बैठा। पीछे मुलायम कुशन्स की छाती पर पैंजी और प्रोफेसर बैठे। जब होटल की रंगीनी दूर हो गई तो संतोष ने कहा—'क्षमा करना प्रोफेसर ! नरेश कुछ 'आउटस्पोकन' हैं। तुम्हारी भावनाओं को बिना समझे इन्होंने उत्तर दे दिए हैं।'

'नही सन्तोष' प्रोफेसर ने उत्तर दे दिया, 'इनकी हर बात मे सच्चाई थी, इसे मै इन्कार नहीं कर सकता। तुम तो जानते हो जब मैं पी लेता हूँ तो विचित्र ढंग के प्रश्न मेरे मस्तिष्क में भर उठते हैं। पीता क्यों हूँ, मै स्वयं नहीं जानता। शायद बहुत दिनों से पीता आ रहा हूँ, इसीलिए। किन्तु पीने के बाद जब मेरी नसे तन उठती हैं तो मै चाहता हूँ नारी मेरी बगल मे हो ......

'और नारी तुम्हारी बगल मे है !' सन्तोष तुरन्त बोला। प्रोफेसर का शरीर पैंजी के अंगों से छू गया। पैंजी को लगा जैसे सन्तोष का व्यंग क्षण भर के लिए नष्ट हो गया हो।

तभी अचानक मोटर एक तीव्र वेग के साथ रुक गई। प्रोफेसर का नशीला शरीर पुनः पैंजी की बॉह से टकरा गया।

एक मजदूर मोटर से लड़ते-लड़ते बच गया था। सन्तोष चीख उठा—'नान्सेन्स'

पैंजी ने जोर से कहा—'ये जानवर आँखें रहते हुए भी देख कर नही चलते। 'अनसिविलाइज्ड ब्रूटस'......

मजदूर घबड़ाया हुआ खड़ा था। 'ब्रूटस' उसकी समझ में बिल्कुल नहीं आया और वह जिन्दगी बच जाने की प्रसन्नता में आगे बढ़ गया। जब मोटर फिर चली तो पैंजी ने कहा—'मैंने समझा कोई दुर्घटना हो गई। सचमुच इनमे और जानवरों में क्या अन्तर है ?'

'केवल इतना कि ये दो पाँवों से चलते हैं और जानवर चार से' संतोष ने कहा।

'और टकराने पर इन्हें अस्पताल ले चलना होता, किन्तु जानवरों को नहीं।' प्रोफेसर खेमराज का उत्तर था।

तीनों हँस पड़े। मनुष्य और पशु के बीच केवल इतना ही अन्तर वे जानते थे। मोटर पर चलने वाले उन बड़े लोगों के लिए पाँवों के सहारे चलने वाले भोले मानव, जिनके रक्त की हर बूँद में भुखमरी और गरीबी की भयंकर कहानी रहती है—मनुष्य के चोले में नीच पशु है और ये पशु पिछले कितने युगों से, जब मोटरें नहीं थीं, जब विज्ञान की वर्त्तमान सुखमयी बाहें नही थीं, इन 'बड़े' लोगों का डरावना बोझ ढोते आ रहे हैं किन्तु धीरे-धीरे उस बोझ की अधिकता ने अन्दर ही अन्दर अब गर्मी बन कर खौलना शुरू कर दिया। और वही गर्मी आज तेज आग बन कर एक जानदार भट्ठी की तरह धधक रही है, जिससे वह बोझ ढोने वाला पशु, अन्दर का सोया मानव जाग रहा है, कौन जाने कब भीतर की वह आग अपनी पूरी शक्ति से भड़क उठे और उस आग में झुलस-झुलस

जाएँ—शोषण के खूँखार नाखून, आदमी के सीने पर चढ़े हुए रक्तखोर, वे जिन्होंने मनुष्य के खून से वदबूदार हैवानियत को जिन्दगी देकर, खूबसूरत इन्सानियत की अधमरी लाश पर घोर अट्टहास किए हैं, झूम-झूम कर रंगरेलियाँ मनाई है—उस समय जब बोझ की भयंकरता से ढोने वाले ने फेफड़ों से खून फेंक दिया था और आदमी उस खून से ऊव कर लड़खड़ाता, अधमरा, जिदगी माँग रहा था, केवल जिदगी !'... ....

पैजी का बँगला आ गया था। वह उतर गई। कुछ दूर और जाकर संतोष ने मोटर घुमा दी और प्रोफेसर के घर के सामने रोक कर बोला—'तुम्हारा घर आ गया प्रोफेसर।'

लड़खड़ाता हुआ खेमराज उतरा और अपने घर की ओर चल पड़ा। जब दोनों ने उसे सीढ़ियाँ चढ़ते हुए देख लिया तो संतोष ने मोटर चीतपूर की ओर मोड़ दी। स्टीयरिंग पर अपनी उँगलियाँ घुमाते हुए संतोष बोला—'पैजी विल्कुल बदल सी गई है। मुझे अच्छी तरह याद है, जब तुम रतनपुर गए थे तो यह तुम्हे रोज याद करती थी और अव तो खेमराज है, केवल खेमराज।'

नरेश बोला—'तुम शायद इसे बुरा समझो; किन्तु मै इसे अपने लिए ठीक ही समझता हूँ। पैजी की ओर मै आकर्षित हुआ था किन्तु मेरे और उसके बीच मे एक खाई है, जो मेरे और तुम्हारे बीच मे भी थी—दौलत की, किन्तु जिसे तुमने पाट दिया, पैजी उसे नहीं भर पाती। जब वह कच्चा पाश टूटता तो मुझे पीड़ा होती, शायद इसीलिए पाश बनने के पहले ही वह टूट गया।'

संतोष ने कहा—'दोस्त ! मैने इन लड़कियों को खूब समझा है। कुछ दिन वाद खेमराज भी पैजी का मित्र न रह सकेगा।

किन्तु प्रोफेसर भी अनुभवी है। जितनी लड़कियों को वह अपने बाहुपाश में बाँध चुका होगा, पैंजी उतने युवकों की ओर खिंची भी न होगी।'

नरेश के मन में अनेक बातें भर उठी थीं। वह क्लब, उसका समाज, यह सब उसे किस ओर खींच रहे हैं'' 'वह अपनी सीमा से बाहर खड़ा होना चाहता है जहाँ खड़े होने के प्रयत्न से ही अनन्त खोह में जाने की आशंका है। 'ब्रूटस', शब्द उसके मस्तिक में अब भी घुमड़ रहा था। राधो को अभी वह भूला नहीं था, न अपने दैनिक जीवन के उन साथियों को जिनके ऊपर शासन करने के लिए उसके जीवन के बंधन सिर उठाकर खड़े हैं'''''' काली-काली चिमनियों के बीच का जीवन, काले मजदूर और ठठरियों की काया जैसे उसकी आँखों में भर उठे'''''' क्लब की वह डान्सर, उसके उठते उरोज और उभरा शरीर, उसके कमर की लचक और चारो ओर से घेर कर बैठे हुए लोगों की मतवाली आँखे'''''' सब कुछ उसके मस्तिष्क में घुमड़ गया''''''

उसकी वह दानवी इमारत पास आ गई थी। मोटर से बाहर आते हुए वह बोला—'पैंजो और खेमराज की कहानी की चरमता मजेदार होगी, ऐसी मुझे आशा है।'

संतोष चला गया और नरेश कुछ खोया सा सीढ़ियों की उस लम्बी शृंखला पर चढ़ने लगा।

श्यामू की आँखे झप रही थीं, तभी नरेश ऊपर आया। आज उसके मुख पर अनेक भाव उभरते, मिट जाते, अनेक आशंकाएँ होतीं, पिघल जातीं। उसे लग रहा था जैसे वह सब—नाचने वाली, मदिरा और बनावटी समाज एक धोखे का जाल है, जिससे वह उलझता जा रहा है, वहाँ की हवा जहरीली थी जो

उसके स्नायुओं में स्थान बनाकर उसकी प्रक्रियाओं को शून्य कर देना चाहती ।

नरेश को देखकर श्यामू पास आ गया । उसने देखा—बाबू की आँखें लाल हैं । और उन आँखों से भीतर का अन्तरद्वन्द्व झलक रहा था ।

'हर दिन पीते हो बाबू ।' मासूम सेवक ने पूछा । उसे लगा अधिक होने के ही कारण उसके चेहरे पर एक छाया सी घुमड़ रही है ।

'नहीं श्यामू मैं बहुत कम पीता हूँ ।'

'कुछ खाओगे ? खाना बना रक्खा है ।'

नरेश कपड़े बदल रहा था, बोला—नहीं खाने की तो बिल्कुल इच्छा नहीं है । तुम खा लो ।'

'बात क्या है भइया कि जब कभी तुम संतोष बाबू के साथ जाते हो, रात बढ़ने पर आते हो और तुम्हारा मुँह उदास रहता है ।'

'पहले खा लो तब कुछ सुनूँगा ।' नरेश ने कहा ।

श्यामू खाने चला गया । उसके जाते ही नरेश को अजीब सा लगने लगा । आखिर यह आदमी मेरे लिए क्यों इतनी चिन्ता करता है । इसके बाप-दादाओं ने मेरे पूर्वजों की सेवा में अपनी जिन्दगी काट दी । क्यों यह मेरी सेवा करता है ? मुझमे और इसमें, इसमे और सन्तोष में और हर पैसे वाले व्यक्ति मे क्या अन्तर है ? लोग कहते हैं, सच्चा सेवक है । ईमानदार है । किन्तु इस सेवा का, इस ईमानदारी का उसके व्यक्ति से क्या ? क्या इसके लिए जीवन की धुरी एक तंग दायरे में घूम-घूम कर नही रह जाती ?

प्रोफेसर कहता था—'इस सभ्यता के सर और धड़ हमेशा से अलग रहे हैं । लेकिन जिसका सर और धड़ अलग हो वह

तो मुर्दा वस्तु हुई। धड़ चलता है। सर सोचता है। दोनों के दो काम हैं अवश्य किन्तु उनका एक अन्योन्याश्रय सम्बन्ध भी तो है। विना उनके सम्बन्ध के व्यक्ति क्या है? यह सारा का सारा समाज क्या है? मुर्दा ही तो?

मैंने स्वयं श्यामू को अपने से समान स्तर पर ही रखना चाहा। लेकिन कोई दूरी है जो नहीं मिटी। मै 'ग्राण्ड' से लौट कर आया हूँ। मै जानता हूँ यह मै नहीं गया था, सन्तोष गया था, क्योंकि वह पैसे वाला है। लेकिन मै गया तो? मैंने यह तो नहीं कह दिया कि मेरी इच्छा ही नहीं करती।

कौन नहीं चाहता कि वह 'ग्राण्ड' की उस नाचती लड़की की थिरक देख-देख कर कॉफी के घूँट लेता जाय? किसका मन नहीं करता कि मोटरों की मोटी कुशन्स पर गोरे-गोरे नंगे भुजों का जलता संस्पर्श हो। मैंने सन्तोष से कह दिया—कभी मैं पैजी की ओर खिचा था, अब मन उस ओर वह कर जाता ही नहीं।

पर वह सत्य नहीं था। सत्य का एक अंश था। पैजी बड़ी है, वह इतनी वड़ी है कि मै उसे देख सकता हूँ, उससे बोल सकता हूँ लेकिन उसे मै अपनी उँगलियों का संस्पर्श उसके जानते हुए नहीं दे सकता, जब कि मै चाहता हूँ। अन्तर मन की एक प्यास उठ-उठ कर कहती है—ओ, कोई अपनी नरम हथेलियों से छूकर हँस दो न, और मै उस मुँह को चूम-चूम लूँ।

किन्तु ऐसा नहीं होता।

कैसे होगा? जिस मुख को मैंने अपने ओठों की छुवन दी थी, जिसके उघरे-उघरे केश मेरी बाहों पर झूलते गए थे वह भी तो मेरी अपनी नहीं रही। वह चली गई! अब भी वह

चाहती है कि मुझ तक आ जाय! वह कहती थी—मैं इस बन्धन को नहीं मानती, तुम भी न मानो!

नरेश को लगा, जैसे वह किसी भयानक बन्धन से मुक्ति चाहती थी पर वह नहीं दे सका। उसने अपनी बाँह देकर यह नहीं कहा—लो, मैं तुम्हें दर्द के इस ओर खींचे लेता हूँ।

उसके मन में एक सिहरन सी हुई। हथौड़े की चोटों की भाँति उसकी बातें गूँजती जा रही थीं—निबल थे, इतनी शक्ति नहीं थी तो उन अमराइयों में प्यार की वे बातें क्यों उठीं? क्यों बढ़-बढ़ कर तुमने कहा था—नीली तू मेरी है! हम दोनों, दोनों के हैं!

मेरे सामने ही भाँवरें पड़ी थीं। शहनाई की रसीली आवाजें तन-मन को बेध-बेध कर गाँव के कछारों तक बिछल जातीं। उमानाथ चला गया। फिर नीली चली गई। फिर तो गाँव की मिट्टी का मोह मन से उतरता चला गया।

इस बार मिली तो लगा जैसे वह उस प्यार को संजो कर रक्खे हुए है, सदा रक्खे रहेगी।

पर उस प्यार से होगा क्या? एक दहक ही तो मन को घेरती चली जायेगी! पर नहीं, मैं इस दहक को कभी नहीं बुझने दूँगा। वह मेरी है, वह मेरी है। बल्ब को घेर कर पतंगे जम रहे थे। बाहर सड़क के फुटपाथ पर सोने वालों की आवाजें आ रही थीं और धीरे-धीरे उसकी आँखों के सम्मुख नीली की परछाईं बड़ी होती जा रही थी।

जब उसे लगा वह परछाईं उसके पास आकर कुछ बोलेगी तो उसने शेल्फ से एक पुस्तक खींच ली। वह चाहता था कोई भी पुस्तक हो किन्तु वह थी ड्यूमा की Elexir of life.

वह उसे पढ़ चुका था। उसे याद आया बाल्समो (Balsama)

की स्त्री किस तरह उसकी कैद से निकल कर भागना चाहती थी ? और वह स्त्री को किस रूप मे देखता था। वह जैसे उसके वैज्ञानिक प्रयोगों की कोई औजार थी, जिसे जब चाहे, जिस तरह उसकी इच्छा हो काम में लाये ! स्त्री नहीं रहना चाहती, वह मुक्ति चाहती थी।

नीली भी तो नहीं जाना चाहती। वह भी तो उस बन्धन को फाड़ कर परे हटने का प्रयत्न कर रही थी। अगर मैंने अपनी बाहे दे दी होतीं !

नरेश का मन अपने से ही भिन्ना उठा। किन्तु मैं क्या हूँ ? समाज की उपज ही तो ! फिर यह कैसा समाज है ? यह कैसी प्रणाली है ? जहाँ मनुष्य को प्यार का हक नहीं, रोटी का हक नहीं, रोजी का हक नहीं !'

तभी श्यामू खाकर आ गया था और सोने के लिए अपनी चादर ठीक कर रहा था। मजबूत पत्थर की छाती और देह। नरेश को एक बेचैनी महसूस हुई।

उसने पूछा—'धरती पर सोते तुम्हें तकलीफ नहीं होती ?'

श्यामू हँसा, जैसे इन्सानियत का कोई पुराना नासूर छू दिया गया हो।

'धरती हमारी माँ है बाबू। इसकी गोद में तकलीफ कैसी ? माँ की इसी गोद में हम सदा से सोते आए हैं ! जो हमसे बड़े हैं वे पलँग पर सोते हैं।'

नरेश ने आँखे फैला कर उसकी ओर देखा। उसे लगा पलंग पर रुई की जगह काँटे बिछ गए है जो छेदते जा रहे हैं।

माँ तो है लेकिन इस धनी माँ के बेटे इतने दरिद्र क्यों हैं ? क्यों वे मन की पीर को दबा कर यह कह देते है बस यह कह देते हैं—हमारा क्या ? हमारे तो भाग ही खोटे थे !

नरेश जैसे तृप्त होना चाहता था, तृप्त करना चाहता था, बोला 'श्यामू क्या सचमुच तुम मानते हो कि मैं तुमसे बड़ा हूँ ?' उसे यह सवाल अजीब सा लगा लेकिन श्यामू ने कहा — बाबू जो बात है उसे ,समझने, न समझने से क्या होगा ? एक दिन मुझसे मेरा एक साथी बोला—ऊँच-नीच तो कुछ नहीं होता भाई, भगवान इसे नही बनाता हमीं बनाते हैं। ठीक है, लेकिन जिसने मुझे और मेरे बाप-दादों को खाना दिया, रहने को कुटिया दी, वह मुझसे बड़ा नहीं हुआ ?'

नरेश को एक कम्पन का अनुभव हुआ ! कैसे वह उसे बता दे कि यह सब जो कुछ हो आया है ठीक नहीं था ! उसने उसकी ओर करवट बदल कर कहा—'श्यामू, किसने तुम्हारे पूर्वजों की परवरिश की ? मेरे पूर्वजों ने ही तो ! लेकिन सच तो यह है कि एक आदमी अनेक आदमियों को खाना कहाँ से दे सकता है ? यदि देता है तो वह उसका नही होता ! वह दूसरे का छीना हुआ होना है। तुम्हारे पूर्वज खेतों में मेहनत करते थे, खून और पसीना एक कर देते थे तब उन्हे खाना मिलता था लेकिन उन्हे उतना ही नही मिलना चाहिए था। उनका हक और था। जब तुम्हारी माँ मरी तो किसने तुम्हे मदद दी ! मैं छोटा था लेकिन मुझे याद है। यह धरती तो किसी एक की नहीं है बल्कि सबकी है इसलिए इससे जो कुछ पैदा हो उसके बँटने का ढंग सबके लिए एक जैसा होना चाहिए। ऐसा नहीं होता, इसीलिए ऊँच और नीच का भेद है।'

श्यामू अपलक नरेश की ओर ताक रहा था। उस दृष्टि मे आश्चर्य था, निर्मलता थी ! उसके विश्वासों पर एक गहरी चोट होती गई थी। उसे दुख होना चाहिए था किन्तु उसका मन हर्षित था। उस हर्ष का मूल कहाँ था यह वह भी नहीं समझ

पा रहा था ! मन को एक चंचलता छू कर रह गई थी ! इस शंका का समाधान कैसे हो कि मोटरों के मालिक, मिलों के मालिक जिनकी उँगली में लगी अँगूठी में ही इतना धन रहता है कि मुझ जैसे सैकड़ों की पूँजी खरीद लें और पत्थरों पर जीवन काटने वाले, ज्वार की रोटियाँ- खाकर अधभूखे सोने वाले लोगों में कोई फरक नहीं ?

'यह कैसे हो सकता है ? यह कैसे हो सकता है ?' श्यामू के मन से आवाज आई !

उसने पूछा—'लेकिन बाबू क्या हममें और आप मे, हममें और लाला लक्ष्मीपत में कोई फरक नहीं ? भला यह कैसे हो सकता है ?'

नरेश ने बड़े प्यार से कहा—'कोई फरक नहीं श्यामू ! यह फरक बनाया हुआ है, नकली है। सोचो, तुम भी काम करते हो, मैं भी करता हूँ और थोड़ी देर के लिए मान लें लाला जी भी काम करते हैं। हम सभी बराबर काम नहीं करते। कोई कम करता है, कोई ज्यादा। कोई मुश्किल काम करता है, कोई आसान। इसलिए हमारी मजदूरी मे फर्क होना चाहिए लेकिन वह फरक इतना तो नही होना चाहिए कि तुम महीने मे चालीस रुपया पाओ और लाला जी चालीस हजार का मुनाफा कर ले। अगर मजदूर ही न हों और लाला जी अपनी पूँजी लिए काम करना चाहे तो हो सकता है ?

श्यामू ने सिर हिला कर अस्वीकृति दी !

'फिर जब सारे माल पैदा करने के लिए हम सब की जरूरत पड़ती है तो इसके मतलब हैं कि हमारी वजह से दुनिया की सारी चीजें पैदा होती हैं और जब हमीं माल को पैदा करने वाले हैं तो हम उसे अपने काम मे क्यों नहीं ला सकते ? जब

हमें उन चीजों की, जिनकी हमारे जीवन को जरूरत है, नहीं मिलतीं और कुछ लोगों को मिलती हैं तो फरक पैदा होता है और चूँकि ऐसा बहुत दिनों से होता आ रहा है इसलिए फरक इतना बढ़ गया है।'

श्यामू को पूरा संतोष हो गया। उसकी शंकाओं का अधिकांश हल के रूप में खड़ा हो गया था। वह खुश था। उसके मन में बड़ी घुमड़न थी, जैसे कोई बालक नया खिलौना पाकर खुशी से फूल उठा हो!

उसने चाहा कि वह कोई और बात पूछे, कुछ और बातें करे, सारी रात बातें करता रह जाय लेकिन नरेश ने कहा—'अब सो जाओ। रात घनी हो गई है। सुनते नहीं कारखानों के भोंपू गला फाड़ कर चीखते जा रहे हैं।'

नरेश की बातों से विश्वासों के अनेक टाँके जो लोहे के सियन की भाँति हो गए थे, कठोर झटके से टूटते गए। श्यामू ने कभी नहीं सोचा था कि उसके और इन बड़े लोगों के बीच एक ऐसी खाई है जो पट सकती है, एक दूरी है जो मिट सकती है। उसने सदा समझा, जीवन भाग्य की डोर से बँधा है—इसी लिए कोई गरीब है, कोई इतने धन का मालिक है, साथ ही पूरब जनम के कर्मों का फल भी तो भोगना पड़ता है। और इस संसार से मोह काहे का; चार दिन को रहना है, राजी-खुशी गुजर जाय। मालिक की खुशी ही अपनी खुशी है। यह दुनिया तो चिड़िया रैन बसेरा है, कौन साथ लाद के ले जाता है ?

किन्तु जैसे उसे किसी ने, जब कि वह अंधकार के गहरे गर्त में गिरता जा रहा था, आँखे मूँद कर वह जिन्दगी की आस को खो बैठा था, रास्ते में ही रोक लिया और पलकों को उठाने पर वहाँ अंधेरापन नही रोशनी ही रोशनी थी।

उसे पिछली बाते याद आईं, जब उसके एक साथी ने कहा था, सभी समान हैं, कोई बड़ा नहीं है! उस समय यह सुन कर ही वह काँप उठा था; क्योंकि ऐसा सोचना ही मालिक के प्रति घात करना था। ऐसा घात करने वाले को, उसने सुन रक्खा था, नरक मिलता है। और पंडितों के उस नरक में आदमी को रेंग-रेंग कर कीड़ों की तरह चलना पड़ता है, खून और पीप की जलती भट्ठियों मे झुलस-झुलस कर कर्मों का फल भोगना पड़ता है।

पर क्या सचमुच ऐसा है ?

उसकी आँखों में एक चित्र घूम गया। सुबह जब वह काम पर जा रहा था, एक मोटर उस जवाहिरात वाली दूकान के सामने आ रुकी थी और मरियल भिखारी वहाँ आकर रो पड़ा था ! माई जी, तीन दिन से भूखा हूँ, पैसे दे दो, भगवान आप का मोटर से निकलती हुई बदसूरत औरत ने कहा—'जानवर, पैसे माँगते रहते है। हट जा !' और उस औरत के भद्दे पाँवों मे पड़ी हुई सफेद सैन्डल आगे बढ़ गई। भिखारी हट गया। वह जानवर ही था। जानवर ही तो इस तरह हट जाया करते हैं

बाबू कहते थे, सौ-दो सौ बरस पहले विलायती देशों में भी ऐसा ही था। पैसे वाले लोग गरीबों की झोपड़ियों को जलाकर तमाशा देखते थे···आदमी को खंभे मे बाँध दिया जाता था और उसकी देह पर सप्प-सप्प लपलपाते हुए कोड़े बरसते थे, चमड़े के कोड़े ? उसे लगा वे कोड़े साँप की भाँति रेंगते हुए यहाँ तक बढ़ आए हैं, इस देश तक, अपनी इस धरती तक ·· ····

जर्मन देश के किसी आदमी का भी तो नाम ले रहे थे नरेश भइया, जिन्होंने पहले पहल आदमी को बताया था कि कुछ थोड़े से लोग बहुत से लोगों के सीने पर चढ़े हुए हैं और वे कभी धरम, कभी भगवान, कभी स्वामीभक्ती वे नाम पर उन्हे चूसा करते है—कभी नरक की बात कहते है, कभी सरग की और इसी तरह डराकर आराम से जिन्दगी बिताते हैं········

सरग और नरक, भगवान और धरम यह शब्द उसके मस्तिष्क मे वज उठे ! धरम !!

गाँव के पुरोहित जी भी तो कहते थे कि भगवान की आँखों मे सब समान है। वह किसी के साथ अन्याय नहीं करता। वह दया का सागर है, वह कृपा करके अवतार लिया करता है········

लेकिन ? जैसे कोई अन्दर प्रश्न चिन्ह की भाँति वक्र होकर खड़ा हो गया हो।

लेकिन ?

क्या सभी समान हैं ?

लाला लच्छमीपति के पास कितना रुपया है। ओफ ! उसका मन काँप उठा। मिल, मोटर, कोठी सब कुछ उन्हीं का है। इतना रुपया होगा कि गिन भी नहीं पाते होंगे !

और हम ? उसके सभी साथी उसकी आँखों में कौंध गए। कमजोर, बेबस और झुकी कमर वाले ! किशोरी कह रहा था, उसका भाई तपेदिक से मरा था। उसके पास पैसा नहीं था। पैसा होता तो वह उसे बचा लेता—वह कहता था, पैसा होता तो तपेदिक ही नहीं होती !

तब कहाँ लाला जी और हम बराबर हैं ? हम तो दो वक्त खाना भी नहीं पाते और उनके ?·····उनके तो सैकड़ों मन जूट का सामान रोज निकलता है। आखिर उस सामान से कितना रुपया आता होगा ? कितना रुपया !

तब हम समान कहाँ हैं ? कहाँ भगवान की नजर सब पर बराबर है ? वह तो हमको दो वक्त भोजन भी नहीं देता और वहाँ हमेशा जलसे होते हैं।

भाग्य है न ! पुरोहित जी ही तो कहते थे, जब देखो किसी के पास बहुत धन है तो समझ लो वह भाग्यवान है—उसका भाग्य प्रबल है। जब किसी को ब्राह्मण देखो तो समझ लो वह पिछले जन्म का देवता है और इस जन्म में धरती पर देवता बन कर आया है !

देवता ?

तो क्या गाँव के महँगू पंडित भी देवता हैं ? वह क्या नहीं

करते, क्या नहीं खाते ? तम्बाकू, मांस, मछली और शराब ! और उन्होंने ही तो गॉव के रमेसर तेली की गेंदवा को अंधेरे मे धरा था जब मार खाते-खाते बचे ....

नहीं-नही ! वह कभी देवता नही हो सकते, कभी नहीं । भला देवता ऐसे हो सकते हैं ! देवता की तो परछाईं नहीं पड़ती, उनकी बरौनियॉ नहीं गिरती और उनको भूख नहीं लगती, लगती भी है तो फल फूल.......

भूख ? यह शब्द उसे अच्छा नहीं लगा । उसे लगा, इसके भयानक पंजे है, बहुत भयानक जो उसके भीतर छेदते जा रहे हैं । वे पंजे बड़े होते गए और उन्होंने आस-पास चारो ओर घेर लिया । उन्ही की घेर मे उसकी मॉ है । मॉ ! उसे ऐसा लगने लगा कि चारो ओर से यही आवाज आ रही है । उसके शरीर की रग में, ऑखों मे, मन मे केवल मॉ घूम रही थी । वह भूख से मरी थी । वह बीमारी के बाद चार दिन तक भूखी रही थी ! बापू ने सबसे उधार मॉगा था, उन्होंने सबके आगे हाथ फैलाए थे लेकिन कोई नही पसीजा, किसी का मन नही पिघला । और मॉ मर गई । मरते वक्त उसने कहा था—बेटा अपने बापू को तकलीफ न होने देना, अपनी बहू को प्यार करना, उसे सदा प्यार करना !

लेकिन वह बहू भी कहॉ बची ? उसे भी तो हमारी गरीबी लील गई !

उसने एक लम्बी सॉस ली । उसका मन उबकने लगा। काली-काली डरावनी छायाएॅ ऑखों के सम्मुख घूम-घूम गईं । नरेश के शब्द उसके कानों मे भरने लगे—कोई बड़ा-छोटा नहीं श्यामू ! हम, तुम और जोवतराम—यह फरक बनाया हुआ है । इसी के सहारे, भाग्य का हाथ पकड़ कर पुरोहित अपना

बड़प्पन बताता है और सेठ या पैसे वाले लोग अपना धन्धा चलाते हैं।

जब तुम सोचोगे, तुम्हें पता चलेगा कि इस फरक के नीचे की नींव में घुन लगते गए हैं, वह आप मिट जाएगा, सच वह फरक मिट जायगा।

उसके भीतर, बहुत भीतर से एक चीख आई, यह फरक मिट जायेगा श्यामू, मिट जायेगा··· ···

तब ? गाँव की हमारी वह धरती कचनार के फूलों जैसी बगबगा उठेगी और ये चिमनियाँ, ये कारखाने सोना उगलेंगे··· और तब हम और बापू, हम और बापू······

आँखों से दो बूँद पानी नीचे की ओर ढुरक गया !

यह लाला लक्ष्मीपति की जूट-मिल है। भोर होता है और आकाश पर सोना फैल जाता है। जब सूर्य्य धरती के अलसाए अंगों को चूम लेता है तो मिल की दो चिमनियाँ धुएँ का अम्बार फेक देती हैं। लाला जी के मिल में जूट के ताजे सामान ढलते हैं। मजदूरों की देह पसीने से भरने लग जाती है।

यहाँ पसीने की बदबू मे जिन्दगी बंद है। फेफड़ों मे हवा जाने के रास्ते बंद हैं।

आदमी खाँसता है।

फेफड़ों का घाव बाहर खून फेक देता है।

यही इस मिल का जीवन है।

यही हर मिल का जीवन है।

एक मजदूर कच्चे जूट के बड़े गट्ठर को उठाता है और गर्म कमरे तक ले जाता है। फिर लौटता है और बोझ के पास पहुँच कर दूसरे मजदूर के कन्धों पर हाथ रख देता है। दूसरा व्यक्ति घूम पड़ता है।

'किशोरी ?'

'दिखाई नहीं पड़ते थे। काम पर नहीं आते थे क्या ?'

'आता तो था श्यामू, लेकिन मेरी ड्यूटी दूसरी चिमनी पर पड़ गई थी। अच्छे तो हो।'

'हाँ अच्छा ही हूँ।' किशोरी बोला।

किशोरी ने बोझ उठा दिया और श्यामू लेकर लौट गया।

इसी तरह एक बोझ उठाता है और दूसरा बोझ ढोता है। वैसे तो इस बोझ में कोई खास चीज नहीं है—यह कच्चा जूट है। वैसे तो हर बोझ में कोई खास चीज नहीं होती—वह कपास होती है, चमड़ा होता है या कागज के गट्ठर होते हैं। लेकिन ढोने वाले का, कच्चे से पक्का माल बनाने वाले का भी हर बोझ में अपना हिस्सा होता है और उस हिस्से का ईमानदारी से न मिलना ही खास चीज है। वह हिस्सा दूसरे के पास जाकर मुनाफा बन जाता है, वह मुनाफा बढ़ कर बड़ी-बड़ी पूँजियाँ बनता है और यह पूँजियाँ कभी भी इतनी विराट् नहीं हो सकतीं अगर सबको उसका सही-सही हिस्सा मिले··· ···

श्यामू फिर लौटा तो पसीने में तर था। बहुत देर से वह ढो रहा था। किशोरी ने उसकी ओर देखा और धीमे स्वर में कहा—'अब इधर का काम खतम है, दूसरी ओर जाना पड़ेगा। एक बात कहूँ ?'

'कहो न ?' श्यामू ने पसीना पोंछते हुए कहा।

'आज बनर्जी मैदान में सभा है। चलोगे ?'

'हाँ ! चलूँगा क्यों नहीं ?'

किशोरी ने बड़े आश्चर्य से उसकी ओर देखा।

उसने कहा—'सांझ को मैं मिल लूँगा।'

वह काम करने लगा। श्यामू दूसरी ओर चला गया। मशीन गों-गों करती हुई अपना काम कर रही थी·· ··

·· ··· जब हिस्से का प्रश्न आता है तो भक्तजन कहते हैं—अरे दुनिया में छोटा-बड़ा होना कोई नया थोड़े ही है। सदा से होता आया है। भगवान की मर्जी नहीं होगी तो कोई कैसे पैसे वाला हो जायेगा। इस तरह कहने वालों का मुंह तो कोई क्या बंद करेगा लेकिन इतना तो कहा ही जा सकता है कि – हे भाई

है ! या तो कहो कि भगवान की मर्जी का कोई सच्चा और न्यायपूर्ण ढंग है नहीं तो कहो कि तुम्हारे लिए भगवान की दया, पैसा पैदा करने वाले के साथ ही रहती है।

कोई भी भक्त इसे नहीं मानेगा, इसलिए जरूरत इस बात की है कि इस मुनाफाखोरी की जड़ को टटोला जाय, और जब इस जड़ की खोज करते-करते वहाँ तक पहुँचा जायेगा, जो कि कोई मुश्किल बात नहीं है, तो पता चलेगा कि वह (जड़) व्यक्ति या कुछ व्यक्तियों तक जाकर रह गई है। वे कुछ लोग कहते हैं—पूँजी हम लगाते हैं, तो मुनाफा कौन लेगा; इन्तजाम मे हम मेहनत करते हैं तो पैसा क्यों मुफ्त बाँट दे ? लेकिन सवाल फिर उठता है कि पूँजी पहले पहल आई कहाँ से; कोई भी आदमी जब पैदा होता है तो उसकी पीठ पर चिपका तो रहता नहीं कि इस दुनिया की इतनी मिल्कियत उसकी है। जाहिर है कि पूंजी इस धरती की होती है और मेहनत से उसका रूप सुख के साधनों में बदल जाता है। जब मेहनत की बात आई तो वह मजदूर ही की बात है, और वह किसी खास मजदूर की नहीं, हर मजदूर की बात हुई—हर मिल की और लालाजी के इस मिल की भी—

जहाँ तक इस मिल के लालाजी का सवाल है, वे बहुत उदार हैं। अभी देखिए न पिछले वर्ष उनको लगभग डेढ़ लाख का मुनाफा हुआ था। गांधी जी और उनके आजकल के भक्तों से प्रभावित होकर उन्होंने क्या किया कि हर मजदूर की मासिक तन्ख्वाह में आठ आना बढ़ा दिया। अब धूम मच गई, लालाजी महान् हैं, दाता हैं। उनकी इस मिल मे लगभग चार सौ मजदूर काम करते हैं। मजदूरी वगैरह बढ़ा देने पर भी उनको लगभग एक लाख सैतालिस हजार बचे। कुछ लोग कहेगे यह सारा रुपया

वास्तव में उनका नहीं है लेकिन यह भी तो सोचना चाहिए कि सेठ जी के दो लड़के हैं, एक अमरीका गया हुआ है और दूसरा भी जायेगा ही! तीन लड़कियाँ हैं। एक-एक लड़की की शादी में भी खर्च करेंगे तो ५०-५० हजार से क्या कम खर्च होगा? कोई भूखे, नंगे मजदूर तो हैं नहीं कि लड़की की जिन्दगी गोड़ देंगे।

फिर मजदूरों की बात आ गई। ये मजदूर भी अजीब होते हैं। एक दिन जब अहाते में मैनेजर साहब की कोठी पर एक बढ़िया मोटर आकर रुकी तो किशोरी अपने साथियों से बोला—'ऐसी ही एक मोटर, और एक कोठी हो तो कितना अच्छा हो?'

मजदूरों ने उसकी ओर गौर से देखा और जब समझ लिया कि उसका दिमाग ठीक है तो वे बड़ी जोर-जोर से हँसने लगे।

एक ने उसे छूकर कहा था—हे किशोरी! यह बहू बाजार की दारू वाली भट्ठी नहीं है, लाला जी की मिल है।'

किशोरी ने गल्ती जरूर मान ली थी क्योंकि वह घबड़ा कर काम में लग गया था। लेकिन तभी से उसके मन में एक अजीब भावना भर उठी थी।

जब शाम होने लगी तो वह श्यामू के पास आ गया। वे जब फाटक से बाहर हो गए तो उसने कहा—'आज तो सभा में जाने को पहले ही से बैठे थे। पहले तो इस बात से ही बिगड़ जाते।'

उसने जेब से एक बीड़ी निकाली, 'पिओगे?'

'नहीं?'

'इतनी जल्दी काया पलट कैसे हो गया?' किशोरी ने जला कर कश खींचा।

श्यामू ने कहा—'नरेश भइया ने वहुत-वहुत वात समझा के कहीं। हमको तो जानते ही हो भाई, यह सब कुछ पता नहीं था लेकिन तब से दिल मे वह वात वैठ गई। आखिर हम भी तो आदमी हैं!!'

सड़क पर वीड़ी के धुओं का आकार था, आदमी थे और कभी-कभी आपस मे गूँजते उनके गन्दे परिहास। जिन्दगी रिक्शों पर, वसों मे, पावों पर बहती हुई चली जा रही थी। उसमे एक लड़खड़ाहट थी अवश्य किन्तु जैसे उसमे निरन्तर गतिमान होने की शक्ति भी थी।

किशोरी वोला—'यही वात तो राजू दादा भी कहते थे। देखना सभा मे वे भी वोलेंगे। अहमद भाई भी यही कहते हैं कि आदमी आदमी के बीच फरक कैसा ?'

इतना कह कर किशोरी ने उसे अपनी ओर खींच लिया। एक रिक्शा वाला दो महकती लड़कियों को लेकर निकल गया।

जब खुशवू उन तक पहुँची तो श्यामू बोला—'वड़ी खुशवू है किशोरी ?'

'कोई बड़े घर की थीं। रिक्शा वाला भी खूव खुशवू मे खींच रहा होगा।'

इस पर दोनों हँसे और आगे बढ़ने लगे।

किशोरी ने फिर बात छेड़ दी। 'हमारी कोठरी के पास ही हसन रहता है। है तो मुसलमान लेकिन वड़ा सरीफ है। उसके घर की औरते भी बड़ी भली हैं। सो भइया उसको तपेदिक हो गई है।'

'तपेदिक ?' श्यामू को भय सा मालूम हुआ।

'हाँ हाँ तपेदिक भाई! खाँसता है, बुखार रहता है और कभी-

कभी खून थूकता है ! फिर एक साँस लेकर उसने कहा—'न जाने यह तपेदिक क्यों हो जाती है ?'

'अरे तपेदिक का क्या, जहाँ गरीब देखा, निबल देखा, घर लिया ।' श्यामू ने साँस खींच कर बड़ी उदासी से कहा ।

फिर वे दोनों चुपचाप चलते रहे ।

कलकत्ते की गुञ्जान सड़के बिजली की रोशनी से भींग गई थीं । उस रोशनी के नीचे आदमी चलता जा रहा था, ऐसे जैसे वह चलता जायेगा, वह रुकेगा नही क्योंकि उसके पास समय नहीं है, क्योंकि हरेक की अलग-अलग समस्याएँ हैं और वह उन्हे अलग-अलग ढंग से हल करना चाहता है, किन्तु क्या हरेक की समस्याएँ अलग हैं ? क्या इन चलते हुए, भागते हुए आदमियों के आगे केवल एक ही भावना पर फैलाए नही भागी जा रही है और वह आगे ही नहीं पीछे भी है, पीछे ही नहीं चारो ओर है । वह व्याप कर इतना बढ़ गई है कि आदमी उससे बाहर नहीं आ सकता । यदि वह उससे बाहर आयेगा तो, वह खत्म हो जायेगा, उसकी सभ्यता की टाँगों मे घुमान आ जायेगा ! लेकिन वह भावना क्या है ? सुख की इच्छा ही तो ! और सुख क्या अपने तक सीमित तत्वदर्शियों की भाँति, इस दुनिया को जैसी वह है, उसी रूप में स्वीकार कर लेना है ? यदि नहीं तो सुख, समाज के बीच प्राप्त सहज भोग में ही है, सुख उस सहज भोग के मार्ग को प्रशस्त रूप में अपनाना ही है ? सहज भोग का मार्ग क्या है ? वस्तु और सुख साधनों का समान वितरण ही न ?

किन्तु वह तो नहीं है !

क्योंकि हसन को तपेदिक है और सेठ की तोंद बढ़ती गई है ! लाला जी के पास मोटरे है—कोठियाँ हैं—कारखाने हैं ।

किशोरी के पास बदबूदार कोठरी है, चिथड़े हैं, हड्डियाँ हैं।

कहीं छाती पर सोने के हार हैं।

कहीं भूख है, कहीं अपच !

यह एक व्यक्ति की समस्या तो नहीं, सबकी समस्या हुई। तो इसे सबके माध्यम से ही सुलझाना होगा और सबका माध्यम समाज ही तो है !!

किशोरी ने कहा—'देखो वहाँ शोर हो रहा है। वह बनर्जी मैदान के लोगों की आवाज है।'

श्यामू मे फुर्ती आ गई ! वे कोलाहल की ओर बढ़ने लगे।

'लेकिन यह कोलाहल क्यों है ? इतने लोग इस मैदान में क्यों इकट्ठे हुए हैं। उन्हे यहाँ देह ढकने को सरकार कपड़े नहीं बाँटेगी ? यहाँ पेट के लिए राशन मुफ्त नहीं मिलेगा !

हालाँकि बड़े-बड़े नेता लोग कहते रहते हैं—'तुम्हारे भी दिन अच्छे आयेंगे। सब्र रक्खो। शान्ति से सब कुछ झेल जाओ। भारतीय हो न ! तुम्हारी संस्कृति कहती है (जब कि संस्कृति यह नहीं कहती)। बेकार (unemployed) हो तो कानून अपने हाथ मे मत लो। हाथ फैलाओ और सरकार का दिल पसीजा तो कुछ देगी ही। नहीं मिलता तो चुप हो जाओ। ईश्वर पर विश्वास करो। गांधी जी कहते थे—'बेटा, भूख ही सब कुछ नही है। राम पर भरोसा रक्खो, भला होगा ! बड़े-बड़े सत्याग्रह उन्होंने राम के भरोसे ही तो पार कर लिये और तुम हो कि रोटी के लिए, जोर लगाते हो, सभायें करते हो। छि: भारतीय संस्कृति का मुँह काला करते हो !

इतना समझाने पर भी लोग नहीं समझते और यहाँ इन सभाओं मे भर जाते हैं। न जाने उन्हे यहाँ क्या मिलता है ?

वे दोनों जब मैदान में पहुँचे तो वह प्राय: भर चुका था।

चारो ओर आदमी ही आदमी थे—मजदूर, दफ्तरों के बाबू, तमाशबीन, टहलते-टहलते पहुँच जाने वाले लोग। वे एक स्थान पर खड़े हो गए। माइक पर एक आदमी बोल रहा था—'साथियो! अमलेन्दु बाबू आ गए हैं। हमें खुशी है कि आप इतनी तादाद में इकट्ठे हुए हैं। थोड़ी देर और सब्र रक्खें।'

श्यामू को इस भीड़ में एक तरह की गर्मी मालूम हो रही थी, जो दैहिक नहीं आन्तरिक थी लेकिन जो दुखद नहीं स्फूर्ति देने वाली थी।

अचानक उसने देखा वे लोग आ रहे थे। सबकी आँखें उसी ओर उठ गईं। जब वे सभी लोग आकर बैठ गए तो एक गहरी शान्ति छा गई। अहमद सामने आया और कहने लगा—'दोस्तो, अमलेन्दु बाबू कानपूर के उन लोगों में हैं, जिनकी नजर हमेशा हम—आप जैसे लोगों की हालत पर रही है। वे अपने को हमारे ही तबके का समझते हैं। हम चाहेंगे कि आज के सदर की जगह भी वे ही लें।'

अहमद हट गया। अमलेन्दु उठा और माइक के सम्मुख आकर बैठ गया। उसने चारो ओर देखा—आदमियों का समुद्र उमड़ा था। क्षण भर मौन रह कर उसने कहा—'मैं आपका आभारी हूँ कि आपने मुझे सदर की जगह दी। मै चाहूँगा कि पहले श्री राजनारायण आपसे कुछ कहे।'

लोगों ने तालियाँ पीट दीं। राजू सामने आ गया और बड़ी नम्रता से उसने कहना शुरू किया—'प्रधान जी और दोस्तो! बात कुछ ऐसी नहीं है जिसे आप नहीं जानते। कुछ लोगों का कहना है—अब हम आजाद हो गए हैं, इस तरह की सभाओं से हमें क्या काम? हमें आपस मे मिलकर रहना चाहिए, अपनी सरकार है, अपने लोग हैं, द्वेष कैसा?'

ठीक है, इससे कोई इन्कार नहीं करता। आप हिल-मिल कर रहते भी हैं। आप चुपचाप काम करते है। पर बात यहीं समाप्त नहीं हो जाती। आपको अपनी इस जिन्दगी मे ही कुछ चाहिए। मसलन, खाना-कपड़ा, रहने की जगह ! और वह आपको नहीं मिलता। उसके लिए आप मॉग करते है, उत्तर मिलता है—मुनाफा नही होता, कहॉ से दे ! लेकिन आप जानते है, मुनाफा हर वर्ष होता है, क्योंकि बिना मुनाफा के कारखाने नहीं चल सकते थे, और आपका कुछ नही बढ़ता। एक ओर सेठ जी आपको अपने चंगुल मे रखते हैं, दूसरी ओर धार्मिक महात्मा लोग कहते है—काम करने से भागना क्या ? आखिर एक तबका काम नहीं करेगा, सेवा नहीं करेगा तो समाज का हित कैसे होगा ? सेवक तो हमेशा से स्वामी और मालिक का गुलाम है। भारत की यह हालत कभी नही बदली। आज धार्मिक पंडे जो हमारे जिग़र से लिपटे हुए हैं, (सामन्ती जोंक जो अभी तक हमारा खून पी रहे थे) इस जागरण से कॉप उठे हैं। वे समझते है कि अब उनके अन्दर का हैवान मनुष्य ने अपनी ऑखों से देख लिया है, अब उस हैवान के काले और तेज नाखून तोड़ दिए जायेंगे, अब उस हैवान की काली शक्ल हर इन्सान देखेगा और उसका गला मरोड़ देगा।

हमारे आर्थिक सवालों का हल जो लोग भाग्य और भगवान मे ढूढ़ते है उनसे मेरी प्रार्थना है कि वे अपने विश्वासों से जरा हट कर भी एक बार देखे कि क्या सचमुच उन्हे उन सवालों का हल मिल गया है। अगर वे कहते हैं कि मिल गया है तो आप खुद देखे—आप, जो यहॉ बैठे हुए है और जिनकी मेहनत ने धरती को इस सभ्यता की नीव दी है। क्या आपके साथ समानता का व्यवहार होता है ? क्या आपको अपनी जरूरते

पूरी करने के लिए इतने पैसे मिलते हैं कि आपकी बीबी और बच्चे तपेदिक और भूख से नहीं मरते ? क्या आप जहाँ रहते हैं वहाँ साफ हवाएँ आती हैं और बदबूदार नालियों की जिन्दगी से आप दूर हट गए हैं ? यदि ऐसा है तो सरकार ठीक कहती है—हिन्दुस्तान बदल गया है, आजादी ने आपकी जिन्दगी का रुख मोड़ दिया है। किन्तु अगर ऐसा नहीं है ऐसा नहीं है कि आप खाना पाते हैं, आपके आस-पास सड़ाँध ही सड़ाँध है, तो दोस्तो, इस हालत को बदलना होगा, नहीं बदलोगे तो तुम अपनी तङ्ग गलियों में इस खूबसूरत जिन्दगी को देखे बिना ही दम तोड़ दिया करोगे।

हमारी जिन्दगी मे खुशी बरसने का पहला रास्ता पैसा है, और जब तक वह पैसा इतना नहीं मिलता कि हम गन्दगी से दूर रह सकें, हम यों ही अधमरी लाश की भाँति घुट-घुटकर रह जायेंगे, और उसे पाने का तरीका यही है कि हम अपने अधिकारों की जोरदार माँग करें, अपनी आवाज बुलन्द करें, जिससे बड़े-बड़े तोंदियल लोग, मौज उड़ाकर शिक्षा देनें वाले, उपदेशक यह समझ जाँय कि यह अधिकारों के माँग की आँधी है और इसे रोकना समाज की सारी मुश्किलों से ज्यादा मुश्किल है।

यदि कोई तुमसे कहता है कि जिन्दगी की सारी तकलीफों को भगवान के नाम पर सह लो तो उससे यह भी पूछो कि उस दयालु भगवान के नाम पर सहने की कोई सीमा भी है। यदि कोई कहता है कि इस जन्म की गरीबी और मुसीबतें पूर्व जन्म के कर्मों के फल हैं तो उनसे यह भी जानना चाहो कि क्या वर्तमान दुनिया के सेठ और महाजन, अमीर, पंडे और महंत बड़े-बड़े सरकारी अफसर और नेता पूर्व काल के देवता और

फरिश्ते हैं जो दया करके इस धरती पर उतर आए है या यह अन्याय और असमानता की स्थिति इसी समाज की गंदी प्रणाली से जनम लेकर ऊपर को उठ आई है। यदि उनकी बातों से तुम्हे संतोषजनक उत्तर नहीं मिलता तो सभ्यता और इन्सानियत के नाम पर अपने अधिकारों को पाने के लिए धरती और आकाश एक कर दो !!'

'एक कर दो', 'एक कर दो', हजारो कंठों से राजू का यह स्वर फट पड़ा। इन्सान मचल गए।

सारा जनसमूह विकल हो उठा। उनका दर्द भड़काया गया था। उनकी वेदना के अथाह कोपों को किसी ने छेड़ दिया। अन्दर की आग बाहर आकर मुर्दगी को जला देना चाहती थी। ऐसा लग रहा था, जैसे उस समूह का प्रत्येक व्यक्ति एक अंगारा हो और वह अंगारा घी की बूँदों से प्रज्वलित हो उठा हो। बनर्जी मैदान की सड़कों पर चलने वाले लोग इस जनरव से खिचने लगे थे। मैदान खचाखच भर गया था।

अमलेन्दु मुकर्जी ने कहा—'मुझे बेहद खुशी है कि राजू बाबू को आप समझते हैं। उनको समझना अपने को समझना है। अब श्री अहमद बोलेगे।'

अहमद उठा। जन समूह शान्त हो गया। उसने बड़ी गम्भीरता से कहना आरम्भ किया—'अमलेन्दु बाबू और दोस्तो! राजू बाबू ने आपके सामने आप की ही कहानी कही है। हो सकता है कुछ लोग उसे ठीक न माने लेकिन मैं समझता हूँ उन्होंने बिलकुल ठीक ही कहा है। संसार का हर एक इन्सान चाहे वह योरोप में रहने के कारण गोरा हो चाहे अफ्रीका की गर्मी मे उसके चेहरे का रंग काला पड़ गया हो—समान है और जहाँ समानता नहीं वहाँ से जिंदगी का पूरा रस, मनुष्यता की गोरी छाया दूर रहती

है। किसी को अधिकार नहीं कि वह हमें गुलाम रक्खे और हमारे परिश्रम से पैदा किया हुआ, हमारी ही मेहनत का फल अपनी मुट्ठी में बाँध ले। जहाँ ऐसा होता है, वहाँ अत्याचार है, वहाँ इन्सानियत नहीं कुछ और बसती है। हैरीसन रोड और बालीगंज की बड़ी-बड़ी इमारतें, जिनकी हर एक ईंट पर तुम्हारे पसीने की बूँदें सूखी होगी, जिनकी नींव से ऊपर की छोर तक तुम्हारी ही मेहनत की छाप है, तुम्हारी हैं और उनके रहने वाले लोगों को कोई अधिकार नहीं कि तुम्हारी बनाई इमारतों के बीच वे रेडियो की मीठी आवाजों पर मुस्करा उठें और तुम बदबूदार तंग गलियों मे खून थूको, तुम्हारी माँ-बहनें अधनंगी होकर उनके सामने अपने कमजोर हाथ फैला दें। यह तुम्हारी हार है और तुम्हारी हार सारी मनुष्यता के नाम पर एक धब्बा है। क्या इस धब्बे को नहीं मिटाओगे ? क्या अपनी इन्सानियत वापस नहीं लोगे ? ... ..

'...तुम एक ज्वार हो और जानते हो ज्वार में कितनी शक्ति होती है ? वह हजारों टन के जहाज को बहा ले जाता है, वह एक बार जब उबलता है तो लगता है सागर उबल पड़ा हो और फिर शान्त हो जाता है। दोस्तो, यही उफान तुम्हें चाहिए, जिससे कि कलकत्ता क्या भारत के सारे रक्तखोर काँप उठें, जिससे तुम्हे जिंदगी मिले और तुम भी इन्सान बने रह सको।'

अहमद चुप हो गया। उसके उन शान्त शब्दों में एक प्रवाह था जो निरन्तर बना रहने पर तूफान से भी प्रबल होता है, एक गति थी जो हृदय के अन्दर बहुत भीतर तक घुस कर भावना कोपों को हिला देती है। मनुष्यों का वह समूह वेदना से तड़प उठा। अहमद ने लोगों के अन्दर का दर्द उभारा था। हर एक आदमी की आँखों मे पीड़ा छलक पड़ी। सड़क पर बिजली के

प्रकाश के नीचे मानवता वह रही थी, मोटरों और ट्रामों के विकल स्वर सड़क के सीने मे खोए जा रहे थे·······

फिर अमलेन्दु मुकर्जी उठा। उपस्थित जनता ने करतल ध्वनि की। कानपूर से आया हुआ यह आदमी शोपितों की आशा था। उसने वहाँ के मजदूरों मे, क्लर्कों मे और पिसते हुए वर्ग मे प्राण फूँका था, इसीलिए वहाँ के कारखानों मे काम करने वाले आदमी, दफ्तरों के वावू, अमलेन्दु मुकर्जी को अपनी आशा समझते, अपनी जिन्दगी !·· ····

"मुकर्जी वोल रहा था—'दोस्तो ! आज जिन्दगी वोझ वन गई है और आदमी उसे ढो रहा है, उसके लिए न तो जिंदगी मे कोई रस है, न खिचाव न वह यही समझता है कि कभी इसमें एक उफान होगी, एक आकर्पण पैदा होगा, क्योंकि उसके दिमाग मे यानी हमारे दिमाग मे यह वाते ठूँस-ठूँस कर भर दी गई है कि भुखमरी और गरीवी, अमीरी और ऐश्वर्य तथा सुख और दुख भाग्य के खेल हैं, कोई इसे मिटा नहीं सकता—यह होता रहा है और होगा ! यह समझना ही हमारे दुखों और परेशानियों के मूल मे है····· ···

'मेरा जन्म विहार मे हुआ था और मैने वहाँ देखा है कि भाग्य के नाम पर गरीव कहलाने वाले लोग, ऐसे लोगों के चंगुल मे फँस कर जो चुपचाप वैठ कर मौज करना चाहते है, यह समझते हैं कि यह जिदगी पिछले कर्मों का फल है। और वहाँ पर शोपक वर्ग की खूव चलती है। उत्तर प्रदेश मे जँहाँ मेरा घर सा हो गया है, मै देखता हूँ कि प्रत्येक नगर मे एक ओर ऊँची-ऊँची उठने वाली इमारतों की खूवसूरत पंक्तियाँ हैं और दूसरी ओर ऐसी झोपड़ियाँ, ऐसे कच्चे, खपरैलों के मकान जिनमें अधनंगे लोग अर्धमानव बने रहते है। और कानपूर······ जहाँ

सेठों का व्यापार सोना उगलता है, और जहाँ के मजदूर खून उगलते हैं—वहाँ की मजदूर बस्तियों में दोस्तो तुम्हारी ही तरह के लोग कीड़ों की जिन्दगी में जब मरते हैं तो म्यूनिसिपैलिटी की गाड़ियाँ उन्हें फेंक देती हैं। जलातीं तक नहीं। यह कलकत्ता है न! एक ओर हैरीसन रोड, बड़ा बाजार और बालीगंज है यानी उस ओर जिन्दगी है, आदमी का वैभव छलक उठता है और 'बड़े' उस छलकन में नहा उठते हैं, दूसरी ओर चीतपूर, बहूबाजार और किदिरपुर की संकरी पतली गलियाँ हैं यानी उस ओर मुर्दगी है, कोई काली छाया मड़रा उठती है और तुम उस छाया की चपेट में टूटते हो, चूर हो जाते हो।

यदि चाहते हो कि आदमी आदमी का भेद हट सके, दूसरों की मेहनत पर विलास करने वाले लोगों की क्रूरता थम जाय, तो अपनी मौजूदा जिन्दगी के खिलाफ आवाज बुलन्द करो और वह आवाज इतनी तेज हो कि तुम्हे हैवान समझने वाले लोगों को यह पता चल जाय कि तुम आदमी हो और इस तरह की दमघोंट जिन्दगी मे रह कर तुम नहीं मरना चाहते बल्कि इसकी जगह पर एक सुन्दर और स्वस्थ जीवन की पूर्ति चाहते हो ......

यही मेरे मन की भीतरी आवाज है।'

श्यामू को एक जलन महसूस हुई, जैसे उसके बर्फीले शरीर पर आग का कोई अंगारा टूट गिरा हो और चर्र के स्वर मे बुझ कर रह गया हो किन्तु बर्फ पिघलती जा रही हो।

रात घिर आई थी और बिजली के लट्टू दमक रहे थे। सभा खत्म हो गई। लोग जाने लगे थे। किशोरी ने उसके कन्धों पर हाथ रख दिया, 'चलोगे नहीं, खड़े ही रहोगे?' जैसे वह झटके से जाग पड़ा हो।

किशोरी विदा हो गया। श्यामू जब चला तो उसके मन मे एक विचित्र गूँज थी। उसे लग रहा था, अमलेन्दु बाबू बोलते चले जा रहे हैं और वह उस प्रवाह मे बहता जा रहा हो, बहता-बहता वह एक किनारे पर लग गया हो। वह किनारा रोशनी की चमक से भरा हुआ है।

उसकी नसों मे विचित्र अनुभूति हुई। उसने सोचा, उसके जैसे, सारे देश के—सारी दुनिया के लोग एक हैं।

सदा गरीबी में रहने वाले आदमी का सीना फूल उठा। वह तेजी से चलने लगा।

सड़क पर गाड़ियों का तॉता था। उनमे खुले-खुले गोरे भुज थे, खुशबुएँ थी, जिन्दगी की भीनी महक थी—डियर····

डार्लिंग

प्यार के ये शब्द और मादक संस्पर्श! और दूर कहीं अपनी, दिए से टिमटिमाती कोठरी मे कोई कहता होगा—

'राधो तू पीली होती जाती है।'

'कहाँ? सदा ऐसी ही तो थी!'

फिर दोनों चुप हो जाते होंगे। कुछ गूँज कर गायब हो जाता होगा।

यही व्यंग है। कठोर व्यंग, जो आदमी पर हँस रहा है। श्यामू उस व्यंग की एक लहर है, लहर।

ऐसी लहरें मिल-जुल कर सागर बना देती है, जो लहरता है, गरजता है।

बुर्जुआ समाज केवल एक बात से काँप उठता है—जब उसके नीचे किसी दूसरे समाज की ठठरियाँ हिलती हैं, जब दबा हुआ वर्ग गतिमान होने लगता है, तब ऊपरी वर्ग के पाँव डगमगाते हैं, भविष्य की घोर आशंका मड़रा उठती है। यानी नींव हिलती है, इमारत का हर छोर काँप उठता है।

जीवतराम मलकानी की आँखों के सामने कुछ घूमता है, उभरता है। आज तक तो ऐसा नहीं हुआ। क्या यह संभव है कि ये गंदे मजदूर विद्रोह कर दें? क्या चलती हुई इन अधमरी छायाओं मे इतनी शक्ति हो सकती है?

नहीं! मेरे हाथ में वह शक्ति है जो मनुष्य का गला दबाए रह सकती है, वह प्रवंचना है—हा हा हा! जो जंजीर है। कोई छूट सकता है इससे! विद्रोह करेंगे, काम पर नहीं आयेंगे, तो खायेंगे क्या? और खाने की शक्ति मेरे हाथ मे बंद है—पूँजी!

किन्तु यह सोचना व्यर्थ है। कौन कहता था, विद्रोह होगा, भूखे इन्सान काम नहीं करेंगे! मुन्शी—किन्तु नरेश? वह ऐसा कर सकता है? वह भड़कायेगा? यह कैसे हो सकता है? नरेश और संतोष मित्र हैं। क्या नरेश, संतोष के विरुद्ध, जीवतराम के विरुद्ध—एक ववंडर खड़ा करेगा। कौन उसकी बात मानेगा?

यह सब भ्रम है!

नरेश का मुन्शी यही तो कह रहा रहा था, वे मजदूरों से बहुत हमदर्दी दिखलाते हैं, मजदूर उनकी मुट्ठी मे है।

तो हमदर्दी पाप है ?

क्षण भर के लिए जीवतराम का मानव जाग उठा !

नहीं, हमदर्दी कर्त्तव्य है।

कर्त्तव्य है ? अन्दर का पशु बोला।

नहीं, उसका कर्त्तव्य उनसे काम लेना है। सहानुभूति काम मे बाधक हो सकती है। यह सहानुभूति बंद होनी चाहिए। यह छलना यदि और फैली, ये बदबूदार लोग यदि समझ सके कि उनके भी कुछ अधिकार हैं, तो कारखाने बंद होंगे, दिन-रात का सामान निकलना बंद हो जायेगा, व्यापार की कमर टूट जायेगी !

तब, तब क्या होगा ?

व्यापार की कमर, जीवतराम की कमर है !

वे अखबार पढ़ने लगे। सूरज की सुनहली किरणें उस खूबसूरत इमारत मे फैल गई थीं। दूसरी मंजिल से जीवतराम के सामने, हैरीसन रोड की अनन्त चकाचौंध फैल गई। इसमें कितना आकर्षण है ?

दक्षिण भारत में एक तूफान आया है। वह फैल रहा है और कौन जाने कब वह कलकत्ते तक पहुँच जाय। यदि कलकत्ते तक पहुँचा तब धरती कॉप उठेगी।

उन्होंने अखबार रख दिया। क्या सचमुच कुछ होने वाला है ?

तभी रेखा आई। उसने कहा—'डैडी, चलिए चाय पी लीजिए।'

'हॉ बेटी, चलता हूँ।' और वे उठकर डाइनिंग रूम मे चले गये। संतोष बैठा हुआ था।

रेखा, जीवतराम के गंभीर चेहरे की ओर देखती हुई बोली, 'डैडी, आप कुछ सोच रहे हैं ?'

सेठ के हृदय को जैसे कुछ छू गया हो। इससे क्या कहूँ। पुत्री की ओर देखकर वे चुप हो रहे।

'आज बिल्कुल चुप ही हो। बात क्या है।' ममी बोलीं। 'कुछ नही' सेठ ने उत्तर दिया। देश में कोई ऐसी चीज उभर रही है, जो खतरनाक है, मैने सुना है, मेरे मजदूर भी कुछ करने वाले हैं, कमूनिस्तों की शरारत है।'

रेखा मुस्कराई। उसने कहा—'डैडी क्या आप समझते हैं कि उनका रास्ता गलत है ?'

जीवतराम क्षण भर को सिहर उठे। यह रेखा बोल रही थी, उनकी पुत्री, जिसके रक्त में ऐश्वर्य और वैभव का असीम मिश्रण है। वे बोले-'तो क्यों नहीं सारी दुनिया आज कमूनिस्त हो जाती ? क्यों नही ये सारे लोग एक साथ मिलकर विद्रोह कर देते ?'

'इसका मूल कारण है।' रेखा का उत्तर था—कि उनकी मानवता को दबा कर, कोई काली और सड़ती हुई चीज ऊपर रख दी गई है। वही विश्वास है जो कुछ दिनों के बाद रूढ़ि बन जाती है—उसको छोड़ना पीड़ा को जन्म देना है और इसीलिए तंग बस्तियों मे सड़ते हुए भी, लोग पुराने विश्वासों से चिपट कर गलते जा रहे हैं।'

जीवतराम हँस पड़े। अभी बच्ची है, नयापन है न ! तभी ऐसी बाते कहती है।

वे बोले—'अर्थात सारी गल्ती उनकी है जो उनको काम देते हैं ?'

संतोष बिल्कुल चुप था। उसने केवल ममी से कहा था-'शाम को मैं दूसरी जगह खाऊँगा।'

रेखा ने चाय ढालते हुए कहा—'नहीं गल्ती उनकी है जो समझते हैं कि किसी से काम लेना उनका अधिकार है।'

जीवतराम तिलमिला उठे। उन्हीं का सारा दोष है? यह उनकी लड़की कह रही है? उन्होंने संतोष की ओर देखते हुए कहा—'तुम भी यही कहते हो संतोष?'

'नहीं' संतोष ने उत्तर दिया—'मैं यह नहीं कहता कि सारा दोष दबाने वालों का ही है। दोष उनका भी है जो दबे रहे हैं।' क्यों नहीं वे एक हुए, क्यों उन्होंने अपने को दबाए जाने का अवसर दिया? फिर भी जब वे उठना चाहते है, तो उन्हे अवसर मिलना चाहिए।'

जीवतराम के आत्म-सम्मान को गहरी चोट लगी। 'हम और कारखानों मे काम करने वाले लोग समान हैं? क्या ऐसा हो सकता है?'

'यह भी एक रूढ़ि है' रेखा बोल उठी। 'क्षमा कीजियेगा डैडी, जिन विश्वासों ने उन्हे घोर भाग्यवादी बनाया, उन्हीं विश्वासों ने उनसे धनी लोगों को यह भी बताया कि धनी होना भाग्य का खेल है, गरीब और अमीर के बीच में एक ऐसी खाई है जो कभी नहीं पट सकती।'

'शाबाश!' जीवतराम हँस पड़े। 'इस नई शिक्षा ने तुझे समानता का यह ज्ञान तो दिया। पुराने धर्मग्रंथ इस नई धारा मे बह जायेंगे।'

वे गंभीर हो उठे। उन्होंने सोचा था, संतोष से नरेश के विषय मे पूछ सकेंगे। किन्तु यह तो घर ही मे विरोध का एक जाल बिछ गया है। क्या यह जाल इतना सबल है कि वे उससे उलझ जायेंगे?

नौकर आकर चाय के बर्त्तन इकट्ठा करने लगा। जीवतराम

ने संतोष से पूछा—'तुम नरेश से मिलते रहते हो न? सुना है, वह मजदूरों से बड़ी सहानुभूति दिखलाता है?'

संतोष घबड़ा उठा। यह सहानुभूति दिखलाना तो कोई ऐसी बात नहीं हुई! यह तो कोई भूल नहीं है!

उसने कहा—'हाँ हाँ! मजदूर उसे प्यार करते हैं और वह उनको बिल्कुल अपना जैसा समझता है।'

'किन्तु यह व्यवहार हमारी इस स्थिति के लिए भयंकर न सिद्ध हो। कहीं चीन, मलाया और हिन्दएशिया भारतीय समाज में दुहरा न उठें?'

संतोष ने दृढ़ता के साथ कहा—'उसका दुहरा उठना हमारे और आप के हाथ में नहीं है डैडी। यह उनके हाथ में है, जिन्हों ने अब तक गरीबी के चोले मे जिन्दगी को जबरदस्ती बन्द कर रक्खा था।'

जीवतराम को लगा, उनके सामने का सारा संसार हिल रहा है। उस कम्पन के नीचे से कोई चीज उभर रही है और वे नीचे बहुत नीचे की ओर सरक रहे हैं। उस सरकन में असीम दर्द है, नीचे का हर छोर भयंकर है। वे ऐसा नहीं होने देंगे, नहीं होनें देंगे?.......

वे उठे। उन्होंने कहा—'आज मैं नरेश के पास जाऊँगा। उससे एक बार कहूँगा कि सँभल कर रहो क्योंकि तुम संतोष के दोस्त हो। यदि मान जाता है तो नरेश और जीवतराम के बीच की दूरी कम हो जायेगी, नहीं तो फिर नरेश जीवतराम के कारखानों की सीमा में पाँव नहीं रख सकेगा।'

अनन्त पूँजी का स्वामी गर्व से भर उठा था। जिस पूँजी ने उसे सेठ जीवतराम बनाया था, वह पूँजी मजदूरों को हैवान बनाए हुए थी।

जीवतराम अपने आगन्तुकों से मिलने चले गए। वाता-चरण की कठोरता वह गई। रेखा ने संतोप की ओर देखा, संतोप के मुख पर उद्विग्नता के चिन्ह उभर आए थे। नरेश की सहा-नुभूति कहीं उसकी कठिनाइयों का पहाड़ न वन जाय, और उस पहाड़ के नीचे सुलगती हुई आग न हो, जो पत्थरों का सीना फाड़ कर अपनी जलती हुई चिनगारियाँ वाहर छितरा दे।

ममी ने कहा—रेखा, तुझे ऐसी वात नहीं कहनी चाहिए थी जिससे डैडी को दर्द हो, उन्हे ठेस पहुँचे।'

'मैने केवल सच वात कही थी' रेखा ने उत्तर दिया। 'सचवात कही थी ?' संतोप ने कहा—'क्या सचमुच तुम चाहती हो कि हरएक व्यक्ति समान हो ? कारखानों की कालिख मे वदवू करने वाले लोगों के जीवन का एक अंश भी क्या तुम अपने जीवन में सोच सकती हो ? जव समानता होगी तो सुख की वह अनुभूति तुम्हे नहीं मिल सकेगी जो अभी मिलती है क्यों कि तव तुम्हारे पास शायद ही कोई ऐसी वस्तु हो जो दूसरे के पास न हो। सुख तभी मिलता है, जव दूसरे स्थान पर सुख की कमी हो।'

'वह सुख नही है ईर्ष्या है।' रेखा वोली—'किन्तु मै इस वात को मानती हूँ कि जो कुछ मैने डैडी से कहा—परिस्थितियों के वदल जाने पर मै उसमे वेचैन हो उठूँगी।'

वह चुप हो गई। उसकी दुर्वलता पकड़ ली गई थी। संतोप ने कहा—'जो तुम सोचती हो, वही मै भी सोचता हूँ, हजारों लोग सोचते हैं किन्तु केवल सोचते हैं, स्थिति को वदलना नहीं चाहते। तभी यह सव कुछ है—यह गरीवी, कराहे और चीखे।'

किन्तु रेखा चुप रही। वह खिड़की से वाहर सड़क की ओर देख रही थी। उस काली सड़क पर मोटरे चल रही थीं—

आदमियों का समूह चलता था, एक स्वर निकल कर वातावरण में गूँज उठता, फिर खो जाता, फिर गूँज उठता। जैसे जीवन एक क्षणिक गूँज है और कुछ नहीं ? यह 'कुछ नहीं' कहता है 'कुछ है।' इन्हीं के बीच अनन्त क्रम है—एक चक्र है जो चलता है, सदा चलता है।

रेखा दूसरे कमरे में चली गई। उसे कालेज जाना था किन्तु आज वह क्लान्त थी। आज उसकी भावनाओं को, उसकी चेतनाओं को जिसे वह शक्ति समझती थी—धक्का लगा था। वह सचमुच जो कुछ थी, उसके अंदर कुछ गल गया लगता था—जैसे अन्दर की वह खोखली अवस्था और बढ़ेगी। पाइथागोरस से मार्क्स तक—कितनी लम्बी श्रृंखला है, कितना विशाल दर्शन है—सत्य है, किन्तु वह, रेखा अपने मे उतार नहीं सकी। केवल छाया मिली ....।

तभी मोटर की एक घर्र हुई और रेखा ने देखा, संतोष जा रहा था ... .

संतोष के सामने समस्या थी। कही डैडी ने नरेश से कुछ कठोर बात कह दी तो ? वह नरेश को जानता है। सीधी बात नरेश को झुका सकती है, टेढ़ापन उससे टकरा जायेगा। वह इस्पात है। यदि कोमलता उस पर झुके तो वह शान्त रहेगा, यदि कठोरता उससे छू गई तो आवाज होगी, भयंकर आवाज !

संतोष बुर्जुआ समाज में पला है, उसके संस्कार वहीं के हैं किन्तु वे संस्कार जड़ नहीं चेतन हैं और जो चेतन है वह बदलता है। वह सोच रहा था ... रेखा ने ठीक कहा था, एक वर्ग दूसरे को दबाए हुए है। नरेश भी यही कहता है और वह तो यहाँ तक कहता है कि दबा हुआ वर्ग जब उभरेगा तो दबाने वाला दहल उठेगा—उसका गला घुटने लगेगा। शोषण का न्याय

क्षमा नहीं मृत्यु है। तो क्या हम दवा दिए जायेंगे ? क्या समाज की नस-नस मे फैले डैडी जैसे लोग अब नहीं रहेंगे ! नहीं, नहीं .... ·

वह कॉप उठा !

ऐसा नहीं होगा।

मोटर वढ़ रही थी ·· ·

वह नरेश से कहेगा, तुम उत्तर मत देना, मै सव ठीक कर लूँगा। किन्तु वह उत्तर क्यों नहीं देगा ? जव उसे कहा जायेगा कि तुम अपने पर विश्वास करने वाले व्यक्ति को धोखा देते हो, तुम इन काले आदमियों को इसलिए उभाड़ना चाहते हो कि तुम्हारी शक्ति वढ़े—तव वह शान्त रह सकेगा ?

मोटर से एक स्वर धीमा—ऐसा कि जिसमे जीवन का आभास हो सके, वाहर आ रहा था। उस स्वर की उन्मुक्त गरिमा जीवन के रस की ओर संकेत करती है। वही रस प्रकृति के हर छोर से फूटता है ओर उसी की थिरकन हर चेतन वस्तु से वाहर आती है—वही जीवन की चिर प्यास है—अन्तर की अनन्त आग है ·

संतोप के हाथ स्टीयरिंग ह्वील पर घूम रहे थे। उसका मन भविष्य की आशकाओं मे उलझ रहा था, कॉप रहा था। लगता, जैसे उसी की आशाएँ टूटेंगी, छितरा जायेंगी।

नरेश दफ्तर मे था । कारखाने का वह दफ्तर, जहॉ प्रत्येक घंटे के वाद साइरन का हाहाकार भर जाता, उसके जीवन का एक विनटूटा अङ्ग था। उस अङ्ग की छाया मे वह पल रहा था, वहीं उसे वह मनुष्यता दिखलाई पड़ती जिसके कन्धों पर हैवानी बोझ है जिससे वह कॉप रही है, लड़खड़ा रही है और मशीन उसकी गति को वॉधकर चीखती है··· ··

संतोप पहुँचा। उसने पहुँचते ही कहा—'यदि मनुष्य को अपने आगामी क्षणों का ज्ञान रहता तो कितनी शान्ति रहती ! जीवन की सारी बेचैनी का अन्त हो जाता !'

'किन्तु जीवन का रंगीन रूप तब कहाँ रह पाता ? आगत के मोहक सपने कहाँ बनते ? कौन संतोप मलकानी से कहता—डिअर, तुम चले तो नहीं जाओगे ?'

संतोष गभीर था। उसने कहा—'मैं केवल इसलिए आया हूँ कि तुम्हे यह बात मालूम हो जाय कि इन कमजोर लोगों से काम लेना ही तुम्हारा कर्त्तव्य है, इनके गर्म पसीनो को देख कर बेचैन हो जाना नही।'

नरेश ने उसकी ओर तीव्रता से देखा। मित्र की बात में कहीं स्वामित्व की गंध तो नही आ रही है। वह क्षण भर चुप रहा और सब कुछ पी गया।

'आखिर तुम कहना क्या चाहते हो ?'

'मुझे कुछ नहीं कहना है' संतोप बोला—'लोगों का कहना है कि तुम्हारी सहानुभूति से ये लोग काम नहीं करते और उसका प्रभाव व्यवसाय पर पड़ता है। डेडी ने आज कहा—नरेश तुम्हारा मित्र है और वह कुछ ऐसा करना चाहता है जो मुझे हिला देगी, मेरे व्यापार की हर ईंट काँप जायेगी।'

नरेश ने देखा, संतोष उसकी ओर अपलक आँखों से देख रहा था। उन आँखों में कुछ और था ......

संतोप फिर बोल उठा, 'और जानते हो ! रेखा से डैडी की पूरी बहस हुई। रेखा ने कहा वह मार्क्स के साम्यवाद को गलत रास्ता नहीं मानती।'

नरेश ने पूछा—'तब डेडी ने क्या कहा ?'

सन्तोप—तब उन्होंने कहा मै इसे नहीं मानता और मैं

किसी भी दशा मे यह सहन नहीं कर सकूँगा कि मेरे कारखानों मे कोई मजदूरों को मेरे विरुद्ध उभाड़ कर, परम्परा से चली आती हुई प्रणाली को, चूर-चूर कर दे । उनका संकेत तुम्हारी ओर था।'

'मेरी ओर ?'

'हाँ, क्योंकि उन्होंने सुना है कि तुम्हारी सहानुभूति ने इन आदमियों को अपनी मुट्ठी मे कर रक्खा है।'

और फिर वह कातरता से बोल उठा—'दोस्त ! जानते हो ऐसा कुछ हुआ तो क्या होगा ?'

'जानता हूँ' नरेश का दृढ़ उत्तर था—'मै इस कारखाने की चारदीवारियों मे पाँव नहीं रख सकूँगा ।'

एक दर्दीली शान्ति कमरे मे फैल गई। दूसरे कमरे का वृद्ध मुन्शी खों-खों करके खाँसने लगा और उस स्वर की काँपती लहरे चारो ओर भर उठीं। सन्तोष, नरेश की ओर देख रहा था। उसे लग रहा था कि यह इस्पात टकरायेगा और आवाज होगी !

सन्तोष बोला—'तब क्या होगा ?'

'तब ? तब मै नहीं रह सकूँगा—किन्तु मेरे यहाँ न रहने से सन्तोष और नरेश के बीच कोई दूरी नहीं होगी—वह दूरी मिट चुकी है, फिर नयी नहीं बनेगी ।' नरेश का स्वर उठता गया, फिर न जाने क्यों गिर गया।

'किन्तु नरेश मै प्रयत्न करूँगा ।' सन्तोष ने कहा और उठ खड़ा हुआ ।

वह बाहर आया। उसने देखा, दुर्बल हड्डियों पर बड़ी-बड़ी वजनदार गट्ठरें चढ़ रही थीं। मनुष्यों के पाँव उन बोझों से काँप-काँप उठते। सन्तोष के अन्दर का इन्सान बोल उठा—'क्या इन्हीं

के लिए संवेदना दिखलाना अपराध है? यदि यह अपराध है तो उनकी इस स्थिति के रहते हुए भी, उन बड़ी-बड़ी खूबसूरत इमारतों में स्प्रिंगदार काउचों पर शैम्पेन और ह्वाइट-हार्स की बोतलों को घेर कर रेडियो के संगीत पर झूम उठना क्या है? यहाँ मनुष्यता घुट-घुट कर मर रही है और वहाँ सब कुछ भूल कर जीने का कितना गन्दा प्रयास है? जो इन्सान सुख-साधनों के बीच समझता है जीवन वरदान है, वही इन काली चिमनियों के बीच सोचता है जिन्दगी अभिशाप है—वरदान और अभिशाप—कल्पना की विपुल भुजाएँ। एक मे कितनी बिछलन है, दूसरे मे कितनी चिलकन!

बिछलन और चिलक! वह चला गया।

... नरेश के सम्मुख प्रश्न-चिन्हों का जाल था। वे प्रश्न-चिन्ह बढ़ रहे थे, विराट होकर व्यक्ति की सत्ता पर फैलना चाहते थे। हा हा हा, तो जीवतराम को मुझसे भय है? मेरी सहानुभूति जीवतराम के व्यापार को हिला सकती है—इन कामगारों का दर्द इतनी शक्ति रखता है कि 'डी सोटो' और 'प्लाइमाउथ' के बीच चलने वाली गोरी शक्लें भय से काली पड़ जा सकती हैं। ...हड्डियों की काया कितनी कठोर होती है, कितनी भयंकर? जब हिलती है तो लगता है, मनुष्यता हिल रही है, जिन्दगी काँप रही है। जीवन का रस न मिलने पर हड्डियाँ ही तो रहती है, जो कहती है—'सुख ही रूप है और उसके न रहने पर कुरूपता है, दारुण कालिमा है और यह कालिमा इस समाज के हर छोर मे पिघल कर मिल गई है—इसीलिए यह हड्डियाँ हैं, यह कमजोर इन्सान है।

और वे कमजोर इन्सान कारखानों और दफ्तरों, खेतों और खलिहानों की सीमा मे भर गए है! इसी तरह हजारों

कारखाने और दफ्तर, असीम खेतों वाली धरती और उनकी गोद में गलते, लड़खड़ाते इन्सान""""

वृद्ध मुन्शी नरेश के कमरे मे आया और बोला—'बाबू, हसन कहता है उसे छुट्टी चाहिए। काम तो बाबू वह बिल्कुल नहीं करता और छुट्टी हरदम मॉगता है।' और बूढ़ा अपनी टूटी हुई कमानी के भीतर से इस तरह देखने लगा जैसे उसने कोई बड़ी बात कह दी हो।

नरेश ने गम्भीरता पूर्वक कहा—'बात तो तुम अधिक करते हो और उन बातों मे शिकायतें अधिक रहती है। हसन को यहॉ भेज दो।'

वृद्ध लौट पड़ा जैसे उसके अन्दर की दुर्बलता पकड़ी गई हो।

एक हड्डियों का ढॉचा कमरे मे घुसा। पीले चेहरे पर हड्डियॉ उभर आई थीं और चमड़े की सिकुड़न ऐसी लग रही थी, जैसे मकड़ियों के जाल शरीर भर मे फैल गए हों और उस जाल मे जिन्दगी खो गई हो। जहॉ जिन्दगी मिल कर खो जाती है, वही हसन है, वही हड्डियों का ढॉचा है।

'तुम काम पर आने लगे?' नरेश ने पूछा।

'और दूसरा रास्ता ही क्या था?' हसन बोला

'किन्तु तुम कितने कमजोर हो? अभी काम न करो, रोग फिर उभड़ उठेगा। एक बार तो दुहरा चुका है। उसने देखा, हसन की ऑखों मे पानी था और उनमे से महादारुण पीड़ा ढरक कर बाहर आना चाहती थी।

हसन ने कहा—'जब मजबूर हो गया तभी काम पर नहीं आता था—किन्तु अब देखता हूँ बैठने से काम नही चल सकेगा। और जब नहीं चल सकेगा, तब भी तो मौत ही है। यह मौत जैसे मुझे घेर कर खड़ी है।'

आँसू के मोती उन सूराखों की पुतलियों से ढुलक पड़े। नरेश काँप उठा जैसे—उन आँसुओं मे कँपा देने का असीम बल हो, जैसे वे आँसू मानवता की व्यथा हों—मर्मांतक वेदना।

'रोते हो ?' नरेश ने सान्त्वना दी—'जाओ घर जाकर बीमारी दब जाय तब आना। रोना कायरता है।'

हसन ने करुणा भरी आँखों से देखा। जैसे ढाल पाकर जल उस ओर ढुलक पड़ता है, स्नेह पाकर हसन की उन आँखों से जल की खारी बूँदे वह चलीं। वह सिसक उठा।

नरेश ने समझाया, 'हिम्मत न हारो, जिन्दगी ऐसी है नहीं जैसी इस स्थिति में लगती है—वह ऐसी बनाई गई है। उसको ऐसा बनाने में हम सबका हाथ है।'

हसन के पीले चेहरे पर रेखायें खिंच उठीं, वह मुस्कराया। 'हिम्मत न हारो—झेल जाओ, यह बातें कितनों दिनों से सुन रहा हूँ याद नहीं। जैसे हमारे समझते रहने पर भी कोई रास्ता नहीं निकला, हम आज भी मुसीबतों में जकड़ कर सफेद होते जा रहे हैं।'

नरेश का अन्तर झनझना कर हिल उठा। कितना कठोर सत्य है। हर एक गरीब से दया के रूप में अमीर कहता है, 'हिम्मत न हारो, जीवन में सन्तोष ही धन है!' यक्ष्मा का रोगी जब खून थूक कर कहता है—मौत आ गई है, प्राण क्यों नहीं निकलते, तब भी समझाया जाता है—साहस न खोओ, तुम अच्छे हो जाओगे—जीवन संघर्ष है।

संघर्ष! कितनी विषाक्त छलना इस शब्द के हर पोर मे उमड़ रही है। पूँजीपति कारखानों की काँपती परछाइयों के बीच, दुर्बल कमकरों को देखकर कहता है—हिम्मत हारना कायरता है, जो कर्म में लिखा है उसे भोग जाना वीरता है। काम करो,

क्योंकि मिल की इन्ही छायाओं के बीच तुम्हारी जिन्दगी है— यही तुम्हारा भाग्य है, यही ईश्वर की इच्छा है।

और प्रत्येक कमकर काम करता है और ऐंठ जाता है क्योंकि ऐंठना ही 'भाग्य' है, उस ऐंठन की तड़प ही ईश्वर है।

हसन चला गया। सूनापन फिर उभर आया था। प्रत्येक स्वर के बाद जो कठोर नीरवता फैलती है वह कहती है—उमड़-घुमड़ कर चीखती है कि स्वर ही नहीं, मैं भी हूँ। मेरा और स्वर का अटूट सम्बन्ध है, मै स्वर की परछाईं हूँ '...

वह परछाईं नरेश के मस्तिष्क मे सरक उठी! इस छाया के हिलने में हसन का रूप बढ़ने लगा, जैसे वे हड्डियाँ अब एक दूसरे से लग कर बजेगी.... जिन्दगी का दम टूट जायेगा........

कलकत्ते की गुञ्जान बस्तियों में गंदे और दुर्बल मनुष्यों का असीम हाहाकार है। इसी हाहाकार के अंतराल से एक प्रश्न उठता है—क्या सदा ऐसा ही रहेगा ?

प्रश्न का हल कहाँ है ? उस चुभन में ? जहाँ मनुष्य का हृदय जिन्दगी से ऊबा हुआ है या उस तड़प में जहाँ दम घोंट देने वाली उमस रेंग-रेंग कर फेफड़ों मे पैठना चाहती है ?

यह बहूबाजार है ! इसकी सड़कों पर ऊपर की मंजिल से कूड़े फेंक दिये जाते हैं, मछलियाँ जब सड़ने लगती हैं तो उनकी दुर्गंध वातावरण में भर जाती है—उस पर चलने वाले मानव उसमें साँस लेते हैं। अन्दर गलियाँ हैं, जब कभी आकाश के काले मेघ अपने अंतर का रस बरसा देते हैं तो उन गलियों में सड़न भर उठती है—उनसे अदृश्य कीटाणु निकल कर आदमी की देह में घुसते हैं और बड़े होते हैं। तब वहाँ मृत्यु का शीश उभर कर चाटने लगता है—हिरन की तरह मासूम बच्चों को और उन हड्डियों को भी जो जानदार होने के कारण दिल की हर तह में प्यार की खूबसूरत किरणों को छिपाए हुए घिसट-घिसट कर चलती हैं.......

यहाँ एक ऐसी इमारत भी है जहाँ दुर्गंध और तीव्र होती है, जहाँ मिट्टी के छोटे-छोटे कोसे टूटते हैं और इन्सान मस्ती में झूम उठता है। उस गंदे स्थान की बदबू साँसों को नही छू पाती। वहाँ सब कुछ भूल जाता है। वहाँ की दुनिया सदा हरी है।

संघर्ष और कठिनाइयाँ, वहाँ की दीवारों से टकराती हैं और दूर चली जाती हैं। बाहर काँपने वाले मानव, वहाँ नाच उठते हैं, कोई गाता है—दर्द भरे उलझे गीत, कोई अपनी कहानी कहता है, जिसमें पीड़ा होती है, जिसकी हर साँस में एक कसक होती है। वहाँ भीतर के अनन्त चीत्कार को दबाने का प्रयत्न होता है किन्तु क्या चीत्कार दबता है? क्या हाहाकार कम हो पाता है? वह और उभरता है, विशाल होता है। और जब तन्द्रा टूटती है तो धरती हिलती हुई सी लगती है। दबाने का प्रयत्न अन्तर की आग को और भयानक कर देता है। उन लाल आँखों के सम्मुख फिर एक कहानी चलती है '''भूख''''''' तपेदिक और अधनंगी औरते''''''वहाँ शराब मिलती है''''''

उस इमारत के ठीक सामने पानी की नाली बहती है। अन्दर सँकरापन है। उसके तीन भाग है। एक मे बोतले रहती है और उनके अन्दर से झाँकने वाली लाल और सफेद तरलता, जो हर एक के मन को गुदगुदा कर छलकती है। दूसरी ओर एक बड़ी सी कोठरी है जिसमे प्रकाश रहने पर भी अंधकार कम नहीं होता। वहीं उन बोतलों की चीज ढलती है, वहीं गाने गाए जाते हैं, वही भद्दे परिहास होते हैं और मनुष्य के अन्दर का पशु उभर-उभर कर कहता है—'मनुष्यता अभिशाप है।'

उसी कोठरी के सामने तीसरा भाग है। जो लोग उस कोठरी मे नही आ पाते, वे उस बरामदे मे बैठ जाते हैं और वहीं कोई तेज वस्तु स्नायुओं मे पिघल पड़ती है और मिट्टी के छोटे-छोटे सकोरों से रिक्त होता हुआ तीखापन गले के नीचे उतर जाता है।

अब शाम हो गई है। आदमी यहाँ भरने लगे हैं। कोई थक कर चूर हो गया है, क्योंकि शरीर पर बोझों का बवंडर

दिन भर चलता रहा है, किसी की पतली हड्डियों से चिलक उठ रही है जैसे लाल लपटों से जिन्दगी चटक रही हो। कोई मस्ती में रुपया दूकानदार के सामने फेक कर कहता है—'तीन छटाँक संतरा' और बरामदे में पीता हुआ व्यक्ति गा उठता है—

'हो राजा ' जियरा में उठल तुफान '' तुफान!'

वह बिहार के सारन जिले का है, नौकरी की खोज में कलकत्ता आया और बहूबाजार की इस इमारत में उसके हृदय का बवंडर उठ कर फैल रहा है''''

कोठरी के भीतर कोई शराब की आधी बोतल लेकर नाच उठता है और कहता है—'मेरी रानी, तुम मेरी जिन्दगी हो ''' हा हा हा '' मै तुम्हे पीऊँगा''''क्यों किशोरी किशोरी '?

किशोरी कहता है—'तीन छटाँक से क्या होता है ? पी गया न ? ''' समझे ! यह बंगाली ऐसा है न कि एक छटाँक भी उधार माँगू तो नही देगा। तुम दोगे ?'' रामनाथ तुम दोगे ?''''

रामनाथ ने पीना आरम्भ कर दिया था। मदिरा की तीखी सुगन्ध उसके मन को घेर कर फैल गई थी। कितना रस है इस जीवन मे, इस शराब मे, इस दुनिया मे ! यह तीखापन और कहाँ मिलेगा ? कहाँ मिल सकेगी यह अचिन्त्य अवस्था जिसमें सब कुछ भूल जाता है—दफ्तरों की गों-गों, कारखानों के अन्दर की डरावनी चीखें और तड़प-तड़प कर मर जाने वाली जिन्दगियाँ। कितनी मस्ती है, कितनी मौज है !

'तो मै चला '' नहीं दोगे न ?' किशोरी ने ललचाई आँखों से लाल शराब की ओर देखा, जैसे वह भोर मे फूट पड़ने वाली ऊषा की तरह कोई नायाव, नामिसाल चीज हो !

'मै दूँगा किशोरी'' तुझे कितनी चाहिए ?'

कोई अन्दर घुसता हुआ बोला ! यह लोचन था। उसके

हाथ में शराब की बोतल थी और मिट्टी का कुल्हड़ ! उसके पाँव धरती पर नहीं पड़ते थे। अभी कुछ दिन हुए उसका बच्चा छः महीने का होकर चल बसा था—इस बच्चे के लिए पिता ने कितने सपने सँजोए थे। सपने टूट गए। शराब उन सपनों को जोड़ती है—दर्द को कम करती है !

किशोरी ने कहा—'लोचन ! तुम हो ? रामनाथ तुम नहीं दे रहे थे—लोचन देगा। लोचन दिल का बादशाह है !' उसकी लाल आँखें झूम उठीं। उसने कुल्हड़ बढ़ा दिया।

लोचन ने रामनाथ की ओर देखा, जैसे वह कोई बहुत ही छोटी चीज हो। किशोरी का कुल्हड़ भर उठा। दौर चलने लगा। लोचन की आँखें भी भारी हो गईं। वह कहने लगा—'किशोरी ! तुम तो जानते हो यह संसार कितना स्वार्थी है ?······ तुम हँस रहे हो रामनाथ ? और इस संसार मे तरह-तरह के लोग है एक वह है, राधो के मिल का मजदूर-अफसर, हर एक से कितनी हमदर्दी रखता है—हसन को छुट्टी दे दिया है हसन मर रहा है बड़ा भला था वह !'

वह फिर पीने लगा। तभी बरामदे मे बैठे हुए एक आदमी का स्वर उठा—'शाला तुम, जानता है हमी वीर है · हमारी माँ को क्या कहा ? बदमाश, हम पीने आता है··· ·· पीने ······

दूसरा स्वर भारी था और बात साफ नहीं निकल पा रही थी—'तुम ह····हमारे···ऐ ऐ बीच मे क्यों बोला ·· मैं · मैं तुम्हारा गला दबा दूँगा ··समझा··· खून पी लूँगा।

और वह लड़खड़ा कर उठा, फिर गिर पड़ा।

महफिल चीख उठी—लड़ कर मर जाओ !' हा हा हा—स्वरों का समूह स्वरों मे खो गया। कहानियाँ चलने लगी, शराब के साथ मिल कर, लिपट कर, फिर कोई गाने लगा कसकता गीत

फिर सिक्के खनकते और आवाजें होतीं और शराब की गोद में आदमी सब कुछ भूल जाना चाहता, किसी की पुतलियाँ लाल हो उठतीं, कोई गाली देकर लड़खड़ाता और पीने वाले उठा कर हँस पड़ते .....

जिन्दगी काँप-काँप जाती !

किशोरी कह रहा था—'श्यामू को जानते हो न ! वही जो नरेश बाबू के यहाँ रहता है ! उनके गाँव का है ।....कहता था शराब छोड़ दो · हम सबको मिल कर अपना अधिकार लेना है...पहले बुद्धू था अब तो पूरा बिद्रोही हो गया है ! शराब छोड़ दोगे लोचन ?' कातर भाव से वह पूछ बैठा ।

'हाँ छोड़ देंगे ! शराब बुरी चीज है...थोड़ा सा और लो किशोरी !' लोचन पूरी तरह नशे में आ गया था ।

अब तक रामनाथ मौन था । खिलखिला कर हँस पड़ा । बोला—'शराब बुरी चीज है, छोड़ देंगे—थोड़ी और लो किशोरी ।'

नशे में भी लोचन को जैसे चोट लगी हो । रामनाथ ने फिर कहा—'तुम लोचन, तुम शराब नहीं छोड़ सकते । अगर तुमसे शराब छूट जायेगी तो किशोरी कैसे पी सकेगा ?'

वह फिर हँसा, हँसता रहा । तब तक किसी ने पीकर कुल्हड़ उसके पाँवों पर फेंक दिया । बरामदे मे बैठे खोंचेवाले की भुनी मछली में किसी ने हाथ डाल दिया । खोंचेवाले ने उसे पीछे की ओर ढकेल कर पाँवों से कुचल दिया । पीने वालों ने जोर का कहकहा लगाया ।

फिर वही भुनी मछली बिकने लगी !

गिरा हुआ शराबी चीख उठा—'आमि तोमार प्राण ले लेइबो ।'

...... कोठरी के भीतर एक कोने मे बैठा हुआ व्यक्ति अपने साथी से कह रहा था—'मै नहीं पीता था, पिछले वर्ष मेरा दस वर्ष का

लड़का चल बसा''''तुम तो जानते ही हो उसी के छः महीने बाद वह भी मर गई ''''' तड़प-तड़प कर मरी और मै कुछ नहीं कर सका ' '

उसने एक घूँट पी और बोला—'तब से यह शराब है और वह दफ्तर की नौकरी''''आँखों पर सदा चश्मा लगाए रहने वाला काना साहब बिगड़ कर गाली भी दे देता है, सुन कर चुप हो जाता हूँ क्योंकि कहाँ जाऊँगा और वह भी किसके लिए !'

उसका साथी एक लम्बा 'हूँ' कर बैठा । उसने एक बीड़ी जलाई और बोला—'मै बहुत दिनों से पीता हूँ !' जैसे उसे इस बात का गर्व हो ।

वह कहने लगा—'एक बार बहूबाजार ही के अस्पताल का डाक्टर बोला—पीना छोड़ दो, तुम्हारे फेफड़े सड़ने लगे है । मैने कहा, डाक्टर पीने से अगर फेफड़े सड़ते है तो न पीने से दिमाग सड़ने लगेगा । वह मेरी ओर घूरने लगा था । मैने कहा, घूरते क्या हो डाक्टर साहब अगर शराब नाम की चीज दुनिया मे न होती तो मेरे ही जैसे कितने लोग घुट-घुट कर मर गए होते । वह मुस्कराया । उसकी मुस्कराहट मे एक हमदर्दी थी और जब कभी मै खाँसता हूँ तो मेरी आँखों के सामने उसकी मुस्कराहट घूम जाती है 'उस मुस्कराहट मे हमदर्दी थी ''' '''
हमदर्दी कितनी बड़ी चीज होती है, दोस्त ।'

और वह खाँसने लगा, जब तक कि उसकी साँसे फूल कर उसके फेफड़ों मे टीस नहीं उठी । ऐसा लग रहा था जैसे जीवन फूल-फूल कर मृत्यु की हाथों मे ऐंठ रहा हो । शराब की बोतलों को घेर कर बैठने वाले इन्सान चीं चूँ करने वाली गाड़ी की तरह जिन्दगी को खीच कर चल रहे थे, बस चल रहे थे जैसे अब दम निकला, अब साँसे अन्दर ही अन्दर फूल गई वे फिर

वापस नहीं होंगी ····· वह हड्डियों के पुतले अब नहीं बोल सकेंगे ······ वे-चलते फिरते आदमी लाश हो जायेंगे ···लाश ·······

······· हर पीने वाला समझता है कि शराब उसे कुछ देगी जिससे उसकी व्यथा कम होगी, दर्द मर जायेगा ! किन्तु वह 'कुछ' कहाँ मिलता है ! पीड़ा और बढ़ती है ··· ·· और शराब में झूम उठना, भीतर के दर्द का झनझनाना है जो नशा टूटने पर काँटे की तरह अन्तर के हर पोर को छेद देता है ··

लोचन की बोतल खाली हो गई थी। उसकी आँखों से वह लाल शराब बाहर आना चाहती थी। किन्तु तृष्णा असीम है; अतृप्त है। वह बोला—'अब क्या होगा ?'

तभी रामनाथ का घोर अट्टहास उस कोठरी के हर छोर में गूँजा। उसने कहा—'अब विद्रोह करो !'

किशोरी का मुँह तम से भर उठा । कठोर व्यंग था। किन्तु व्यंग वह गया। नशा फिर उबलने लगा था । वह बोला—'तुम हँसते हो रामनाथ ! विद्रोह होगा और हम अपना अधिकार लेंगे।'

रामनाथ ने ऐसी दृष्टि से देखा, जैसे वह किसी भुनगे की ओर देख रहा हो—'हाँ विद्रोह होगा और वह शराब के लिए होगा, अधिकार के लिए नहीं। क्यों किशोरी ?'

'तुम मूर्ख हो !' किशोरी बोला।

'नहीं-नहीं' रामनाथ ने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—'शराब के लिए विद्रोह भी अधिकार के लिए ही होगा। मैं गलत कह गया था, माफ करना।'

फिर रुक कर बोला— 'मैं मूर्ख हूँ क्योंकि पीता हूँ, पीऊँगा।' तुम चतुर हो क्योंकि तुम छोड़ दोगे, विद्रोह करोगे। किन्तु दोस्त विद्रोह इस तरह नही होता। तुम सोच रहे हो मैं बहुत पी गया हूँ, इसलिए बक रहा हूँ। नहीं यह तो हर दिन का काम

है। शरावखाने में वैठ कर, दूसरों की शराव पीकर विद्रोह की बातें सोचने मे मजा आ सकता है किन्तु इससे अधिकार नहीं मिलते मैं पीता हूँ क्योंकि मैं अन्दर से वहुत दुर्बल हूँ क्योंकि मैं अपने पर ही कावू नहीं रख पाता शराब उस दुर्बलता को वढ़ा देती है किन्तु मजबूर हूँ ''''समझे '''' मजबूर हूँ ''

और वह उठा, लड़खड़ा कर चलने लगा। फिर बोला, 'कुछ बुरा मान गए हो तो माफ करना। मैं नशे में हूँ '''' एक बीड़ी दोगे ?'

लोचन को लगा, यह आदमी कितना कठोर है ? जैसे बर्फ; वर्फ कितना ठोस होता है किन्तु पिघल जाता है। किशोरी ने रामनाथ की ओर निश्छल आँखों से देखा। वह बीड़ी के लिए खड़ा था। वीड़ी जला कर किशोरी ने रामनाथ को दिया और वह लड़खड़ाता हुआ कोठरी के बाहर चला गया। उसकी प्रत्येक वात उन दोनो मजदूरों के हृदय मे गूँज रही थी—जैसे कोई आग विखरा कर चला गया हो।

लोचन ने किशोरी की ओर देखा। वह अवाक् उस दिशा की ओर घूर रहा था जिधर रामनाथ का उच्छृंखल व्यक्तित्व वाहर गया था। जैसे उस दिशा मे रामनाथ के पदचाप उभर रहे थे। उन चापों मे एक व्यक्तित्व का भास होता। उस व्यक्तित्व से सत्यता की गंध विखर पड़ी।

सामने पड़ी वोतल जैसे हँस कर कह रही हो, 'तुम मुझे छोड़ दोगे ? नहीं, ऐसा नहीं होगा !'

और रामनाथ की वात गूँज उठती, 'तुम शराव छोड़ दोग, हा हा हा' किशोरी काँप गया। कोई उसके अन्तर मे, नशे से भरे हुए मस्तिष्क मे कह रहा था, 'विद्रोह इस तरह नहीं होता। इस तरह अधिकार नहीं मिलते'''''''पगले दुर्वलता ही गति को

रोक देती है, सामने का विशाल पथ काँटों से भरा हुआ लगता है ! इन दुर्बलताओं को दबोच दो—कमजोरियों का गला दबा दो··· ···तब ····· तब····?

लोचन उठ पड़ा। उसने किशोरी से कहा—'चलो, घर चलें। लोग जाने लगे हैं।'

रात भीग गई थी। किशोरी उठा, और दोनों चल पड़े। उनके डगमगाते पाँव बढ़े और वे एक दूसरे को पकड़े हुए उस इमारत की छोर से बाहर की ओर सरकने लगे !··········शराबखाने के हर अंग मे सूनापन भरने लगा था। अभी-अभी जिस इमारत का प्रत्येक भाग, मनुष्य की अनेक गाथाओं से भर उठा था—अनेक दर्द से भरे हुए स्वर जहाँ हँसने का प्रयत्न करते, वहीं से साँय-साँय करता हुआ कोई स्वर उठने लगा। और वह साँय-साँय जैसे अपने में उन सभी स्वरों को छिपा कर मानव के क्रन्दन की विकल कहानी कहता। कुछ लोग अब भी वहाँ थे किन्तु उनका वहाँ रहना वातावरण को और भी शून्यता से भरे दे रहा था और बाहर सड़क पर जूठन चाटते कुत्ते जब भूक-भूक कर रोते तो लगता उस इमारत से रोने की अनन्त आवाजें निकल कर चारो ओर रेंग रही है

··· ··· उसी सूने वातावरण से निकल कर दो परछाइयाँ मुख्य सड़क पर आईं और तेजी से चलने लगीं। उनकी चाल से ज्ञात होता था जैसे वे छिप कर कहीं जा रही हों। अंधेरे मे चलती हुई एक परछाईं बोली, 'राजू, इस समय यदि हमे कोई वहाँ जाते देख ले और उसे इस बात का पता हो कि हम किस लिए वहाँ जा रहे है तो उस व्यक्ति को बड़ी कठिनाई का सामना करना होगा, जिसके पास कि हम जा रहे हैं।'

दूसरी परछाईं मुस्कराई, 'अहमद हमारा रास्ता साफ है,

उसमें कहीं भी कोई छिपी हुई भावना नहीं जिससे कि हमे भय हो किन्तु आज ऐसी स्थिति है कि हमें इस आधी रात मे चलना पड़ रहा है।'

दोनों चुप हो गए। सड़क पर अब भी लोग चल रहे थे किन्तु न मनुष्यों का अथाह ज्वार था न गाड़ियों का अटूट ताँता! वह जीवन जिसे दिन धरती के हर छोर पर बिखेर देता है, रात की तन्द्रा और भयंकर शान्ति अपने में उसका सब कुछ लपेट लेती है।

अहमद बोला,—'किन्तु जो हालत इस समय इन काम करने वाले लोगों की है, उसे देखते हुए भय लगता है। देखा न! लोचन और किशोरी और इस बस्ती का हर एक आदमी कितना पीता है? आखिर यह पीना कब तक जारी रहेगा?'

राजू ने गंभीरता से कहा, 'यह तो कोई भय की बात नहीं। यह तभी तक है जब तक पीने वाले यह नहीं जानते कि पीने से जीवन का रंग मुरझा जाता है इसकी आड़ में पशुत्व अपना चोला फैला कर मनुष्यत्व को निगल जाने का प्रयत्न करता है। क्योंकि वही मनुष्यत्व रोशनी है और वही रोशनी बिद्रोह करती है, अंधकार के सीने को चीर कर बहुत दूर तक फैल जाती है—हमारा काम है उस रोशनी को अंधकार के सामने रखना जिससे कि अंधकार का सीना फट जाय!'

बिजली के खम्भों में लटकते हुए सफेद लट्टू चमक रहे थे। राजू और अहमद उन लट्टुओं से होते हुए आगे बढ़ते गए। बिजली के वे लट्टू कलकत्ते की छाती पर जमे हुए रोओं की तरह हैं। जैसे शरीर के हर पोर से रोएँ निकल आते है, उसी तरह कलकत्ते की विशाल देह से यह भी निकले हुए हैं। ये आदमी को रास्ता दिखलाते हैं। इनकी चमक से, सड़कों पर

चलने वाली गाड़ियों के भीतर से कोई कह उठता है, 'रात कितनी शानदार है ? और हम उस रात में पास-पास लगे हुए दो प्यारे-प्यारे लोग हैं, क्यों ।डअर'.....

किन्तु वह सब कुछ इस समय नहीं है। वह सभी रात की अंधेरी पिपासा पी गई है। इस समय तो सूनापन है और उस सूनेपन मे दो परछाइयाँ बढ़ती जा रही हैं—राजू और अहमद....

चीतपुर का वह भाग आरंभ हो गया है, जो बहूबाजार से अधिक सँकरा है। यहाँ आदमी कहीं अधिक उमस के साथ अंदर के दर्द से छटपटाता है। यहाँ बिजली के लट्टू दूर-दूर हैं, और है क्या—वही अंधकार, जिससे आँखे झपने लगती हैं, जिसके सीने मे आदमी अपना मुँह छिपाकर सिसक पड़ता है, जहाँ जिन्दगी रो-रो कर कहती है, 'क्या मैं यों ही रहूँगी ? क्या जो लाल किरण भोर में पूरब से फूट पड़ती है वह मैं नही देख सकूँगी ? मेरे सीने का घाव नहीं भरेगा ? नहीं भरेगा ? बोलो ओ ! मेरी गोद के मुर्दा इन्सानो !!'...

.. अहमद ने देखा, वे एक दानवाकार इमारत के सामने आ गए हैं। उस इमारत की विशालता उसे भयावह रूप देती है। तभी राजू ने उसे छूते हुए कहा—'यही वह इमारत है ! इसी की दूसरी मंजिल पर वह रहता है। मेरे साथ ही ऊपर चलो।'

नीचे के दुर्बल कुत्ते भूँक पड़े। कोई रिक्शावाला सड़क पर गाता हुआ जा रहा था। रात चुप थी।

राजू और अहमद ऊपर चढ़ रहे थे। दूसरी मंजिल पर पहुँच कर एक कोठरी के सामने वे खड़े हो गए और राजू ने धीमे स्वर में दरवाजे को खटखटा कर किसी को पुकारा !

कोई उत्तर नहीं आया !

उसने फिर पुकारा !

आवाज आई—'कौन ?'

यह आवाज नरेश के सेवक श्यामू की थी।

राजू सिहर उठा। कहीं दूसरे के दरवाजे पर तो नहीं खड़े है ? अब क्या होगा ? 'अहमद, हम दूसरी जगह चले आए है।' वह बोला और मुड़ गया। बरामदे मे अंधेरा था।

तभी दरवाजा खुला और एक आदमी ने पूछा—'आप किसे चाहते हैं ?'

अहमद ने कहा—'हमे जीवतराम मिल्स के श्री नरेशचन्द्र से मिलना है।'

'आइए, यही कमरा है।'

राजनारायण की सिहरन प्रसन्नता में बदल गई। दोनों कमरे में घुसे। बिजली के प्रकाश मे श्यामू उन दोनों को देख कर चीख उठा—'राजू दादा ! अहमद भाई।'

श्यामू की चीख सुन कर नरेश की आँखे खुलीं, रोशनी में क्षण भर झपीं और उसने अपने पास खड़े व्यक्तियों की ओर देखा। नींद की तन्द्रा को तोड़ कर वह उछल पड़ा और राजनारायण के गले से लिपट गया, 'राजू ! मैं स्वप्न तो नहीं देख रहा हूँ। इस कलकत्ते मे तुम हो और कितने दिनों बाद इस कोठरी मे आए हो ! इतनी रात को ? और आप ... ...

'ये मेरे साथी हैं—अहमद' राजू ने उत्तर दिया, 'मेरे जीवन का हर छोर बदल गया है और अब दफ्तर मे काम करने वाली वह जिंदगी मर चुकी है।'

श्यामू एकटक घूर रहा था, जैसे उसके जीवन में असीम परिवर्त्तन करने वाले लोग उसकी पुतलियों के सामने खड़े होकर कह रहे हों—'हम सब एक हैं....'

अहमद ने कहा—'मैं आप के विषय में सुनता रहा हूँ।

बहूबाजार की उस बस्ती में, जहाँ के लोग कारखानों में काम करते हैं, आप का बड़ा नाम है ।'

'और मेरा नाम, श्री जीवतराम मलकानी कह रहे थे कि उनके लिए बहुत खतरनाक है ।' नरेश ने उत्तर दिया ।

नरेश राजू की ओर उन्मुख होकर बोला—'भाभी तो आराम से हैं और वह बच्ची ? अब तो वह बड़ी हुई होगी ?'

राजू ने कहा—'जाने दो, वह कहानी समाप्त हो गयी ! अब वह सब न सोचना ही अच्छा है···

नरेश ने आश्चर्य से कहा—'तुम कहना क्या चाहते हो ?'

एक बार वह पत्थर जैसा राजनारायण भी पिछली बातों को सोच कर पिघलने लगा । वह परिवार, वह स्नेह, वह निश्छलता सब कुछ नष्ट हो गई ।

उसने कहा—'जब से तुम मेरे घर से यहाँ आए, परिस्थितियाँ साँप की तरह जीभ लपलपा कर हम लोगों का जीवन चाटने लगीं । वे सरला और उस बच्ची को चाट गईं । तब से मैं अकेला हूँ—इस अकेलेपन में मैंने खूब सोचा है और अब बदल गया हूँ । जाने दो, वे सब बातें अन्दर का दर्द ही उभाड़ देती हैं, और कुछ नहीं करतीं । हम तुम्हारे पास दूसरे काम के लिए आए हैं ।'

नरेश मन ही मन काँप उठा । उसके रोम-रोम में एक भावना थरथरा उठी ।

उसने उदास सा होकर कहा—'किस काम के लिए ?'

राजू पुनः संयत होकर कहने लगा—'वह काम बहुत सरल नहीं है दोस्त ! किन्तु तुम चाहो, हम सब मिल कर चाहें तो हमारे जीवन की दिशा बदल सकती है । उनकी, जो दफ्तरों और कारखानों में बिखरे हुए हैं, जो धरती के भूखे अन्तर में अपना

खून भर देते हैं और जो समझते हैं, यह गरीबी, यह दिल को दहला देने वाली घटनायें, कहीं ऊपर से नियन्त्रित है, इनमे उनका कोई हाथ नहीं · '

अहमद बीच ही में कह उठा, 'आप इन्कार नहीं कर सकते नरेश बाबू ! आपके हृदय मे सहानुभूति है और वह सहानुभूति बवंडर खड़ा कर सकती है। यही सहानुभूति १७८९ मे फ्रांस के सामन्ती-युग मे पैदा हुई थी और एक तूफान उठ पड़ा था, जिससे सारी दुनिया की शोषक शक्तियॉ लड़खड़ा उठी थीं। १९१७ मे आदमी-आदमी के बीच रूस मे यही हमदर्दी पैदा हुई और आज तक उसकी लहर धरती के हर छोर पर हिल कर शोषितों को उठने का संदेश देती रही है। क्या वह भारत में काम नहीं आ सकती ?'

इसी प्रश्न के उत्तर में नरेश की स्वीकृति थी।

······ इमारत के हर छोर मे रात की उदासी बह रही थी। उसकी प्रत्येक ईंट से दिन के भूखे स्वर गूॅज-गूॅज कर उस उदासी मे मिल रहे थे। बाहर सब कुछ शव की तरह चुपचाप पड़ा था। यदि कुछ हिलता तो लगता उस सूनेपन मे मौत की तरह शान्त कोई मुर्दा वस्तु कॉप उठी हो।

नरेश ने अहमद के प्रश्न का उत्तर दिया,—'यहॉ भी वह हमदर्दी काम आ सकती है किन्तु इसके बीच मे एक खाई है। उस खाई में यहॉ के लोग खो जाते हैं—वह धर्म के नाम पर तर्क और व्यावहारिकता को दूर रख जीवन को किसी परा शक्ति पर छोड़ देते हैं।'

राजू ने कहा,—'किन्तु यह स्थिति तो चीन मे भी थी, उसके पूर्व रूस और फ्रांस मे भी यही था।'

नरेश ने दृढ़ता से कहा—'किन्तु वहॉ गांधी नहीं पैदा

हुए—वहाँ तुंग, लेनिन और वाल्टेयर पैदा हुए ! अन्तर है न ?'

राजनारायण चौंक पड़ा। उसे आशा नहीं थी कि नरेश ऐसी दलील सामने रख देगा जिससे क्रान्तियों की भावना दब जायेगी और एक अहिंसक भावना सामने आयेगी।

किन्तु उसने गम्भीरता पूर्वक उत्तर दिया—'गांधी जी का प्रभाव रहने पर भी एशिया के हर देश में एक हलचल है। इसका कारण यही है कि गांधीवाद कोई सुलझी हुई राजनैतिक विचार-धारा नहीं है। गांधीजी ने राजनीति मे प्रवेश किया किन्तु धीरे-धीरे उनका व्यक्तित्व धार्मिक होता गया। समाज की माँग आर्थिक रूप से महत्वपूर्ण है, इसीलिए दक्षिणी भारत में गांधीवाद पूर्ण रूप से आर्थिक माँगों के बीच डूब सा गया है और उत्तरी भारत भी उस लहर से अछूता नहीं।'

समय की संघर्षमय परिस्थितियों मे गांधीजी का महत्व इसीलिए है कि वे शान्ति चाहते थे—उनकी विचारधारा से यह बात प्रगट होती है कि वे राजनैतिक दाँवपेंचों से अलग एक नया पथ दिखलाना चाहते है किन्तु उस पथ तक कैसे पहुँचा जावेगा और किन वस्तुओं से उस पथ का निर्माण होगा उसका कोई, नुस्खा वे नहीं लिख सके। अन्त मे गीता और रामायण का भजन करते-करते उन्हे निर्वाण 'दिया' गया। और फिर वे धार्मिक महात्मा के रूप मे पूज्य हुए। उनका रामराज्य तुलसी के उस घोर काल्पनिक रामराज्य का नया ढाँचा है।'

बाहर प्रकृति का साँय-साँय चीत्कार कर उठा। अहमद ने कहा—'गाँधी जी का महत्व शान्ति दूत के रूप मे है किन्तु वह अशान्ति जिसने आदमी को हैवानियत की ओर खींचा है, कैसेदूर होगी—यह गरीबी यह भुखमरी और उसमे

तड़प-तड़प कर मर जाने वाले लोगों की दर्दनाक स्थिति'''... ?'

नरेश शान्त हो गया था। अहमद बाहर के अंधेरे में आँखे गड़ा कर कुछ खोजना चाहता था।

श्यामू के मन मे एक द्वन्द्व मच रहा था। क्या नरेश बाबू अहमद भाई और राजू दादा का साथ देंगे ? क्या वे ऐसा करेंगे ? तब नौकरी का क्या होगा ? सेठ जी तब क्या उन्हें अपने यहाँ रक्खेंगे ? और संतोष बाबू''' भला उनके रहते, नरेश बाले ऐसा कर सकते हैं ? नहीं''''''वे ऐसा नहीं करेंगे''''''तब''' ''' तब !

नरेश ने मौन तोड़ते हुए कहा—'मै तुम्हारे साथ हूँ। मैं उन सभी लोगों के साथ हूँ जो मनुष्य का जीवन चूस कर उसे पीना नहीं चाहते वरन उस चूसी हुई जिन्दगी को शक्ति देना चाहते हैं। मै चाहता हूँ कि भाग्य के नाम पर लूटने वाले बड़े-बड़े सेठों और पूँजीपतियों के हथकण्डे काम न आ सकें, धर्म की रूढ़ियों के अन्दर का जहर आदमी खामोश हो पी न जाए वरन् जो उसे पिलाना चाहते हैं उन पेशेवर अर्धमानवों को सचेत कर दे कि तुम झूठे हो, तुम धर्म, भाग्य और ईश्वर के नाम पर दूसरों का हिस्सा खाना चाहते हो, यदि ऐसा प्रयत्न करोगे तो हम तुमसे टकरा उठेंगे, एक तूफान खड़ा करेंगे जिससे कि तुम्हारा जहर इन्सानियत की छाया को छू न सके।'

उसकी नसें फूल उठी थीं। आँखों की तन्द्रा दूर हो गई थी और वह नए स्वर से बोल रहा था। श्यामू प्रसन्नता से पुलक उठा। उसका 'स्वामी' कितना महान है !

अहमद की आँखों से नरेश के प्रति कृतज्ञता के भाव छलक पड़े। उसकी आँखों के सामने कुछ घूम गया—जहाँ हर आदमी

बराबर है, जहाँ न धर्म की खाइयाँ हैं, न जातियों के भयंकर कॉटे, न गरीबी, जहाॅ सब कुछ समान है।

राजू ने नरेश की ओर देखा और मुस्करा उठा। उसके अन्दर की शक्ति तन कर बढ़ रही थी—उसके अन्दर का मानव विराट होकर विश्व में केवल मानवता का सुघर रूप देखना चाहता। उसने नरेश को कस कर अपने से बॉध लिया और बोला—'मुझे जो आशा थी वह टूटी नहीं दोस्त, दूनी हो गई। हमारे पथ में अनेक बाधायें हैं किन्तु उनसे टकराना ही जिन्दगी है—उन बाधाओं, रूढ़ियों और शोषणों के परे एक नयापन है जो प्रेरणा देता है, हमे वहीं पहुॅचना है!'

श्यामू अपलक ऑखों से यह सब देख रहा था। राजू ने अलग होकर कहा—'मैंने कितना सहा है, वह किससे कहूॅ! किन्तु अनेक ऐसे हैं जो इतना सह रहे हैं कि मेरी विपत्तियों का समूह उनके सामने नगण्य है। अनेक सर्प केंचुल बदल-बदल कर डस लेने की ताक में हैं। हमें उन सर्पों को कुचल देना है जिससे न वे आदमी को डस सके, और न उनका विष आदमी की नसों में घुस कर उसे मौत की ओर खीच सके।'

फिर निस्तब्धता फैल गई। उसका स्वर गूज उठा। उस कोठरी के वाहर उन स्वरों की तीव्रता तिरती गई—जैसे वह दूर तक जायेगी, बढ़ कर उस इमारत में घुस कर पैठेगी, रम जायेगी।

श्यामू चुप था, अब बोला—'राजू दादा, क्या सचमुच अब आदमी गरीव नहीं होगा? क्या हम, किशोरी और हमारी तरह के और लोग अब तकलीफ में नहीं रहेगे?'

'तुम किशोरी को जानते हो? वह बहुत पीता है। आज उसने बहुत पी थी। यदि यह पीना ही लगा रहा तब क्या

होगा, कुछ नहीं हो सकेगा ?' राजनारायण की बात में एक दर्द था ।

श्यामू की आँखें छलछला आईं । उसने देखा, राजू के गले में एक कम्पन था । उस कम्पन ने भोले श्यामू को हिला दिया !

अहमद उठ खड़ा हुआ ।

नरेश ने कहा—'मैं जीवतराम से नहीं डरता । हम सभी साथ हैं, जीवतराम मेरी नौकरी ले सकता है मेरी जिन्दगी नहीं ! न मेरे विचार उस नौकरी के पींजरे मे बन्द रहेगे ।'

राजनारायण और अहमद सीढ़ियों से नीचे उतर गए। उनके उतरने का शब्द उस कोठरी तक आता रहा—श्यामू का मन उस शब्द के बीच मचलना चाहता था, जैसे वे अपने पीछे कोई परछाई छोड़ गए हों, जो मड़राती और लचक उठती ।

नरेश ने विस्तरे पर जाते हुए कहा—'श्यामू ! राजू मेरा बहुत पुराना दोस्त है ।'

उसकी आवाज मे बीते दिनों की कितनी यादें घुमड़ रही थीं । हृदय के हर पोर में स्मृतियाँ उफनने लगी थीं जैसे वे फिर से आजायेंगी ...... एक से एक लग कर खड़ी होंगी .....

खेमराज चाय पी रहा था। सामने अखबार के पन्ने खुले थे और माधुरी लड़के को मक्खन लगाकर टोस्ट का टुकड़ा दे रही थी।

प्रोफेसर अखबार पढ़ता और चाय पी लेता। कुछ देर बाद उसने कहा, 'शाम को देर से लौटूँगा। इन्तजार मत करना।'

माधुरी ने बड़ी मंद भाषा में कहा, 'यह तो कोई नई बात नहीं है! और शाम क्यों कहते हो, रात नहीं कह सकते? तुम्हारी हर शाम नौ बजे रात के पहले नहीं खतम होती।'

प्रोफेसर ने सर उठाया। लेकिन उसके पास माधुरी के सत्य का कोई उत्तर नहीं था। फिर भी वह बोला—'तुम कहना क्या चाहती हो? कालेज का काम भी न करूँ। दोस्त हैं, उनके साथ कभी घूमूँ भी न?'

माधुरी ने कोई कड़ा उत्तर देना चाहा लेकिन जैसे मन को कोई भावना दबोच कर रह गई।

बच्चे ने कहा, 'पापा, मैं भी घूमने चलूँगा। माँ को भी ले चलना।'

माधुरी ने उसके मुँह पर हाथ रख दिया, 'नहीं बेटे, ऐसा नहीं कहते। हम दोनों के हिस्से का तेरे पापा घूम लेते हैं।'

प्रोफेसर को लगा, माधुरी के व्यंग में सच्चाई है। वह अपने पथ से हटता गया है। उसे चाहिए·······तभी उसे पैजी से किए गए वादे याद हो आए और उन्हीं में सब कुछ बह गया।

मन के सारे असत् को जोड़ कर उसने कहा,—'मुझे गलत न समझो माधुरी !'

माधुरी ने पति की ओर देखा और लगा जैसे बड़े भुलावे में उसे रखने का यत्न हो रहा है। उसके मनमें एक सन्देह था किन्तु वह ऐसे समाज की उपज थी, जहाँ पति को देवता की मान्यता प्राप्त है। वह सन्देह नहीं पनपता, फट जाता। नारी संदेहों की कोप है किन्तु वह पुरुष के शासन के नीचे दबती है और कराहती तक नहीं। क्योंकि जो पुरुष पति है वह देवता भी है न! देवता कल्पना की लोल मूर्त्ति होते हैं, जिनके विषय में सोचने से ही मन का कलुष धुल जाता है। पिछले पाँच वर्षों से उसने खेमराज को देवता ही माना है। देवता के काम है—मानवों के श्रद्धादानों को कृपा कर स्वीकार करना और फिर स्वर्ग की मादक ऊब-चूब में अप्सराओं के दूधिया अंगों को छूना, प्यार करना और मसल देना ?

खेमराज ऐसा ही देवता था।

प्रायः जब माधुरी कहती—'बहुत देर को आते हो। मन घबड़ा जाता है।'

तभी वह कहता—'कलकत्ते में मन कैसे घबड़ायेगा ? और फिर सुधीश है। रंगू भी तो रहता है।'

माधुरी चुप हो जाया करती। अपने बच्चे को हृदय से कस कर वह बरस पड़ती, पति की वे बातें उसके हृदय की संजोई भावनाओं को हिला देतीं।

चाय पीकर खेमराज दूसरे कमरे में चला गया। उसे केवल एक बात का भय था। कहीं पैजी यहाँ न आ जाय ? यदि वह आई और माधुरी ने देखा तो व्यर्थ के लिए एक गाँठ कड़ी हो जायेगी। किन्तु वह माधुरी को जानता था। सब कुछ हो जाने

पर भी वह कुछ नहीं कहेगी। मौन होकर वह सब कुछ पी सकती है—व्यंग भी, आग जैसी सुलगन भी !

पैंजी का रूप उसकी आँखों के सामने नाच उठा। वे गोरी बाहें, वे उभरते फूलते वक्षस्थल, वह मांसलता—अंदर एक भावना थिरक उठी। वह भविष्य के उन आगत क्षणों की ओर प्यार से देखने लगा। आगत में कितना रस होता है! वह आलिंगन—उन कसी हुई बाहों से। उसका शरीर झनझना उठा। उसने कमरे की खिड़की से सड़क पर चलते हुए लोग देखे""वह मद्रासी, कड़े-कड़े बालों वाला""रिक्शों की एक पंक्ति ही सरक रही थी""कभी कोई मोटर चली जाती और उसके बाद रिक्शा जिसे मशीन नहीं आदमी खींचता है" फिर लड़कियों की बसें" लाल पीली, सफेद साड़ियों "'''उनके अन्दर से झाँकने वाला यौवन, वह तनाव—सब कुछ बह रहे थे। जैसे जीवन एक सागर है और उस पर तैरने वाली यह देह है""सागर का कोई अन्त नहीं, छोर नहीं—देह चलती है जैसे सागर बुदबुदा उठा हो। यह क्रम अनन्त है, अटूट है""""

""तभी कोई सुन्दर बंगालिन सड़क से गुजरी""""प्रोफेसर उसकी ओर प्यास भरी आँखों से देखने लगा"""वह चली गई""" प्रोफेसर ने आँखे हटा लीं—उसका मन भारी हो गया !

उसी समय रंगू अंदर आया और एक पत्र मेज पर रख कर बोला—'बाबूजी यह खत डाकिया दे गया है।'

'जाओ !' कह कर खेमराज ने पत्र उठा लिया। उसे खोला ! कानपुर से आया था—

बेटा खेमराज,

आशीर्वाद !

तेरा पत्र आए कई महीने हो गए। बहू के कई पत्र आए

किन्तु तूने नहीं लिखा। यहाँ शीला बीमार है। तेरे पिताजी घवड़ा उठे हैं। शीला कभी-कभी ज्वर में बकने लगती है और बहू की बड़ी याद करती है। तू किसी तरह बहू को लेकर आ जा! मुझे बच्चो की हालत देख कर डर लगता है। जल्दी आना। बहू और सुधीश को प्यार!

तेरी माँ

शुभ लक्ष्मी

पत्र समाप्त होते ही प्रोफेसर ने माधुरी को पुकारा और पत्र हाथ मे देकर बोला, 'तुम्हारा जाना आवश्यक है। यदि चाहो तो कल ही चली जाओ। मुझे छुट्टी नही मिलेगी ...

माधुरी पत्र पढ़ रही थी। पढ़ते-पढ़ते उसकी आँखें छलक आई। दूर, उस घर की याद मे उसका अन्तर मचल पड़ा। जहाँ पिछले सात वर्षों से उसका घर बन गया था।

... शीला उसे याद करती है? कितनी भोली बातें करती थी न जाने उसे क्या हो गया? वह जायेगी .. जरूर जायेगी.... माँ ने लिखा है।

उसने कहा,—'मै रंगू के साथ चली जाऊँगी। तुम्हें छुट्टी लेने की जरूरत नहीं!'

खेमराज ने नौकर को पुकारा। वह आया! प्रोफेसर ने कहा, 'रंगू, तुम अपनी बहूजी को साथ लेकर कल ही कानपुर चले जाओ। इन्हे पहुँचा कर वापस चले आना।'

'अच्छा बाबूजी!'

सुधीश बोल उठा, 'माँ कहाँ चलोगी! मै भी चलूँगा।'

माँ ने कहा—'बेटा दादी के पास चलेंगे। बुआ बीमार है।' सुधीश प्रसन्नता से भर उठा। उसे उन जर्जर हड्डियों का प्यार याद हो आया, जब वृद्धा उसे सीने से लगा कर अपने

हृदय की सारी भावुकता बिखेर देना चाहती। माधुरी अन्दर चली गई।

प्रोफेसर चुपचाप उठा और बॉथरूम में चला गया। उसने शॉवर ट्यूब खोल दिया। पानी की झरती बूँदें उसके शरीर पर फैल गईं। वह बहुत प्रयत्न करता कि कानपुर का जीवन, इस नए जीवन से छू न सके किन्तु जैसे एक की छाया दूसरे में मिल कर कह रही हो, 'तुम हमें नहीं भूल सकते। सब कुछ यहीं नहीं है, कानपुर मे भी है जहाँ माँ हैं, पिता है ज्वर में छटपटाती बहन है।'

प्रोफेसर काँप उठा।

पानी की वे बूँदें छहरतीं नहीं लगीं, लगा वे गर्म हो गई है। उसने कपड़े बदले और बाहर आया। माधुरी ने थाली लगा दी और रंगू उसे मेज तक दे आया। किन्तु खाते समय भी वह सोच रहा था। उसके मस्तिष्क मे तीखी-तीखी भावनाएँ लहर उठतीं। मन के हर छोर में तूफान उठ रहा था। क्या उसका कुछ कर्त्तव्य नहीं? क्या कानपुर में शीला—उसकी बहन ज्वर से तड़पती रहेगी और वह नहीं जायेगा?.... " उसे लगा, कोई गर्म लोहा उसके मस्तिष्क से छू गया हो और हर कोने से यही ध्वनि आ रही हो कि तुम पशु हो, तुम वहाँ जाने से भागते हो, जहाँ की धरती और लोगों के प्रति तुम्हारा अणु-अणु आभारी है " जहाँ माँ है"'माँ और पिता जिसने अपने को गला-गला कर तुम्हे पढ़ाया था, वह परिवार जहाँ स्नेह साकार हो उठता है " वहाँ वहाँ "

किन्तु पैजी?

जैसे सागर की तूफानी लहरों पर तैरते हुए जहाज की देह फट गई हो और अथाह जल उस फटी देह मे सूँ सूँ करता हुआ भरा जा रहा हो ....

उसने थाली हटा दी। हाथ धोया और कालेज की ओर चल पड़ा। उसके मन में एक द्वन्द्व था जो कम नहीं होना चाहता, बढ़ रहा था, बढ़कर गरजना चाहता!

माधुरी आश्चर्य भरी आँखों से उसकी जाती हुई छाया की ओर घूरती रही। न जाने क्यों उसे अच्छा नहीं लगा।

जीवन का सूनापन मड़रा कर कह उठा, 'मुझमें तीव्रता है, चौंध देने की शक्ति है।' सचमुच कई वर्ष हो गए, जिसे सुख कहते हैं, पास नहीं आया। दूर खिचे रहने की भावना प्रबल रही। कभी मौन—नारी के अन्तर को कँपा देने वाली निःस्तब्धता! कभी प्यार के खोखले शब्द, जो गूँज कर मौन की भयंकरता चढ़ा देते! अंदर ही अन्दर घुट जाना—न कुछ कहना, न स्थिति से द्रोह की प्रवृति! कैसे चल सकेगा?

माधुरी को लगा, सब कुछ खोखला है—यह जीवन, यह उभरे हुए शरीर का यौवन! नित्य कोई हृदय को मरोड़ता है। उस मरोड़ में एक चिलक होती है। उस चिलकन पर कोई मुस्करा उठता है। कोई मरोड़ता है और मुस्करा उठता है। कोई उस दर्दनाक मरोड़ पर कराहता तक नहीं!

जो कराहता तक नहीं वही नारी है।

जो मरोड़ता है और हँस पड़ता है, वही पुरुष है!

* * * *

पैंजी प्रतीक्षा में बैठी थी। शो रूम का वह सौन्दर्य उसे अच्छा नहीं लग रहा था। अभी तक पता नहीं? प्रोफेसर ने कहा था—'यहाँ न आना। नहीं तो यह उसके घर ही चल जाती। जब कभी रिक्शे का आभास होता वह बाहर की ओर झाँक लेती। कोई नहीं होता! फिर निराशा फैल जाती। उसने कलाई की घड़ी में देखा—छः बजने में पन्द्रह मिनट हैं। जैसे

पन्द्रह मिनट एक युग हैं और उनके बीच का समय न कम होने वाला लम्बा पथ है किन्तु आस की डोर फैलती है, बढ़ जाती है। अवश्य आएगा। मै तो घबड़ा उठी हूँ! किन्तु व्यर्थ! वह आता ही होगा! फिर कोई सड़क पर दीखता। आ तो गया ... वही फेल्ट हैट है, वही ... ...व्यक्ति आगे निकल गया, मुड़ा नहीं। बेचैनी और बढ़ गई! घड़ी की सुई खिसक रही थी... ...छः बज कर तीस पर पिक्चर शुरू हो जायेगी। तीन मील 'एम्पायर' है भी तो। प्रोफेसर इसी तरह हर बार करता है।

और यदि मैं ही चलूँ? एक बार यह विचार उठा और दब गया। किन्तु वह इधर आया तो?

उसे क्रोध हो रहा था। प्रोफेसर ने फोन पर कहा था, पाँच बजे अवश्य आऊँगा! इस समय छः बजने में तीन मिनट हैं। कहीं पता तक नही! ये पुरुष ......

किन्तु यह शब्द उसके हृदय से टकरा कर झनझना उठे। प्रोफेसर सुन्दर है—उसकी बाहे कितनी कसी हैं! अचानक उसे पिछला इतिहास याद हो आया! नरेश!! वह काँप उठी! उसे लगा उसके अन्दर कुछ घूम रहा है, जो बाहर आना चाहता है, वह उसे चारो ओर से घेरना चाहता है। वह पॉश सबल है ... वह छूटना चाहती है......झनझना कर एक स्वर गूँजा और फैल गया ...... नरेश ......वह सिहर उठी ......उसे लगा, उस पिछले इतिहास में कुछ था जो छूट गया है—और जो रह-रह कर अन्तस को हिलाये देता है...

कोई शोरूम में आगया था!

पैंजी ने देखा, प्रोफेसर है। वह पास चला आया और बोला—'माफ करना पैंजी; मुझे देर हो गई। कालेज के सामने

एक ऐक्सीडेंट हो गया। किसी दफ्तर का एक क्लर्क बस से टकरा गया।'

पैंजी की विचार शृंखला भंग होगई। उसने प्रोफेसर की ओर देखा और कहने लगी—'आज तक कभी समय पर आ सके हो? ममी ने दो बार कहा, वह नहीं आएगा बेटी, कोई काम करने लगा होगा। पिक्चर चलना है या नहीं?'

स्वर में एक उलाहना था!

'जल्दी चलो! अभी बीस मिनट बाकी हैं!' प्रोफेसर ने घड़ी की ओर देखते हुए कहा!

मोटर की मशीन धीमे स्वर में घरघरा उठी। वह घरघराहट ऐसी थी जैसे किसी दफ्तर के क्लर्क की टॉग मोटर के नीचे आ गई हो....

'एम्पायर' सिनेमा के सामने पहुँच कर पैंजी ने मोटर रोक दी। प्रोफेसर ने फर्स्ट क्लास के दो टिकट ले लिए।

बिजली का नीला ग्लोब लटक रहा था, कुछ लड़कों की ऑखे चंचल हो उठी। एक ने दूसरे की बॉह खींचते हुए कहा—'अबे प्रोफेसर खेमराज को देखा।'

सबकी ऑखे उधर मुड़ गईं।

पैंजी और प्रोफेसर चले आ रहे थे।

दूसरा लड़का बोला—'कोई नई चिड़िया फॉसी है पार्टनर!'

'सुनो' तीसरा लड़का बोला—'अभी मजा दिखलाता हूँ।' और वह प्रोफेसर के पास से होकर गुजरते हुए बोला—'गुड इवनिंग सर।'

प्रोफेसर चौंक गया। उसने देखा, कालेज का कोई लड़का था। वह समझ गया इस सम्बोधन मे एक चोट है। उसने हाथ उठा दिया और आगे बढ़ गया।

लड़का अपनी गोल में लौट आया। हँसी का मिश्रित स्वर उस गुँजान वातावरण में उठा और खो गया।

एक लड़का बोला—'मैं उसे पहचानता हूँ। वह साउथ कलकटा के इनकम टैक्स कमिश्नर स्टीफेन बनर्जी की लड़की है। फिसलती है बेटे!'

'और प्रोफेसर भी कोई ऐसी-वैसी जमीन नहीं है—पूरा लवर है, लवर।'

और फिर एक बार हँसी गूँज उठी। वे अन्दर चले गए। सड़क, रोशनी से सफेद हो गई थी। उस पर चलने वाले लोग उस सफेदी मे नहा उठते।

हॉल के अन्दर रोशनी बुझ गई थी। केवल परदे पर प्रकाश पड़ रहा था। चित्र चलते, मुस्कराते। प्रकृति के चल और अचल रूप भी परदे पर हिलते। परदे पर एक संसार सिमट कर रह गया था। सारा सत्य हॉल मे वह रहा था, उस परदे पर, उस प्रकाश मे, उस खामोश दुनिया मे ...

नर्त्तकी छम-छम कर नाच उठी ... उसके अंग-चालन में एक खिचाव था ... उसके कसे हुए अंगों मे और दर्शक परदे पर हिलते हुए उस कसे शरीर मे आँखें डाल कर देख रहे थे, बस देख रहे थे ....

आगे की पंक्ति में मुँह में उँगली डाल कर किसी ने जोर से सीटी वजा दी ... फिर कई सीटियाँ बजी ....

नाचने वाली का अधनंगा शरीर झूम रहा था। सीटियाँ बज रही थीं। पैजी ने प्रोफेसर से कहा—'ये लोग कितने अनकल्चर्ड (असभ्य) होते हैं। प्रोफेसर ने केवल 'हूँ' किया। वह परदे पर कुछ देख रहा था जो उसे अच्छा लग रहा था, जो उसके स्नायुओं में ढल रहा था। नाचने वाली के वक्षस्थल के ऊपरी और नीचे

वाले भाग खुले थे। उसने कमर के नीचे घुटनों तक जालीदार कपड़ों का घेरा पहना था··· ··· जब वह नाचती तो मांसल जाँघें खुल जातीं ······ वे कितनी गोरी हैं कितनी भरी···· ·· प्रोफेसर ने पैंजी का हाथ दबा दिया! पैंजी को पसीना आगया!

कहानी चलने लगी·······

···रेल में बैठे हुए आँखें लड़ जाती हैं। प्रेमी युवक यानी हीरो अपने स्टेशन पर न उतर कर आगे चला जाता है। लड़की उसे अपने घर ले जाती है··· ·· इसी तरह प्रेम बढ़ता है ···· ···प्रेम नहीं इश्क और इस इश्क के चारो ओर घेर कर भद्दे परिहास और रूठना, मनाना···अजीब-अजीब तरह का दार्शनिक वार्त्तालाप और असंभाव्य घटनाएँ खिच खूँ खिच खूँ करती हुई बैलगाड़ी की तरह रुकती, घिसटती आगे बढ़ती है

'अन्त में ट्रेजडी हो जाती है····· लड़के का प्यार किसी दूसरी लड़की से हो जाता है और हीरोइन की शादी दूसरे लड़के से की जाती है, जहाँ जाकर वह अपने पहले प्रेमी की याद में घुल-घुल कर मर जाती है, और बीच-बीच में आँसुओं के असंख्य मोतियों का बिखरना ·· सिनेमा के महाकवियों के मीठे-मीठे गीत और ऐसी फिलास्फी, ऐसा चिन्तन जिससे कुछ नही मिलता सिवा उन भोंडे दृश्यों और वासना भरे गीतों के···

कहानी पूरे ढाई घंटे में समाप्त होती है। लोग उठने लगते है! कोई लम्बी साँस लेकर उस हीरोइन(नायिका)के प्रति अपनी संवेदना प्रकट कर रहा था, कोई कहता—'हीरो की एक्टिंग अच्छी थी।'

सबसे आगे वाले दर्शकों मे अब भी जोश था। कोई कहता—'ओ साला कहाँ गया बे! मै यहाँ खड़ा हूँ।'

एक व्यक्ति जिसकी दोनों आँखें विपरीत दिशाओं में देखती थीं, बोला—'वह नाचने वाली पूरी चक्कूमार थी बे।'

आस-पास के साथी हँस पड़े ! उत्तर आया—'वाह वे अँइचे !'

हँसी की आवाज और तीखी हो गई। कोलाहल अपनी सीमा को पहुँच गया।

प्रोफेसर के मस्तिष्क मे अब भी कुछ घूम रहा था···वह नाचने वाली ·· उसकी वे जाँघें · उसके कमर की लचक और ·· उन गोरे अंगों की थिरकन !

पैंजी को पिक्चर अच्छी नहीं लगी। वह प्रोफेसर से पूछ उठी—'तुम्हें कैसा लगा ?'

'बहुत अच्छा !'

पैंजी को एक धक्का सा लगा। 'मुझे तो बिल्कुल अच्छी नहीं लगी।'

'हाँ' प्रोफेसर अपनी भावनाओं को दबा रहा था, बोला 'मिडिआकर' (मध्यम श्रेणी की) थी।' वह पैंजी का विरोध नहीं कर सका !

एक सज्जन अपने साथी से कहते हुए जा रहे थे—'बुरा किया मिलाया नहीं।' वे निर्देशक पर नाराज मालूम पड़ते थे।

जीवन का तुमुल स्वर गूँजने लगा था। मोटरें खुलतीं और सरक जातीं। कुछ आ रही थी। दूसरा शो आरम्भ होने वाला था न! फिर वही लड़की नाचेगी, फिर वही कहानी दुहरायी जायेगी। पान वालों की दूकान पर रेडियो बज रहा था। बंगाली गाना हो रहा था। एक रिक्शा वाला बैठे हुए सेठ को देख कर अंदाजा लगा रहा था, वह उन्हे खींच पायेगा या नहीं। सेठ अपनी जेब का बटुआ देख रहा था ·······

दूसरी पटरी पर चलने वाला कोई मजदूर तृष्णा भरी आँखों से उस ओर देखता और उसका अन्तर कहता—'इतनी रोशनी ··· ऐसी मोटरे ! और वह आगे बढ़ गया ! उसके फेफड़े काँप उठे।

आकाश में चाँद निकल आया था। उसका प्रकाश मद्धिम था। उस बिजली के प्रकाश तक उसकी किरणें आतीं और खो जातीं।

... पैंजी अपने कमरे में सोच रही थी—'प्रोफेसर ने उसका हाथ दबा दिया? उसका रोम-रोम जल उठा, जैसे प्रोफेसर की वे उँगलियाँ आग की चिनगारी हों और वे अब भी उसका हाथ दबा रही हों.... ..उससे छू रही हों, लग रही हों ... ...

वहू बाजार में घोर शान्ति फैल गई है। पिछले कई दिनों से यहाँ का गुञ्जान वातावरण मौन सा हो गया है। जैसे तूफान के पूर्व सागर गंभीर हो उठता है और दूर-दूर तक बिखरा हुआ असीम शक्ति रखने वाला जल सो जाता है—लगता है, नीला जल एक ठोस दीवार है। पता तक नहीं चलता कि इस दीवार के सीने में असंख्य बुद्बुदे हैं जो उबल पड़ते है, उत्तुङ्ग थपेड़े हैं जो गरजते हैं, मचलते है। और जब तूफान आता है तो नीले जल की ठोस दीवार फट जाती है और सीने से निकल कर गरजती लहरे द्वन्द्व करती हुई क्षितिज तक उछल पड़ती हैं।

किन्तु धरती का तूफान और विपुल होता है।·····

·····वहू बाजार के प्रत्येक घर में साँप के फनों सदृश्य प्रश्न चिह्न उभर रहे है। ये प्रश्न चिह्न समस्याएँ हैं जो मनुष्य की साँसों से होती हुई फेफड़ों तक फैल जाती हैं और दम फूल उठता है।

तब क्या होगा? यदि वह तब भी नहीं झुका तो? लाठियाँ चली और गोलियों ने आग बरसाई तो? फिर वही भूखापन! वही हाहाकर?

लोचन ने राघो की ओर कातर आँखों से घूरा। उन आँखों मे रात के शराब की खुमारी थी। यह खुमारी नहीं मिटती। हर रात को गले के नीचे कुछ तीखी वस्तु उतरती है और हृदय झकझोर उठता है। सुबह को फिर लगता है, संसार एक छलना

है। यह क्रम न मिटे तभी अच्छा है। यदि शराब मिलती रहे, यदि सारी कठिनाइयाँ भुलाई जा सके तभी आराम की स्थिति है।

राधो ने कहा—'मैं दुख से नहीं डरती। यही होगा न, दुख और बढ़ जायेगा। कुछ दिनों के लिए अधभूखे नहीं बिना खाए सो जाना होगा लेकिन आगे तो आराम होगा।' उस भूख के बाद की भावना ने उसमें शक्ति दी थी। वह समझती थी दुख की इस गहन विषमता के बाद, सुख का शरीर है।

किन्तु लोचन ने उसकी बात पर विश्वास न करते हुए कहा—'तुम समझती हो दुख कट जायेगा। कौन जाने हड़ताल टूट जाय और तकलीफे अधिक बढ़ जॉय। हड़ताल टूट जाने पर जानती हो जीवतराम और उनके जैसे सभी लोग हमारा गला दबा देंगे। इसीलिए समझ कर काम करना है।'

राधो हँसी। उसने कहा—'तो इसी तरह सहते रहो। जब उनको दया आयेगी कुछ भीख फेक ही देंगे। राजू दादा आते हैं तो क्यों कहते हो, हम अपने अधिकार लेंगे, यह हमारा धरम है।'

लोचन ने कहा—'मैं भागता कहाँ हूँ। मै तो बस इतना सोचता हूँ कि जो कुछ मिलता है, कहीं वह भी बन्द न हो जाय।'

'अच्छा' राधो के स्वर मे परिहास की गूँज थी।

किशोरी ने अन्दर आते हुए कहा—'अरे लोचन भाई। क्या साथ बैठ कर बहस हो रही है?'

लोचन बोला—'आओ किशोरी! यह राधो है न, इसका कहना है हड़ताल होनी ही चाहिए, चाहे हमे अपने को बलि ही क्यों न चढ़ा देना पड़े।'

किशोरी ने देखा, यहाँ गंभीर बात हो रही थी। वह संयत होकर बोला—'जो राधो भौजी कहती हैं वह ठीक ही है लोचन।

हम भूखों नहीं मरेंगे यदि हम एक दूसरे से कंधा मिला कर आगे बढ़ें।'

क्षण भर शान्त रह कर उसने कहा—'चरस नहीं है लोचन भाई ?' जैसे यह सब जो कुछ उसने कहा वह उसी चरस के लिए !

'है, है क्यों नहीं' लोचन ने कोने में रक्खी हुई चिलम और चरस को उठाते हुए कहा। चरस की फूँक लगाने मे कितना बल चाहिए, लोचन सोच रहा था। उसने चिलम मे चरस रख कर आग रक्खी और किशोरी की ओर बढ़ा कर बोला—'लो' सुलगाओ।'

किशोरी ने लिया और दाँत फैला दिए। वह पीने लगा और एक लम्बा कश खींच कर लोचन की ओर चिलम बढ़ा दिया। उसकी आँखे भर उठीं—जैसे चरस आँखों तक बरबस फैल गया हो और उसकी कड़ुआहट से पानी निकल आया हो।

राधो देख रही थी। उसे अच्छा नहीं लगा। वह उठ कर जाने लगी।

किशोरी ने कहा–'जा रही हो भौजी ? नहीं पिओगी ?' परिहास राधो के कानों से टकरा गया। वह बोली—'मर्दों से बचेगा तब न पिऊँगी। और भला यह अमृत हम स्त्रियों को कहाँ नसीब, हम तो चरस से भी कड़वी चीज पीती हैं बाबू !'

किशोरी ने अनुभव किया, उसका परिहास फिसल कर गलत जगह पर जा बैठा था। उसे दुख हुआ। लोचन दम खीच रहा था। चरस का वह धुँआ टेढ़े-मेढ़े आकार बनाता हुआ खो जाता और पीने वाले उस धुएँ की ओर देखते हुए जैसे कह रहे हों—'तुम कितने अच्छे हो ! तुमसे ही तो नशा होता है ! तुममे कितना रस है ?'

और धुआँ मिटता जा रहा था !

लोचन ने पीकर चिलम एक ओर रखते हुए कहा—'यह हड़ताल तो होगी; लेकिन हमें कुछ मिलेगा या पहले की तरह उपवास करते-करते देह ऐंठने लगेगी।' उसकी लाल आँखों में एक आशंका थी।

किशोरी बोला—'मिलेगा, लोचन इस बार मिलेगा। हम हमेशा दब्बू रहे हैं न इसीलिए ठुकराए जाते रहे।'

कुछ देर रुक कर वह फिर बोला—'राजू दादा कह रहे थे कि नरेश बाबू की नौकरी भी छूटने वाली है।'

लोचन अपनी आँखों से घूर रहा था, चौंक कर कहने लगा—'अच्छा !'

राधो देख रही थी कि चरस पीने वालों के चेहरों पर शून्यता की रेखाएँ फैल जातीं। उन रेखाओं मे जिसके अन्दर नशा झूमने लगा था, एक दर्द मुस्करा रहा था और राधो को लगा, उस दर्द की मुस्कराहट उसके कलेजे मे सुई की नोक की तरह छेद रही थी।

किशोरी कहने लगा—'हसन की तबियत कल रात को ज्यादा बिगड़ गई थी। जोहरा बहुत रो रही थी। राजू दादा और नरेश बाबू भी आए थे।'

राधो के सम्मुख हसन का पीला मुखमंडल घूम उठा। उसकी हड्डियों को देख कर भय लगता है। और जोहरा ! उसका क्या होगा ? क्या होगा अगर ये हड्डियाँ तपेदिक की चपेट मे नष्ट हो गईं ? राधो के सीने में एक टीस रेंग उठी।

वह उठी और हसन के घर की ओर चल पड़ी। जोहरा को देखने के लिए वह व्याकुल हो उठी। वे प्रतिदिन एक दूसरे से मिलती हैं किन्तु आज उसका मन काँप रहा है ! हसन ? उसकी

आँखों ने ठठरियों की एक काया देखी ! आज तक उसने शराब नहीं पी। और आज उसकी शकल देख कर लगता है जैसे कब्र से कोई लाश निकालकर उठा लाई गई है जो हिलती है, बोलती है।

जब राधो वहाँ पहुँची तो वह बोल रहा था। पास मे जोहरा और शकीला थीं। दोनों चुप थीं। उनके मन मे कोई तीव्र भावना उठ रही थी जिससे वे सफेद पड़ती जा रही थीं।

राधो को देखते ही जोहरा उठ खड़ी हुई। वह पास आ गई। हसन हँस कर कहने लगा—'राधो, तू कहा करती थी, जिन्दगी संघर्ष है, उसे झेल जाना चाहिए। मै उसे ही झेल गया हूँ बहन, और चाहता हूँ कि कोई इस तरह न झेले।'

राधो ने देखा और उसके अन्तर में जैसे जलता हुआ लोहा छू गया। उसने कहा—'चुप करो हसन भाई, तुम जरूर अच्छे हो जाओगे।'

हसन के चेहरे पर फिर एक पीली हँसी नाच उठी। वह बोला—'मै अच्छा हो जाऊँगा, यह तो कोई नई बात तूने नहीं कही राधो। यह तो सभी कहते हैं किन्तु कैसे; यह कोई नहीं बताता।' फिर वह रुक गया। उसके मुख की हँसी खो गई। आँखों मे पानी छलक आया। उसने कहा—'मुझे केवल एक ही फिकर है राधो ! मै अपनी जोहरा के लिए कुछ नहीं कर सका, कुछ नहीं...और....

उसका स्वर काँप गया।

जोहरा की आँखें बरस पड़ीं। न जाने उनमें कितनी वेदना थी जो बह रही थी और अन्दर का खारा सागर आँखों से झर रहा था। शकीला भी रोने लगी। उसका तो सितारा ही डूब जायेगा। हसन उसकी ओर देख रहा था। उन आँखों मे मजबूरी के आँसू थे और उन हड्डियों पर गरीबी के निशान !

राघो ने यह सब देखा। वह बैठी रही। उसे लगा, यह सारी धरती हिल रही है। भूचाल आया है। वह आँसुओं का भूचाल है और सब कुछ उसमें हिलता है। वह डगमगा रही है, वह घर, वह सारी दुनिया—जैसे ये सारी हिलने वाली चीजें, सब कुछ छितरा कर रह जायेगा'''वह इन्सान, वह जिंदगी''''''

उसे एक चोट लगी। हसन कह रहा था, 'रोती है पगली! मैं तो इसलिए रो रहा हूँ कि दुनिया छूट जायेगी। चाहे कितनी भी तकलीफ हो, दुनिया से सबको मुहब्बत होती है। खुदा ऊपर है बहन! तू उसके ऊपर विश्वास रख!'

जोहरा चीख उठी और हसन की खाट से लिपट कर कहने लगी—'भाई, तुम इस तरह न बोलो। न जाने क्यों मुझे डर लगता है। रात को तुम बिल्कुल चुप थे और इस वक्त इतना बोल रहे हो।'

हसन चुपचाप सुनता रहा। जोहरा के गले का स्वर रेंग-रेंग उठता। शकीला चुप हो रही थी। उसके हृदय मे एक भीषण हाहाकार हो रहा था जो कहता, क्या होने वाला है? खुदा, तू हम पर रहम नहीं करेगा? हम बदनसीब यों ही घुट-घुट कर मरेंगे?

एक मौन निस्तब्धता फैली थी। लगता, श्मशान की जलती हुई धू-धू बुझने ही वाली है—अब वहाँ काली-काली छायाएँ नाचेंगी, अब वहाँ भयकर अंधकार बिखर उठेगा, और धू-धू करती हुई लपटों की चिनगारियाँ इस अंधकार मे सो जायेंगी। फिर कोई बोल उठता। चिनगारियाँ उठतीं और आग उबल उठती!

राघो के मन मे एक कसक उठी। इसी तरह बेचैन तो वह भी हो गया था, उसका नन्हा''''''''वह दृश्य उभरा और उसकी नस-नस में गरज उठा। उस गर्जन मे एक पीड़ा थी जो खुल कर

अट्टहास करने लगी—अभी कुछ ही दिनों पहले वह माँ थी। उसका नन्हा मुस्कराता था, हाथ-पाँव फेंकता। वह उसे हृदय से बाँधे रखती! किन्तु!! ''''सब कुछ जैसे जल उठा हो''' वह नहीं रहा, वह मिट्टी हो गया और उसने दीवार से अपना सिर टकरा लिया या ' किन्तु क्या वह लौटा?'' कौन लौटता है?

वह हसन की ओर घूरने लगी!

हसन अब भी उसी तरह लेटा था। जोहरा खाट से सिर उठा कर दीवार की ओर देखने लगी थी। आँसू उसके कपोलों पर जम गए थे। शकीला अब भी रो रही थी।

पत्नी की ओर देखते हुए हसन बोला—'खाना नहीं पकाओगी क्या? देख रहा हूँ तीन वक्त से तुम दोनों इसी तरह बैठी रहती हो। शकीला''''''जोहरा!'

उसका गला थर्रा गया।

राधो ने जोहरा से कहा—'मैं खाना दे जाऊँगी। तुम घबड़ाना मत।'

और वह उठने लगी। हसन ने कहा—'अब कब आओगी राधा बहन? मेरा कोई ठीक नहीं है, किसी भी वक्त जा सकता हूँ, फिर कहाँ भेंट होती है'''कहाँ भेंट होती है?'

'नहीं भाई ऐसा न कहो, मैं जल्दी ही आ जाऊँगी!' और वह बाहर चली गई। बाहर नाली का गंदा पानी बदबू कर रहा था। मरियल कुत्ते हाँफ-हाँफ कर इधर-उधर सूँघ रहे थे। आदमी चल रहा था, मौन—हृदय में एक टीस लिए। ऐसी बस्तियों में, आदमी एक लाश है जो चलता है, बोलता है—उसे जलाया नहीं जाता, न उसे दफ़नाते हैं वरन् सारे जीवन भर उस चलती-फिरती लाश से मरघट की गन्ध आती रहती है, कब्र की घुटन की तरह हड्डियों की काया अन्दर ही अन्दर उमस कर मिट्टी हो जाती

है। यहाँ जीवन भर मौत की परछाइयाँ मड़राया करती हैं। हैवानियत अपने बड़े-बड़े भयंकर नाखूनों से आदमी की जिन्दगी चीर रही है। मनुष्य कराहता है और तड़पता है, फिर चुप हो जाता है—शव की तरह ...

रात को हसन फिर खाँसने लगा। इस समय उसके खाँसने का स्वर इतना तीव्र था कि लगता, बाहर का सूना अन्धकार काँप रहा है और उस अन्धकार की छाती से किसी के नुकीले दाँत चमकते हैं। उन दाँतों में हृदय को थर्रा देने की शक्ति है।

हसन ने खाँसते-खाँसते थूक दिया। कफ गिरने लगा। वह खाँसता रहा। ऐसा प्रतीत होता था, जैसे वह खाँसी एक अटूट क्रम है और फेफड़ों से निकलने वाली खर्र-खर्र की आवाज उस क्रम का चिन्ह।

उसने थूका और इस बार खून से भरा हुआ कफ धरती पर छितर गया। उसकी चारपाई पर भी खून की बूंदे टपक पड़ीं।

जोहरा काँप उठी। शकीला की आँखे जैसे पथरा गई थीं। उन आँखों की वेदना शरीर के रोम-रोम मे बसती जा रही थी। वह देख रही थी कि क्या होने वाला है? भविष्य के वह क्षण, जब हसन नहीं होगा—उसका आदमी—कील की तरह कलेजे मे चुभ रहा था। नस-नस मे असीम पीड़ा गरज रही थी।

हसन काँपा और अस्फुट स्वर मे बोला—'पानी!' शकीला पानी लेकर दौड़ी। हसन पथरायी आँखों से देखता रहा। उन आँखों मे विवशता थी—मोह की छाया भर उठी थी। जैसे वे कह रही हों—'अब क्या होगा?' उसने हाथ हिला दिया—उसे पानी नहीं चाहिए। इस बार सचमुच दोनों घबड़ा गई। आह! नारी कितनी अबला है? पुरुष आज जब खून थूक रहा था, जब उसके बचने की कोई आशा न थी; नारी—उन आँखों में

इबादत और पीर के लिए मनौतियाँ लिए काँप उठी थी। भविष्य घहरा रहा था, उस चलती हुई चक्की की तरह जिसका स्वर रात के सूनेपन में चक चूँ-चक चूँ करता हुआ गूँजता है, उसकी नस-नस से बोलने लगता है।

शकीला ने कहा—'जा रामजश को बुला ला। अब तो मेरा दिल फटना चाहता है, बहन! क्या खुदा वह पहाड़ हमारे ऊपर गिरा ही देगा जिसके नीचे हम दब कर मर जायेंगे?'

'खुदा?' जोहरा ने केवल इतना ही कहा। उसके दाँत भिंच रहे थे। वह दौड़ती हुई बाहर चली गई।

इस बार हसन ने हाथ से संकेत करने का प्रयत्न किया किन्तु हाथ झूल गया। उसमें शक्ति नहीं रह गई थी। वे केवल दुर्बल हड्डियाँ ही थी। शकीला ने देखा और चीख पड़ी। वह और पास खिसक आई। तपेदिक के कीड़े बदबू कर रहे थे। उन्होंने आदमी का फेफड़ा चाक कर दिया था और इन्सानियत बजबजा रही थी।

रामजश आ गया। उसकी आँखों में नशा था—नींद का और शराब का भी। उसके हाथ मे एक छोटा सा डंडा था जैसे वह तपेदिक की चुड़ैल की खोज मे आया हो और उसे पाते ही मारेगा, भुरकुस कर देगा। हसन ने उसकी ओर देखा। उसने मुस्कराने की चेष्टा की किन्तु फेफड़ा चिलक उठा और वह कराहने लगा। इसी समय मालती, जोहरा और राजू आए। किशोरी नहीं आ सका। वह शराब की गोद में सो रहा था।

रामजश मंत्र पढ़ रहा था—'या तपेदिक माई ' ' छोड़ दे '' हुँह छोड़ दे '' पलीता की चटक लगा दूँगा।'

राजू ने देखा। उसे लगा, अब सब कुछ ढल रहा है। जोहरा चारपाई से लिपट गई। शकीला घूर रही थी—उन हड्डियों को,

उस देह को जिसे गरीबी ने कटकटा कर चबा लिया था ! रामजश का स्वर उसे चहकता हुआ प्रतीत होता। सारा वातावरण बस कह रहा था—'यह ज़िन्दगी है—यह इन्सान है !' कोई पुरोहित होता तो कहता—'यह अपने-अपने कर्मों का फल है—भगवान चतुर्भुज रक्षा करे—ओम शान्ति ''''

हसन ने राजू की ओर देखा और बुदबुदाया—'राजू दादा ''''''तुम आ गए ए ए ए''''''उसने अपना हाथ जोहरा और शकीला पर रखने की चेष्टा की। हाथ की वे हड्डियाँ चारपाई की लकड़ी से लड़ उठीं । उसने कहा—'मुझे ' '' माफ करना '''' " शकीला " ''''मैंने तुझे बड़ी तकलीफ दी''''''जोहरा आ आ'' '' मेरी बह''''''''

उसका सिर लुढ़क गया !

आदमी के मुर्दा शरीर पर वे अधभूखे लोग फूट-फूट कर रो पड़े। जोहरा रो रही थी कि उसका भाई नहीं था। शकीला चीख रही थी कि उसका सितारा डूब गया था । वह इन्सान लाश में बदल गया था जो चलता था,बोलता था और खून थूक देता था !

राजनारायण ने उन्हें शान्त करने का प्रयत्न किया, किन्तु उनका रुदन बाढ़ के टूटे बाँध की तरह घहर-घहर कर मचल रहा था । उनके सिर से कोई ऐसी साया उठ गई थी जिसका उठना जिन्दगी को धरती के अछोर सीने पर बिल्कुल अकेला छोड़ देती है ! सचमुच अकेला होना कितना भयंकर है।

मालती को लग रहा था, किशोरी भी हाँफ रहा है " उसका चेहरा भी हसन की तरह ही''''''

उसने हसन की ओर देखा ! लाश के होंठ जैसे खुल कर हँसना चाहते हों। वह काँप गई ! उसने बाहर आकर दौड़ना

शुरू किया। वह दौड़ रही थी""किशोरी के पास, अपने आदमी के पास, अपनी जिन्दगी के पास""

हसन के चेहरे पर रेखाओं का जाल था। आँखें फटी सी रह गई थीं। लाश की ठठरियों पर सिर रख कर शकीला प्रश्न कर रही थी—'अब हमारा क्या होगा? बोलो! क्या नहीं बोलोगे?'

दीवारों की छाती से उत्तर आ रहा था—'अब हमारा क्या होगा! बोलो! क्या नहीं बोलोगे?

बाहर अन्धकार सायँ-सायँ कर रहा था!

जीवन का सारा विष नरेश के सम्मुख लहर-लहर उठता। कलकत्ते के उस व्यस्त वातावरण मे उसे लगता, कोई ऐसी वस्तु घोल दी गई है जो छूती है तो हृदय कॉप उठता है और जिसके संस्पर्श मात्र से खून जमने लगता है।

सेठ जीवतराम का कारखाना, उसकी वह मुँह बाए चिमनियाँ, उनसे लिपट कर काम करने वाले इन्सान—सब कुछ उसकी ऑखों मे घूम जाते! इन सबकी आड़ मे जीवतराम का स्वार्थ, वह हैवानियत जो केवल इन्सान का लहू पीना चाहती है, मौत की तरह सब कुछ घोंट जाना चाहती वह सब अब भी चल रहा है ⋯ वह दम तोड़ते इन्सान ⋯ वह निगल जाने वाली पशुता ⋯

श्यामू, प्याले और तश्तरियाँ धो रहा था!

नरेश को उस कारखाने से प्यार हो गया था—उन कमरों से जिनमें बैठ कर उसने अनेक समस्याओं पर विचार किया, उन मजदूरों से हिल-मिल कर काम किया, इन बाबुओं से बात की, उन्हे डाँटा और उन पर खीझा ⋯ और उन्हीं कमरों मे बैठ कर ही तो उसने जीवतराम के खून से रंगे हाथों में गरीबों की जिन्दगी को चढ़ा दिया और वे खूनी हाथ उसे मुँह तक ले जाते ⋯ छटपट करता जानदार आदमी और व्यापार की सुरसा जिह्वा ⋯

वह कॉप उठा! क्या सचमुच उसके हाथों मे भी वही खून लग गया है? नहीं वह उस व्यूह से बाहर निकल आया है⋯

नौकरी छूट गई ! जीवतराम ने कहा था, 'जो व्यक्ति मेरे व्यापार में रोड़े की तरह आयेगा, मैं उसे ठोकर मार कर दूर कर दूँगा।'

उसने कितना कठोर उत्तर दिया था, 'और ये रोड़े मुर्दा नहीं आदमी की रूहें हैं जो अंगारे बन कर अंधकार को खा लेंगे।'

श्यामू अपनी धोती में हाथ पोंछता हुआ उसके पास आया और कहने लगा, 'कब तक ऐसे चलेगा ? किसी दूसरे कारखाने मे ही कोई नौकरी मिल जाती तो अच्छा था।'

'कारखाने की नौकरी ?'

व्यंग और विक्षोभ की लहर नरेश के हृदय से टकरा गई। उसने कहा, 'तो क्या चाहते हो, जिस भट्ठी से बाहर निकल आया हूँ, उसी तरह की दूसरी भट्ठी में फिर जाकर कूद पड़ूँ ?'

श्यामू ने कहा—'तो घर ही क्यों नहीं चले चलते ?' उसके स्वर मे निराशा भर गई थी। वह समझता था, कोई दूसरा रास्ता निकल ही नहीं सकता। उसे लग रहा था, जैसे सेठ नरेश के लिए कोई आशा की किरण था, जिससे दूर हो जाने पर अंधकार ही अंधकार फैल गया है।

नरेश ने उसकी ओर देखा और कहने लगा—'नौकरी तो मेरी छूटी है, तुम्हारी तो अभी है ही; फिर भी घबड़ा गए श्यामू ? अभी तो हड़ताल होगी और चिमनियों से लिपट कर बदबू करने वाले लोग फॉका करेंगे · मेरी यह स्थिति तो कुछ भी नहीं है ?'

श्यामू को बल मिला। सचमुच नौकरी छूट जाना है ही क्या, जब नौकरी के बीच भी लोग भूख से तड़पते हैं ? वे फिर हड़ताल करेंगे, फिर भूखे रहेंगे और हाथ में संगीनें लिए सरकार के स्वामिभक्त सिपाही जलूस पर से गुजर जायेंगे। उसने केवल

एक बार देखा था कि ट्राम का किराया बढ़ जाने से जब हड़ताल हुई थी तो विषैले गैस छोड़े गए थे, सड़कों पर चलने वाले आदमियों पर मजबूत लाठियाँ बरसी थीं, फिर गोलियाँ चली थीं''

वह कितना भयानक दृश्य था, एक बूढ़ी औरत की दाईं टाँग झूल गई थी और भीड़ ने उसे कुचल दिया था। उस औरत की बात सोच कर ही श्यामू काँप उठा ! उसने कहा, 'लेकिन क्या इस हड़ताल के बाद भी कुछ होगा ? क्या इसके पहले हड़तालें नहीं हुई ?'

'हुई' नरेश ने उत्तर दिया—'किन्तु तब एका नहीं था, इसीलिए कुछ नहीं हो सका। किसी भी अनाचार के विरुद्ध जब तक मिल कर आवाजें नहीं उठतीं तब तक कुछ नही होता।'

वह क्षण भर को चुप हो गया। अपनी परिस्थिति को सोच कर उसे अन्दर ही अन्दर बिच्छू के डंक जैसी कोई वस्तु चुभ गई। वह बोला—'अब एक नई लहर उठी है। उस लहर में पेट की आग धधक रही है—अधनंगे लोग अपना शरीर ढकना चाहते हैं और आज वे एक होकर अपना अधिकार माँग रहे है। यदि कोई उन्हे दबाना चाहेगा तो वह पिस जायेगा। क्या तुम अपने मे कोई परिवर्त्तन नही देखते श्यामू ?'

नरेश का स्वर धीमा पड़ गया था। श्यामू उस व्यक्ति की ओर देख रहा था, जिसकी छाया मे उसे समानता ही मिलती रही—जो अपनी हमदर्दी के कारण नौकरी खो बैठा था !

उसने कहा—'मैं बदल गया हूँ और मुझे खुशी है बाबू कि मै अब मुर्दा नही हूँ। मै भी हड़ताल करूँगा।'

श्यामू के मुख पर गौरव की एक रेखा फैल गई। उसे इस बात का अनुभव हुआ कि वह भी दुर्बल नहीं है—उसके साथ वह सारा समाज है जो सदा से घुट-घुट कर जीता रहा है, वह

दुनिया है जहाँ आदमी के सीने ने गरीबी की चट्टान के नीचे कराहा है।

तभी राजू आ गया। वह उदास था। उसे लग रहा था—"कोई चला गया है, जो नहीं लौटेगा नहीं लौटेगा...

उसने नरेश से कहा—'जानते हो, कल रात हसन मर गया!'

'मर गया!' नरेश काँप उठा! उसके सामने हड्डियों का वह ढाँचा नाच गया। अब वे हड्डियाँ नहीं रहीं, अब उन हड्डियों में आवाज नहीं रही!

'चौंको मत' राजू बोला—'क्या तुम समझते थे, वह बच जायेगा? क्या उन बस्तियों मे पैदा होने वाले जीवों की जिन्दगी की कोई गारंटी है दोस्त! मै तो बिल्कुल घबड़ा उठा हूँ। अब वे मजदूर इतना दहल गए हैं कि उनका साहस टूट रहा है...

श्यामू ने बीच ही मे कहा—'तो हड़ताल नहीं होगी, राजू दादा!' नरेश ने तीव्रता से उत्तर दिया—'होगी श्यामू! हड़ताल नहीं रुक सकती। और यदि नहीं होगी तो हसन जैसे लोग इस जहरीली जिन्दगी से बाहर निकल नहीं सकते, वे उमस कर उसी में दम तोड़ दिया करेंगे। यह समाज, यह व्यवस्था तभी बदलेगी जब इन्सान पुरानी रूढ़ियों और अत्याचारों के विरुद्ध कदम उठायेगा। जब समाज मे कुछ इने-गिने लोग पूँजी के बल पर आदमी का खून नहीं चूस सकेंगे, जब धर्म के नाम पर मुल्ले और पुरोहित अपना मतलब नहीं साध पायेंगे तभी एक नया रास्ता निकलेगा और तभी आदमी मुक्त होकर जिन्दगी को चूम लेगा।'

राजू ने उसकी ओर देखा। उसे आश्चर्य हुआ। क्या यह वही व्यक्ति बोल रहा है जिसके सीने में अनेक सर्पीली समस्याएँ

टेढ़ी होकर घूम रही है। नौकरी छूट गई—जैसे कुछ हुआ ही नहीं ! जर्जर जीवन का गला घोंट देने की वह प्रवृति, अव भी वैसी ही है। राजू के मन में अनेक भावनाएँ मचल उठीं—नरेश की स्थिति ? हड़ताल · हसन और दो वदनसीव औरतें···और उठने वाला वह ववंडर·· एक आग···

जव राजू जाने लगा तो उसने कहा—'शाम को अहमद के घर आ जाना। हड़ताल नहीं रुकेगी।'

राजू के जाने के वाद श्यामू को लगा, यह आदमी कितना गंभीर है। उसकी धमनियों का रक्त उवल रहा था और हृदय कह रहा था—घवड़ाओ मत ! कुछ होकर रहेगा, कुछ होकर रहेगा · !

· रात को नरेश जव अहमद के घर से लौट रहा था तो उसका मन भारी था। न जाने कौन अदृश्य भावना मन को कुरेद रही थी। परिस्थितियों की जटिलता से अलग कोई आकुलता मचल रही थी ! वह क्या थी ?

ज्यों-ज्यों वह अपनी इमारत की ओर बढ़ता आ रहा था, उसे लगता, कुछ पीछे छूट गया है जो दर्द है, जिसकी चपेट मे मानवता खोखली होती जा रही है और उस खोखली स्थिति पर कोई हँस पड़ता है खुल कर—वह भी उसी मानवता का अंश है—काला, घिनौना · सड़कों पर अपार वैभव उमड़ रहा था, जिसके सीने मे फुटपाथ पर सोने वाले अधनंगे लोगों की वेदना छुपने का स्थान पाती है। चौड़ी सड़कों पर आदमी चल रहे थे··· ··· अधनंगे, भूखे ! उन चलने वालों मे दफ्तरों के वावू थे जो सफेद-पोश रहने के प्रयत्न मे ही जीवन को मौत के पास खीच लाते हैं—ऐसे लोग हैं जो अंग्रेजी लिवास मे समाज को जहर की घूँट दिया करते हैं—चोर वाजारी मे अभ्यस्त, जुआ खेलने वाले

अड्डों के स्वामी ··· स्त्रियों की जवानी को लेकर शराब के नशे में झूम-झूम जाने वाले लोग ;······

और वैभव गरज रहा था। खूबसूरत मोटरों की स्टीयरिंग ह्वील पर सफेद उँगलियाँ घूमती हैं। जहाँ कई सड़कें आकर मिलती हैं वहाँ सिपाही खड़े होते हैं ' मोटरें रुकती हैं––निकल जाती हैं··· ·· फुटपाथ पर चलने वाले भयमिश्रित नेत्रों से उनकी ओर देखते हैं······ जीवन का कठोर व्यंग आँखों की कोरों में फैलता है और वे बढ़ जाते हैं ······

नरेश एक सँकरी गली में आ गया था। जहाँ बिजली नहीं होती वहाँ अंधकार फैला रहता है। नरेश ने देखा, उस अंधकार मे एक युवती एक पुरुष से बातें कर रही है। उसकी आँखें रह-रह कर इधर-उधर घूम कर देख लेती हैं ······शायद वह समाज की मर्यादा को तोड़ने का यत्न कर रही थी;·····

वह आगे बढ़ गया! गली के अन्त में उसने देखा, एक घर के सम्मुख कीर्त्तन हो रहा था। लकड़ी के एक पटरे पर कोई व्यक्ति तन्मय सा सामने बैठी जनता को मुग्ध करने का प्रयत्न कर रहा था। नरेश ने पास से देखा, वह एक बाबा जी थे। उनकी सफेद दाढ़ी और जटाओं का घनापन खुल कर कह रहे थे कि वे सनातन से चले आते हिन्दू धर्म के रक्षक हैं। उनके गले में माला थी। शरीर पर एक धोती थी जो केसरिया रंग में रंगी थी। उनके पीछे की ओर कुछ ऊँचाई पर शीशे के फ्रेम में मढ़ी हुई लीला के अनन्त आगार श्रीकृष्ण की एक तस्वीर थी जिसमे रास रचा कर वे गोपियों का जीवन सार्थक कर रहे थे!

भक्त गण मुग्ध होकर गा रहे थे।

ऐशो हरी······ ऐशो हरी

राधा गोविन्द हरी राधा-गोविन्द····

स्वर गूँज रहा था। वावा जी मग्न होकर शायद ईश्वर का ध्यान कर रहे थे, जो गरीवों को भोजन देता है—एक ही वक्त सही देता तो है, जो उन जैसे धूर्तों को श्रद्धा का पात्र वनाता है—वही ईश्वर !

ध्यान टूटा ! भजन की कड़ियाँ वंद हो गईं। भक्त स्वामीजी की ओर लोलुप नेत्रों से देखने लगे—जैसे स्वामी जी की वाणी से अव रस वरसा ''''''अव रस वरसा''''''''

नरेश यह तमाशा देखने लगा था।

स्वामी जी ने अपनी सम्पूर्ण आँखें खोल कर दर्शकों को देखा। भीड़ कम थी। एक सज्जन उठ खड़े हुए और कहने लगे 'स्वामी शरणानंद जी पूरे एक वर्ष वाद पधारे हैं। हमारा सौभाग्य है कि हम उनका दर्शन कर सके। वे कलकत्ता महानगर में कुछ दिन और ठहरेंगे। पिछले वर्ष भक्तों की संख्या अधिक थी और स्वामीजी धर्म की रक्षा के लिए गुप्तदान भी एक हजार ले गए थे। इस वर्ष भी हमें चाहिए कि अपने धर्म-रक्षा-हित हम अधिक से अधिक दान दें।'

वे बैठ गए ! शायद वे उस कीर्त्तन मंडली के संयोजक थे।

वावा जी अपनी मुख मुद्रा दिव्य बनाने का भरसक प्रयत्न कर रहे थे किन्तु शायद अनुरूप नहीं बन पा रही थी, इसीलिए माला फेरने लगे थे।

संयोजक महोदय फिर खड़े हो गए। उन्होंने कहा—'स्वामी जी का भंडारा कल सेठ लक्खीमल जी के यहाँ रहेगा।'

दर्शकों ने करतल ध्वनि की और बोल उठे—'सेठ लक्खीमल की जय।' स्वर गूँज उठे। नरेश ने देखा, सेठ, स्वामी जी को माला पहना कर बैठ गया है और अपने को बहुत विनम्र बना रहा है। उसकी आँखें गंभीरता से देख रही थीं। उनमें गरीबों के रक्त की

बूँदें झलक आई थीं और फूलने-बैठने वाले तोंद के अन्दर मानवता की साँस फूल रही थी !

राख से रंगे हुए बाबा का मुख गंभीर हो गया था। वाल्तेयर ने ऐसे ही गंभीर मुख हिन्दू साधुओं की तुलना नंगे बंदरों से की है। शरणानंद की आँखों में एक तरह का ढोंग था जो क्षण भर देखने से ही स्पष्ट हो जाता किन्तु कौन देखता ?

भक्त गण गा रहे थे:—

"...वृन्दावन वास करे
गोपिन संग रास करे
ऐशो हरी
बोल भाई राधागोविन्द
हरी बोल ! हरी बोल"

जैसे वे कोई मशीन हों जो चालू कर दिए गए हों और तब तक वह मशीन बोलती रहेगी जब तक बाबा जी के मुख का अमृत नहीं बरसेगा। वह मशीन मुर्दगी है और उसी मुर्दगी की आड़ में धर्म पनपता है

नरेश को लगा, यहाँ भी आदमी चूसा जा रहा है। वहाँ उन कारखानों में यदि अर्थ के नाम पर मनुष्य के रक्त को पी लिया जाता है तो यहाँ धर्म को सामने रख कर मानवता का सीना चाक किया जा रहा है।

आदमी नाच रहा है, गा रहा है:—

ऐशो हरी...ऐशो हरी...

स्वामी शरणानंद की आँखों में कुछ हँस रहा है और उधर मशीन घूमती है—आदमी नाचता है।

नरेश का मन उबकने लगा, जैसे सामने कोई भयंकर जाल है और मनुष्य स्वयं उस जाल की उलझन में अपने पाँव फ़ँसा

रहा है; क्योंकि वह मासूम है और उसे नीले आकाश के ऊपर क्रीड़ा करने वाले ईश्वर का भय जो रहता है···नरेश आगे बढ़ गया ! कुछ दूर पर एक काला आदमी अपने साथी से कह रहा था, 'रुपया कमाना कोई खेल नहीं है बेटा ! उधर देखता है न उस बाबा को ?' स्वामी शरणानंद की ओर संकेत करते हुए कहा, 'पक्का धूर्त है साला, लेकिन हर साल हजारों रुपया मार ले जाता है और हम-तुम हैं कि खाने को नहीं मिलता। हाथों का करतब दिखाने पर भी '

नरेश सोचने लगा, यह आदमी कितना यथार्थ कह रहा है। सिर से पाँव तक वह एक तीव्र भावना के कारण काँप उठा ! जीवन का खोखलापन हहर कर गरज पड़ा।

एक ओर मनुष्य के शरीर को चीर कर हड्डियाँ बाहर आना चाहती हैं। वहाँ सचाई है—रक्त और पसीने की बूँदों को एक में मिला देने का क्रम है। दूसरी ओर, धर्म के इस जाल में कितनी छलना हँस रही है।

सड़कों का वैभव चढ़ रहा था। उस पर अंधकार चढ़ता, फिसल जाता !

नरेश के पाँव आगे बढ़ चले···

कोठरी में पहुँच कर जब वह खा रहा था तब श्यामू ने कहा, 'बाबू घर चलना ही होगा। अब अपनी पूँजी खतम हो रही है।'

नरेश ने उसकी ओर देखा। श्यामू की आँखों में विवशता भर उठी थी। नहीं चलेंगे तो क्या होगा ? पैसे समाप्त हो ही गए हैं, जैसे रस्सी के छोर में आग छू भर जाने से दूसरा छोर शीघ्र ही राख हो जाता है, उसी तरह ये पैसे हैं ! नरेश का मन मरोड़ उठा।

उसने श्यामू की ओर देखते हुए प्यार से कहा—'पैसों की

पूँजी के समाप्त होने से क्या होता है ? देखते नहीं हो, असंख्य लोग जीवन की पूँजी खोते जा रहे हैं। क्या हम इतने स्वार्थी हैं कि उन्हें छोड़ कर चले जायेंगे ?'

श्यामू की आँखें छलक आईं। सचमुच यह कितना बड़ा स्वार्थ होगा ? हसन मर गया है। उसकी बहन और स्त्री अबला सी घुट-घुट कर जी रही हैं। कामगार—उसके जैसे ही असंख्य लोग भूखे रहने को तत्पर हैं, क्योंकि भूखा रहना मक्खी निग-लने से अच्छा है। वह, नहीं जायेगा !

उसने कातर होकर कहा, 'मै स्वार्थी नहीं हूँ बाबू ! फिर भी ऊब जाता हूँ। सभी कारखानों के लोग मर मिटने को तैयार हैं—मैं भी मरूँगा ! यहीं, इसी कलकत्ते में मेरी लाश उठेगी। मेरी लाश पर रोने वाला ही कौन है। मेरा बूढ़ा बाप भर है।'

बूँदें नीचे ढरक पड़ी। गाँव की घनीभूत स्मृति ने उसके हृदय का हर पोर झकझोर दिया। वहाँ उसका बाप है—जिसकी छाया में वह बढ़ा और और आज कलकत्ते का यह जीवन उसके सम्मुख उबल रहा है। उसके मुख की झुर्रियाँ जो अवस्था की तुलना में कहीं अधिक थीं, भीग गईं।

नरेश उन्मन हो उठा। उसने समझाते हुए कहा, 'रोते नहीं श्यामू। ऐसा नहीं सोचना चाहिए। अब हम तुम साथ ही गाँव चलेंगे। माँ के पास गए कितने दिन हो गए ?'

श्यामू सिसकता रहा, जैसे कोई पीड़ा का कोप छू दिया गया हो और शरीर के अन्दर-बाहर सब कुछ कचकचा कर टीस उठा हो।

नरेश को सूना-सूना लग रहा था !

नीचे से ऊपर तक इमारत बोल रही थी—अपनी गोद के इन्सानो में, और काली सड़क के ठीक ऊपर जिंदगी तैर रही थी !!

सूरज उग आया था। नीले आकाश में गोरे बादल थे। बादल थे कि जैसे किसी की नीली देह पर श्वेत परिधान हों जो सरकते चले जा रहे हों।

और नीचे कानपुर की गलियाँ हैं, इन्सान हैं। चिमनियों का उठा सीना चीख देता है। ऊपर के पक्षी भागते चले जाते है। कानपुर धूएँ मे, आदमियों मे, आवाजों मे बजबजा उठता है।

इसी बजबजाहट का एक अंग खलासी लाइन है! पास मे सड़क की ढाल है और ढाल के पास गन्दगी, सुअर के बच्चे, आदमी के बच्चे। ढाल से रिक्शेवाले हॉफ-हॉफ कर निकल जाते है, सड़क पर मोटरे फिसलती चली जाती हैं। इन्हीं जगहों से लग कर कानपुर के 'सफेद' अंश है—आर्यनगर, स्वरूप नगर। बसे आती हैं और आदमी भर जाते हैं। छोटी सी खूबसूरत मार्केट में खुशनुमा जिन्दगी का रंग खिल जाता है।

किन्तु उस रंग का खलासी लाइन से कोई रिश्ता नही। पास-पास होकर भी वे दूर-दूर हैं। कुछ लोग कहते हैं, यह एक तरह का जहर है और यदि सचमुच ऐसा है तो यह जहर—यह कुरूपताएँ कानपुर की बजबजाती देह भर मे फैल गई हैं। ये कलकत्ते तक फैली हैं और दूर लन्दन तक, शिकागो के उन भागों तक जहाँ अमरीका का व्यापार गरजता है....

खलासी लाइन के इसी भाग में उमानाथ रहता है। दुर्गन्धि

की हर लहर उसके सँकरे मकान तक फैल जाती है। मकान में केवल एक कमरा है, एक बरामदा भी है और आँगन है जैसे किसी के वर्तुल मुखमण्डल पर चौकोर बतौड़ी हो। इसी बतौड़ी के अन्दर से एक काली रेखा जाती है, जिसमें से होकर काला पानी पूरा बह नहीं पाता और सफेद कीड़े उसमें पैदा होते हैं, मरते हैं।

नीली ने कभी इस वातावरण से दूर जाने की नहीं सोचा। यह आँगन और उसकी काली रेखा उसकी आँखों के सामने सदा से रहते आए हैं। उभरी हुई हड्डियों वाले दो बच्चे इस घर की शोभा हैं। उमानाथ की खाँसी इधर फिर उभड़ आयी है, सीना फिर चिलक उठता है और जब कभी कफ का रंग बदलता है तो नाली के पानी का रंग भी बदल जाता है जैसे उमानाथ के जीवन से उस तमस जल का भी सम्बन्ध है जिसे सूरज की तीव्र से तीव्र किरण भी नही बेध पाती।

मकान के ठीक सामने सँकरी सड़क है। सड़क की छाती से लग कर म्युनिस्पैलिटी की नाली बहती है। उसी से लग कर आदमी अपनी चारपाइयाँ डाल कर थकान मिटाता है और गहरी नीद मे सो जाया करता है।

उमानाथ यही सोचता है कि उसे केवल दफ्तर मे बैठ कर काम ही करना पड़ता है। कभी-कभी इतना ही तो होता है कि रात के काले अन्धकार से जब विश्व ढक जाता है तब भी फाइलों को देखना रहता है, सिला कर उन्हे दूसरे दिन 'साहब' के हस्ताक्षर के लिए रखना पड़ता है। यह फेफड़ों का रोग जो हो गया है। कभी तो लगता है, कुछ भी नहीं है और मुख पर लाली तक फैलने लगती है जैसे पिचके हुए सिन्दूरी आम पर लाल रेखाएँ किन्तु जब उभड़ता है तो रात-दिन खाँसने का क्रम,

बेचैनी इतनी कि शरीर झूल जाता है और ऊपर से छुट्टी भी तो नहीं मिल पाती।

वह कपड़े पहन कर दफ्तर जाने के लिए तैयार था। बड़ा बच्चा कूद रहा था। छोटी बच्ची रो रही थी और जब कभी वह रोती तो उसका अर्थ था कि वह माँ का दूध पीना चाहती है। माँ किचकिचा कर उसे अपनी छाती से चिपका लेती। बच्ची चूसती रहती और जब दूध नही मिल पाता तो रोती और उमानाथ कहता—

'क्यों रुला रही हो ?' नीली नहीं उत्तर देती। 'उमानाथ कड़े स्वर मे कहता—'जानती हो दफ्तर जाना है और अभी तक खाना नही बन सका। न जाने क्या करती रहती हो ?'

गोद मे बच्ची को लिए नीली चूल्हे के सामने सब्जी भून रही थी। बच्ची चूसती जा रही थी, जैसे अभी तो शरीर मे बहुत कुछ है, जब तक यह रहेगा वह छोड़ेगी नहीं।

थाली मे शीघ्रता पूर्वक परोसते हुए नीली ने भोजन पति के सामने रख दिया।

उमानाथ के पीले मुख पर क्रोध भर रहा था। उसे इतनी दूर जाना है, अभी तक भोजन नही मिला।

खाते हुए उसने नीली की ओर देखा, जैसे सारा दोप उसी का हो। वह क्यों बच्ची को चिपकाए रहती है ?

सब्जी कच्ची रह गई थी। उमानाथ का क्रोध उबल पड़ा। यक्ष्मा का रोगी क्रोध का दास होता है। उसने गरज कर कहा—'ऐसा खाना मिलने से ही मेरी यह दशा हो गई है। मै मरूँ या सड़ जाऊँ, आराम से बच्चो को चिपकाए पड़ी रहेगी।'

नीली की समझ मे उसका अपना कोई दोप नही था। उसने कहा—'देखते हो, मै बैठी तो रहती नही हूँ।'

उमानाथ की आग में फूस बरस पड़ा—'हरामजादी कहीं की। बैठी नहीं रहती तो कौन सा बोझ ढोती रहती है ?'

नारी चुप थी ! उसे चुप रहने की शिक्षा दी गई है। मनु से लेकर आज तक के समाजरक्षकों ने समय-समय पर कहा है 'पुरुष देवता है। स्त्री का धर्म है उसकी सेवा में संलग्न रहे। ऐसे ही देवता इस समाज की नस-नस में भर गए है। सदा से समाज ने ऐसे ही देवताओं के लिए नारी को पूजा की बलि चढ़ाया है।

नीली ने सुना और क्षण भर के लिए लगा, कोई नासूर छू दिया गया है किन्तु फिर वही शान्ति जो भारतीय नारी को रखनी चाहिए ! यह तो नित्य का नियम है ! यह उनका अधिकार भी तो है। उसने मन ही मन सब कुछ पी लिया और सब्जी चलाती रही। तेल में भुनी जाती हुई सब्जी से सीं-सीं का स्वर निकल रहा था। आग की लाल ज्वाला सब्जी का रंग बदल रही थी नीली ने तो कभी कोई स्वर नहीं उत्पन्न किया। वह भी तो भूनी जाती रही है। उसका हृदय उस पत्थर की चट्टान की तरह हो गया है, जिस पर गोलाकार ओले अपनी पूरी शक्ति से पटपटाते है और छिटक कर पिघल जाते हैं ! नारी के प्राण पत्थर हो गए हैं।

उमानाथ दफ्तर चला गया।

नीली का दोपहरी क्रम आरम्भ हो गया। उसने खाया, कपड़े साफ किए और आकर लेट रही। हर दिन ऐसा ही होता है। जीवन का परिवर्तन से यहाँ कोई सम्बन्ध नहीं। इस क्रम में मशीनी आकर्षण है। गरजता है, हिलता है, मुर्दा है।

माधुरी आ गई। नीली ने स्नेह से कहा—'आओ बहन तुम हो तब तक मन बदल जाता है नहीं तो दोपहर भर ऊबना ही पड़ता था।'

माधुरी प्रसन्न थी। वह जबसे कलकत्ता छोड़ कर आई है, घर में उसे इतना स्नेह मिला है जितना कलकत्ता उसे कभी नहीं दे सका। प्रोफेसर का कोई पत्र नहीं आया। उसे इसी बात की चिन्ता है। जब भी वह यहाँ रही है, नीली से सदा मिलती रही है। वह जानती है कि नीली की परिस्थितियाँ भयंकर हैं। गरीबी इस घर का सुख चाट गई है। किन्तु उसे ही कितना सुख है? कलकत्ते की वह मूक ज्वाला शरीर मे जल उठी। उन्होंने अपने स्नेह का एक अणु भी तो कभी नहीं दिया... ....

दोनों बातें करती रहीं। उन बातों मे अन्तर का दर्द ही रहता जो बहुत कुछ समान था। निष्प्राण दीवारें उस दर्द को सुन कर झन्न कर उठतीं!

नीली ने सुधीश को पास खींच लिया। माधुरी बोली—'बहन, तुम पहले से कमजोर हो गई हो।'

नीली ने केवल 'हूँ' कर दिया जैसे कह रही हो, यह तो कोई नई बात तुमने नहीं कही। फिर एक लम्बी साँस खींच कर बोली—'तुम्हारे जैसे सुख हमे कहाँ! तुम बड़ी भाग्यवती हो बहन!'

हृदय कसक उठा—अन्दर की व्यथा ने जैसे साँस खीची हो!

माधुरी ने कहा—'यह तुम कैसे जानती हो?' वह उन्मन सी लगने लगी थी। उसकी बात मे विरोध था। तुम कैसे जानती हो? तुम क्या जानो कि पुरुष कितना कठोर होता है? वह हमे दासी समझ कर ठोकर मारना भी उचित नहीं समझेगा! हमारी सत्ता को बालू की अस्थिर दीवार समझ कर वह हमसे खेलता है। वह हमें छूता है, हमारा रस चूस कर अपनी कठोरता के नीचे दबा देता है। हम दासियाँ हैं और दासियाँ आज से नहीं बहुत पुराने युग से मसली जाती रही हैं!

नीली ने देखा माधुरी की आँखों में कोई छाया घुमड़ रही है। तो क्या उसे भी कोई पीड़ा है ? उसने पूछा—'क्यों बहन इतनी उदास क्यों हो गई ! तुम्हें कौन सी तकलीफ हो सकती है ? तुम्हारे पति तो प्रोफेसर हैं ! और कलकत्ते की वह जिंदगी ?'

कलकत्ते के जीवन के प्रति उसे बड़ा मोह था। उसने सुन रक्खा था, कलकत्ता कहीं विशाल है—कानपुर से कहीं बड़ा और वहाँ आँखें चकाचौंध से भर जाती हैं।

'मुझे संतोष है बहन' माधुरी बोली—'किन्तु कलकत्ता अच्छी जगह नहीं है। कहीं-कहीं तो इतनी गंदगी है कि आदमी कैसे वहाँ रहता है, यही मै नहीं समझ पाती ?'

सामने की नाली, जिसमे कीड़े रेंग रहे थे, नीली के सामने घूम गई। उसने संकेत करते हुए कहा—'क्या ऐसी नालियाँ वहाँ हैं ? क्या कानपुर के खलासी लाइन की तरह के मुहल्ले भी वहाँ हो सकते हैं ?'

माधुरी मुस्कराई। कलकत्ते के रौरव नरक को वह स्वयं अपनी आँखों से देख चुकी थी। फुटपाथ पर सोते हुए हजारों लोगों को उसने देखा था। कहाँ है वह सब इस कानपुर मे ? यह तो जैसे कलकत्ते का बहुत छोटा रूप है ! उसने कहा, 'कलकत्ता उनके लिए स्वर्ग है जो अमीर है किन्तु जो ईमानदार और गरीब हैं उनके लिए वह खून की जलती हुई भट्ठी है।'

नीली की छोटी बच्ची जाग गई। उसके रोने से वह छोटा सा घर भर गया। ये बच्चे ही अपने स्वरों से इतना बता देते हैं कि वहाँ जीवन भी है—उन गलियों में, उन घरों मे जहाँ मनुष्य नहीं उसका शव पड़ा रहता है। या बाहर गली की कुँजड़िने सब्जी बेचती हुई जब गर्म हो जाती है और अपनी शक्ति भर एक दूसरे पर गालियाँ बरसाने लगती है, तब भी लगता है

यहाँ मनुष्य का निवास है—जो बोल सकता है, जो हँसता है और जिसके मुख से गालियों का वह तूफान निकल सकता है जिसमे मनुष्य के हर अंग से मिथुन का सम्बन्ध जोड़ा जाता है। वे गलियाँ नहीं मनुष्य के सड़न की प्रतीक हैं। जब तक ऐसी गलियाँ है जिनमे गंदे कीड़े रेंगते हैं और मानव उन कीड़ों के बगल मे सोता है, तब तक यह सड़न रहेंगी। तब तक इन्सान यही ग्रहण करेगा। कीड़े यहाँ आपसे आप पैदा हो जाते हैं क्योंकि यहाँ गंदगी है और वह गंदगी ही कीड़ों की जान है। आदमी भी यहाँ आधा इन्सान है क्योंकि इसी धुएँ और कूड़े के नारकीय कफस मे ही वह पैदा होता है और उसकी गरीबी उससे कहती है, 'इसी कफस मे रहो, उन इमारतों की ओर मत देखो जिनमे प्यारी-प्यारी रोशनी फैल रही है, जहाँ हवा है, जहाँ जीवन है···

छोटी बच्ची को माँ का दूध पीते देख कर माधुरी का बच्चा भी कहने लगा, 'माँ दादी पास चलो, भूख लगी है।'

बच्चे भी कितने भोले होते है? जो महसूस करते हैं, कह देते है। ह्यूगो कहते थे ये नियमों से मुक्त एक अथाह रूप-राशि हैं।

नीली ने प्यार से उसकी ओर देखा और बोली, 'भूख लगी है?' वह उठी और एक तश्तरी मे भुने हुए चिउड़े लेती आई। बच्चे ने माधुरी की ओर देखा। माधुरी ने कहा—'खा लो'।

नीली की आँखों मे स्नेह छलकने लगा था। उसने कहा—'हम गरीब हैं और दे ही क्या सकते है?'

'नहीं बहन!' माधुरी को लगा, कोई खरोंच ठीक उसके हृदय के पास लग गई हो—'ऐसा न कहो। गरीबी मनुष्य को मनुष्य रहने से नहीं रोक सकती।'

बच्चा निर्भय होकर खाता जा रहा था।

दिन ढल कर आँगन से हट गया था। माधुरी उठी। उसने कहा, 'अब चलूँ बहन, नाश्ता बनाने का समय हो गया।'

'फिर आना माधुरी !' नीली ने कहा !

बच्चा नीली की ओर प्यार से देखता हुआ जा रहा था।
....बाहर गली के दूसरी ओर वृद्ध मुसलमान टूटी खाट पर बैठा हुआ हुक्का पी रहा था और कहता जा रहा था, 'या खुदावंद करीम, कहाँ भूल गए हो ? इस दोजख से अब दूर करो मेरे अल्लाह !'

बनिया अपने ग्राहक से कह रहा था, 'क्या करेंगे हजूर, इस दुनिया ही को जैसे आग लग गई हो !'

काले-गोरे सुडौल बच्चे, नंगे बदन कंकड़ उठा कर नाली के पानी मे फेंक रहे थे। जब पानी उछलता, वे खिलखिला पड़ते। कितना अच्छा खेल था ! कभी कोई सायकिल वाला घंटी बजाता हुआ जब निकलता तो वे आश्चर्य से उसकी ओर देखते ! फिर खेलने लगते क्योंकि यही उनका जीवन है ! इसी मिट्टी की सड़ती हुई दुर्गन्धि मे वे पले हैं। उनसे कोई नहीं कहता, 'बेटा ! यह रेडियो है... सारी दुनिया इसमें से बोलती है....यह सिनेमा है ! देखते हो परदे पर हिलती-बोलती तस्वीरें उतर रही हैं....और कल से कान्वेन्ट जाना, बस आ जायेगी...मेरे भले लड़के, तू बहुत बड़ा अफसर होगा ! डैडी से भी बड़ा .. और लड़का कह उठता है—ममी, हमे संतरे टिफिन में मत भेजना ...

नाली के साथ रहने वाले बच्चों की माँ मोटी रोटी का टुकड़ा पकड़ा कर कहती है, 'खा मुंहजले ! .. कोई राजा के घर नहीं पैदा हुआ जो सूखी नहीं खायेगा....जा खेल आ, दिन-रात सटा रहता है...

वैषम्य हँस पड़ता है—एक ओर मनुष्य का अणु-अणु वैभव

के रस मे सरावोर है, दूसरी ओर का मनुष्य जब उस ऐश्वर्य को देखता है तो 'ग्रेहांउड' कुत्तों जैसे आदमी भूक उठते हैं—'कौन है वे, जो इस तरह घूर रहा है। इस वैभव की ओर देखेगा तो हम काट खायेंगे। हम आदमी हैं और आदमी का ही भेजा चाट जाते हैं।'

गली के मोड़ पर जो कुँजड़िन है वह चीख पड़ती है—'वड़ा आया मर्दुआ। मैं न रहूँ तो रोटी मुँह न लगे लेकिन औरत जान कर मारता ही रहता है ..

और फिर धम्-धम् की आवाज होती है। शक्तिशाली पुरुष नारी को निर्दयता से पीटता है...... कहते हैं यही पुरुप भीम था, हरक्यूलिस था, रुस्तम था!

संध्या उतर आई है और ढाल पर से मोटरें गुजर रही है। रिक्शेवाले मशीन खींच कर पसीने से तर हो जाते हैं। तारकोल की चिकनी सड़क पर सब काम ठीक चल रहा है। जैसे मनुष्य के पास विल्कुल समय नहीं है, वह चल रहा है, चलता जा रहा है। किन्तु ढाल से हट कर खलासी लाइन मे श्मशान की तरह छायाएँ घूमती है! वे वोलती भी हैं तो भय लगता है, चुप हो जाती हैं तो श्मशान सा सन्नाटा हो उठता है।

.... उमानाथ विल्कुल थक गया है। यह दफ्तर की नौकरी तो रक्त पिये जाती है। इतना काम कि सूरज ढल गया है तब घर आया हूँ। यह फाइलें भी तो हैं, रात मे इनसे जूझना है!

तभी वड़ा वच्चा आ जाता है—'वावूजी माँ कहती हैं तरकारी नहीं है।'

'तो कह दे मेरा कलेजा वना कर खा ले!' और वह खों-खों करके खाँसने लगा। वच्चा घवड़ाया सा मुँह देखता रहा और चला गया। नीली ने आकर कहा—'क्यों ऐसी वाते किया करते

हो ?' उसे खाँसते हुए देख कर कहने लगी—'क्या बहुत दर्द है ? आराम कर लो !' जैसे वह दर्द उसके हृदय को छू रहा हो।

'हाँ नीली' उमानाथ ने शान्त भाषा में कहा—'आज बड़ी खाँसी आ रही है। यह बीमारी तो मरते दम तक नहीं छूटेगी।'

फिर कहने लगा—'मैंने तुझे जीवन भर काँटों पर घसीटा है। मै जो कुछ भी कह देता हूँ वह बेचैन होकर कह देता हूँ। तू है कि बोलती तक नहीं।'

उमानाथ का गला भर आया। सचमुच उसे दुख था। नीली उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी थी और बड़ा लड़का अपनी मीठी भाषा में बच्ची के शरीर पर हाथ फेरता हुआ कह रह था—

सो जा राजकुमारी, सोजा
सो जा राजदुलारी सो जा, ·· सो जा !

और उसके वे स्वर उभरते, फैलते धरती के सीने मे खोए जा रहे थे। ऊपर आकाश मे बादल के कुछ सफेद टुकड़े व्याकुल से भटक रहे थे जैसे वे असीम नीलाभ से पूछते हों 'किधर जाएँ ?' और नीलाभ एकरसता से कह रहा हो—मैं क्या जानूँ ? मुझसे क्या पूछते हो ? मै तो शून्य हूँ !!

'नहीं जनाब, घोड़ा तिरछा जायेगा ?' रामचरण बोला।

'अच्छा लो पील तो जायेगा।' केशव ने घोड़े को हटा कर उस स्थान पर पील रखते हुए कहा।

शतरंज की मोहरे मेज के सफेद और काले खानों मे घूमने लगी। दोनो मौन होकर दॉव देखते जा रहे थे जैसे वह दॉव जीवन की बाजी हो। यदि यह छूटा तो मात होगी और कौन खिलाड़ी मात होना चाहेगा जब कि उसकी उँगलियों के संकेत पर बादशाह है, वजीर है और कश्तियॉ हैं, पील है—साथ ही साथ प्यादों की पूरी फौज है। बादशाह को इस तरह घेर लेना कि कहीं भी भाग न सके, मात कहलाती है। और जब दो मँजे खिलाड़ियों मे से कोई हारता है, तो लगता है जीवन कितना व्यर्थ है क्योंकि वह नहीं उसका साम्राज्य मात हो जाता है। वास्तव में यह सम्राटों और नवाबों का ' '

नवाब वाजिदअली शाह इसे खूब खेलते थे। जब उनके राज्य मे मनुष्य भूख से तड़पता तो उनके हरम मे शतरंज की मोहरें बज उठतीं '

केशव ने रामचरण का घोड़ा मार दिया और बड़े ही शान्ति स्वर में कहने लगा,—'भाई यह शाही खेल है, नवाबों और राजाओं का।'

रामचरण किचकिचा उठा। घोड़ा भी चला गया ? कहते है, जब गोरे अपनी संगीने लेकर नवाब वाजिदअली शाह

के महल तक पहुँच गए' ''' जब साम्राज्यवाद का गेंहुअन सॉप ढंपू-ढंपू करते हुए नवाबी गधे तक पहुँच गया तब नवाब साहब शतरंज खेल रहे थे।

किसी ने उनसे कहा—'अलीजॉ! फिरंगी आ गए हैं।' ऐश के पुराने लहजे मे उन्होंने कहा था—'अरी जरा जूती तो ठीक करना।' वाह क्या शान थी? क्या ऐश था? किन्तु उन गोरों ने बिना जूती ठीक किए उन्हे कलकत्ते भेज दिया था और आदमी को ढचर-ढचर करते देख कर जिस नवाबी पर जूँ नहीं रेंगी वह इस तरह मरी कि उसकी लाश पर कौवे तक नहीं रोए! किन्तु साम्राज्यवाद का गेहुँअन सॉप फन फुफकारता हुआ बढ़ता गया ....

'एक बात सुनी है केशव?' रामचरण अपने साथी की ओर देखने लगा, जो उसके वजीर की ओर बड़े ध्यान से देख रहा था।

'क्या? केशव ने कश्ती बढ़ाते हुए कहा'।

'कानपूर मे भी बारूद फैल गई है, बस एक चिनगारी भर चाहिए। देखना सभी कारखानों मे हड़तालें होंगी।'

'अच्छा' केशव ने जैसे कहा हो कि बस इतनी ही बात है न!

'और फिर इन हड़ताल करने वाले लोगों को भून दिया जायेगा। अमलेन्दु मुकर्जी कह रहा था, इस बार जो हड़ताल होगी उससे सेठों के व्यापार की नींव हिल जायेगी।'

............पूंजीवाद के गेहुँअन सॉप ने केचुल छोड़ा है। यही साम्राज्यवाद है। यह केंचुल चिकना है किन्तु इस केचुल में इतना ज़हर है कि उसके आस-पास धरती लाशों से पट गई है और उन लाशों के बीच में अधमरी मछली सा कुछ छटपटाता है जिसे इन्सान कहते हैं''''''यही वह इन्सान है जिसके शरीर पर सामन्तवाद के भयंकर कोड़ों के चिन्ह हैं, इन्हीं चिन्हों को दरार

समझ कर साम्राज्यवादी साँप अन्दर घुस कर भरपूर रेंगा था और फिर जब बाहर आया है तो पूँजीवाद मनुष्य के अन्दर का लहू पी रहा है किन्तु लहू इतना गर्म है कि पूँजीवाद की छाती फट रही है"

मकान के बाहर खिच-खिच करती हुई आटे की चक्की चल रही थी। नवाबगंज के उस मुहल्ले मे विचित्र घुटन है। जिस मकान मे केशव रहता है उसमे सभी पुरुष ही हैं। मास्टरी का वह जीवन काटने का केवल एक ही मार्ग था--शतरंज। रामचरण तो दफ्तर मे काम करता है। इसीलिए कभी-कभी वह इतनी देर करके आता है कि केशव प्रतीक्षा मे बैठा-बैठा ऊब जाता है। मकान मे रहने वाले दो और लड़के तो बस सन्ध्या परी दिन की काया पर उतरीं नहीं कि माल रोड की ओर चले जाते हैं और वहाँ हटिंग करते हैं, हटिंग—गर्लहटिंग। अर्थात् लड़कियों के पीछे इधर से उधर घूमते है, दूर-दूर से रिमार्क्स और 'वेलेरियो' के सामने जब कोई बढ़िया जाती हुई मोटर देखते हैं तो हाथ उठा देते हैं—देखने वाले समझते हैं, मोटर में बैठा हुआ व्यक्ति उनका दोस्त है ·······

शतरंत की चाले हो रही थीं। तभी कोई अन्दर आया। यह अमलेन्दु मुकर्जी था। उसने घुसते ही कहा—'वाह! दुनिया आज ऑसू के खारेपन से सिंच रही है और तुम हो कि शतरंज खोल कर बैठे हो।'

खिलाड़ियों ने एक साथ ऑखें उठाई। केशव बोला—'आओ मुकर्जी! तुम्हारी ही बात हम कर रहे थे। अभी भी मैंने राम-चरण को मात दी होती।'

'केशव' बीच ही मे अमलेन्दु बोल उठा—'न जाने क्या हो गया है तुम लोगों को कि यह शतरंज नहीं छूटती। मैंने जो

कुछ कलकत्ते में देखा, उसकी एक रेखा भी यहाँ दिखलाई पड़ती तो मैं समझता, भविष्य मुस्करा रहा है। इन कारखानों में काम करने वाले मजदूरों और बोझ ढोते रहने वाले काम-गारों में तुमसे अधिक जोश है। अध्यापक, दफ्तर के बाबू, तुम भी तो मजदूर ही हो। न जाने ये सफेद कपड़े तुम्हें क्या समझा रहे हैं....

केशव बीच ही में बोला—'भई मुकर्जी, जब कभी तुम आते हो तो वही मजदूर, कारखाने और मौत—न जाने क्या ऐसी—वैसी बातें !'

इस बार रामचरण ने उसका विरोध किया और कहने लगा—'नहीं केशव, मुकर्जी ठीक कहता है। सदा से वह यही कहता आया है। मुझे याद है, जब हम साथ पढ़ते थे तो कालेज मे लड़के इसे बोलते देख कर शान्त हो जाते क्योंकि उस समय यह साम्राज्यवाद के शरीर पर अंगारे रखता था—जब बोलता तो लगता, साम्राज्यवाद की देह चटक रही है।'

उसने मेज की मोहरों को समेट कर रख दिया। वातावरण गंभीर हो गया था। रामचरण को जैसे कालेज के दिन याद होने लगे थे....वह अंग्रेजी लिबास, वे कहकहे... सिनेमा के बीच की मीठी बातें .. लड़कियाँ, गोरी-गोरी, मांसल ! किन्तु वह सब कुछ डूब गया। विवाह होते ही बच्चे होते गए। बहन की शादी भी तो करनी थी और प्रत्येक लड़के वाले के पास जाने पर उन-की लम्बी माँग को याद कर वह सहम गया....कोई कहता—लड़का आई० ए० एस० मे बैठा है ! जाइए आप आठ ही हजार दे दीजियेगा। जिसका अर्थ था, आठ हजार तो बाजार भाव नहीं है आप के साथ दया की जा रही है। एक सज्जन तो यहाँ

तक बिगड़ गए थे—देखिए साहब, कम करने के लिए तो कहिए नहीं। मै एक पैसा भी नही कम करूँगा। लड़की आपकी है।' जिसका अर्थ था, लड़का हमारा है। हम क्यों उसे इतने कम में फेक दे। और फिर कौन फँसता है ?

रामचरण को लगा, यह सारी धरती काँप रही है और उसमें बड़ी-बड़ी भयावह दरारें फटती जा रही है "आदमी उन दरारों मे लुढ़कता जा रहा है "

किन्तु केशव जैसे मात हो चुका था। अनमना सा वह मुकर्जी से पूछ रहा था—'क्या तुम समझते हो इन क्लर्कों मे भी एका हो सकती है ?' जैसे कह रहा हो, यह कभी नहीं हो सकती।

मुकर्जी हँस पड़ा किन्तु तुरन्त गंभीर हो उठा—'सब कुछ हो सकता है केशव ! यदि वारेन हेस्टिंग्स और डलहौजी की लाश भारत १९४७ मे फेक सकता है तो मजदूर स्वतन्त्र हो सकते है—ये अध्यापक भी, जिन्हे यह कह कर फुसलाया गया है कि 'तुम राष्ट्र निर्माता हो। आवश्यकताएँ कम करो। ज्ञानार्जन ही तुम्हारा उद्देश्य है'—एक हो सकते है। दफ्तरों के बाबू भी आवाज उठा सकते है।'

इस जर्जर जीवन के विरुद्ध जो भावना उसके हृदय में लहर मार रही थी, बाहर फूट पड़ी। उसने बात को बदलते हुए कहा—'चाय पिलाओगे, रामचरण ?'

हाँ हाँ चाय तो अपनी प्यारी सहचरी है।' केशव उठा और स्टोव जलाने के लिए दियासलाई खोजने लगा !

जब स्टोव घों-घों करके जलने लगा तो केशव ने केटली चढ़ा दी। कुछ देर तक तीनों चुप रहे। केशव को शतरंज भूल गई थी और अपना गाँव याद आने लगा था। वह गाँव जहाँ

उसने जन्म लिया था। धूल और मिट्टी ही जिस गाँव की निधियाँ हैं, जहाँ गरीबी और जिन्दगी अपना कमीनापन फैलाए बैठी हैं ......इधर बिरहाना रोड है, बड़ी-बड़ी इमारतें है और बनती जा रही हैं। काले-काले दुबले लोग लाल-लाल पत्थर तोड़ते हैं और लगता है उन स्वरों में मनुष्य मर्मांतक पीड़ा से चीख रहा है.... वे इमारते नहीं मानव की हड्डियाँ हैं जिन पर पाँव रख कर पूँजीवाद के दानव अट्टहास करते हैं.....

इधर वह है, रामचरण है, वे दोनों लड़के हैं—नवाबगंज के सारे हब्शी हैं, खलासी लाइन है।

उसने देखा, स्टोव कभी-कभी हरी लपटे फेक देता है और पानी उबलने लगा है। गर्म-गर्म बुदबुदों के अन्दर का भाप केटली का ढक्कन हिला देता। रामचरण डबल रोटी काट रहा था। मुकर्जी चारपाई पर मौन बैठ कर एक रस सा देख रहा था—आँखों मे चित्र चलते, फिसलते!

चाय पीते समय केशव ने कहा, 'मेरी समझ मे नहीं आता कि अंग्रेजों के जाने पर भी ऐसा क्यों लगता है कि कोई परछाई हम सब पर मड़रा रही है?'

रामचरण उसकी ओर आश्चर्य से देखने लगा कि वह कहना क्या चाहता है?

मुकर्जी ने गंभीरता से उत्तर दिया, 'यह परछाई शतरंज की तरह है। शतरंज एक ऐसा खेल है जो मनुष्य को सब कुछ भुला देता है। यहाँ मनुष्य अनेक प्रकार के शतरंजों में उलझ गया है—उसे अपने अधिकार भूल गए है, उसे यह भूल गया है कि जीवन में कोई रस भी होता है? भाग्य, भगवान् और धर्म उस परछाई रूपी शतरंज की मोहरें हैं, जिनके साथ-साथ मनुष्य का मस्तिष्क घूमता है, उसका सारा आकार चकराता है।'

चाय के प्यालों से भाप की रेखाएँ उभर रही थीं। बाहर अंधकार बढ़ रहा था। रामचरण ने स्विच दवा दी।

केशव ने कहा, 'किन्तु क्या यह परछाईं हटेगी ?' प्रश्न उभरा और कमरे की ऊँचाई तक फैल गया। बिजली का लट्टू चमक रहा था। उसके आस-पास दो कीड़े आ गए थे। कहते हैं ये शलभ है और दीपक को देख कर उसे घेर लेते है, क्योंकि इनका चिर प्रेम है ! फिर जल कर राख हो जाते हैं। तब दूसरे आते हैं और मिट जाते है। हर दिन ऐसा होता है। यह कभी नहीं रुकता। जीव की यह कहानी अछोर है।

प्रश्न उभरा और मुकर्जी ने शान्त भापा मे उसका उत्तर दिया, 'यह परछाईं अब मनुष्य के ऊपर मड़राती है किन्तु वह कॉपता नहीं और शीघ्र ही वह समय आयेगा जब रोशनी फैलेगी और वह काली परछाईं आप से आप प्रकाश की उन किरणों मे मर जायेगी। मनुष्य जाग रहा है, वही प्रकाश है, परछाईं मर रही है और वही मनुष्य के जागने का चिन्ह है। मजदूर अपने अधिकार चाहता है, किसान उन फूस की झोपड़ियों से निकल कर अपनी मेहनत की कीमत मॉगता है और मध्यम वर्ग कसमसा रहा है जैसे उसकी भी कुछ मॉग है, वह भी मुर्दा नही है।'

उसकी ऑखों मे भविष्य के सपने फैल गए। केशव चुपचाप सुन रहा था। रामचरण खो गया था, अपने में ही—समस्याएँ उसे घेर कर कह रही थीं—'हम व्यूह बना रही हैं, तुम घुट-घुट कर मर जाओगे।' उसे वह गॉव याद आ रहा था जहॉ फूस और कच्चे ईंटों की छाया मे लोग उसे याद कर रहे होंगे, जहॉ धरती हरी होती है, जहॉ मनुष्य लहू बहाता है और अनाज धरती को फाड़ कर निकल आता है। वहीं वहीं ...

मुकर्जी चला गया। सूनापन फिर फैलने लगा था। यह

सूनापन प्रत्येक मनुष्य के जीवन का अंग बन गया है—कभी घहरता है, सनसना उठता है, कभी लगता है, व्यक्ति की सत्ता को नष्ट कर स्वयं छितरा जायेगा....

नीम के पेड़ के नीचे रंगीन लुंगी बाँधे हुए मुसलमान अपनी मुर्गी को क्वाटर में ले जा रहा था। पान वाले की दूकान पर एक धुँधली लालटेन जल रही थी। कोई मनचला युवक अपने नए जूते की ओर देखता हुआ कह रहा था, 'काली सुरती नहीं रखते क्या? यह पीली सुरती तो कुछ मालूम ही नहीं पड़ती, यार।'

पान वाला दाँत निकाल कर कहता, 'खतम हो गई है.... हें हे हे 'अब लाऊँगा' जिन्दगी हँस रही थी ठीक उस पान वाले की तरह जिसके आगे के दाँत टूट गए थे। और पूरब की ओर से पश्चिम की ओर से, लगता था सारी दिशाओं से कुछ गरज रहा है

कारखानों की चिमनियाँ भरपूर दहाड़ रही थीं! ....और दूसरे ही दिन मनुष्य भी दहाड़ने लगा। कानपुर की वे सड़कें जो चुपचाप जीवन का विष निगल जातीं जैसे बोलने लगीं। चारों ओर अधनंगे लोग अपनी हड्डियों में झूम उठे। जलूस निकलते और उनकी गोद में स्वरों का वह वेग रहता जो उन बड़ी-बड़ी इमारतों तक गूँजता, जिनमें सेठ लोग पूँजी की छाया में मानवता का सीना चाक कर रहे थे। चारों ओर आदमी चीख रहा था—

'हमें रोटी चाहिए!'

'हमें जिन्दगी चाहिए!'

'पूँजीवाद की लाश पर थूक दो

...... थूक दो!'

पुलिस सचेत हो उठी थी। सरकार के लोग उन स्वरों को सुनते और मुस्करा उठते। ये अधनंगे लोग करेंगे ही क्या? और इन्होंने यदि कुछ किया तो भून दिए जाएँगे। सरकार अशान्ति नहीं सहन कर सकती। उसका काम है शान्ति रखना और कोई यह कह कर चीखता है कि 'भूख से तड़प रहा हूँ रोटी दो' तब भी वह दबाया जायेगा क्योंकि माँगने का यह ढंग नहीं है। गिड़गिड़ा कर कहना चाहिए 'प्रभु! दीनों के रक्षक, हे सरकारी देव, हमे भूख लगी है, यदि रोटी का एक टुकड़ा मिल जाता तो हम भी खाते और आप की भी दिनो दिन बढ़ती होती।'

किन्तु ये लोग तो कहते हैं 'हम भीख नहीं, अपना अधिकार माँगते हैं।' वे मचल रहे हैं जैसे सागर के असंख्य बुदबुदे मिल कर तूफान बन गए हों और अब वे उछलेंगे, टकरायेंगे और उस टक्कर में, उस उछलन में वह ताकत होगी जो सब कुछ बहा ले जायेगी। यह अधिकारों के माँग की आँधी है जो कभी नही उठी थी और इस नए बवन्डर को जो रोकना चाहेगा, वह अर्रा कर टूट जायेगा।

यह केवल हड़ताल नहीं, अपनी माँगों की पूर्ति के लिए मनुष्य मचल उठा है क्योंकि अब तक उसकी माँगों पर साम्राज्यवादी पशु थूक देते थे क्योंकि इन्ही हड्डियों पर सामन्ती ने कोड़े बरसा कर भयानक अट्टहास किए हैं। किन्तु अब वे एक हो गए हैं—अब दूर-दूर तैरती हुई लहरें चक्र की भाँति घूम-घूम कर भँवर बन गई हैं और वह भवँर इतनी तीव्रता से घूमती हैं कि पूँजीवाद का खोखला जहाज उसकी चपेट में काँपेगा, गनगना कर घूमेगा और चूर हो जायेगा। तब भँवर रुक जायेगी, तब मनुष्य देखेगा, सामने समानता है, अछोर शान्ति है''''...

कानपुर की हर सड़क पर मनुष्य उमड़ रहे थे। शहर

और सभी कारखानों में हड़ताल हो गई थी। उस हड़ताल की लहर फैलती गई और सेठों के कारखानों में भी मजदूरों ने काम बन्द कर दिया" "

काम बन्द हुआ यानी व्यापार बन्द हो गया। व्यापार बन्द होने का अर्थ है सरकार की नींव हिल उठी। इसीलिए लाल-लाल पगड़ियों मे पूँजीवाद की रक्षा के लिए सैनिक उमड़ पड़े। ये तब भा इतनी ही गति से उड़मते जब ब्रिटेन का साम्राज्यवाद इन्सान के सीने पर बैठा उसका रक्त पीता। ये कर ही क्या सकते है? ""....रोटी ....

सेठ लोग व्याकुल है। कभी वे उद्विग्न हो कॉप उठते है, कभी कुछ भी सुनना नही चाहते। किन्तु वे दिन लद गए जब सेठों का विमुख होना जिन्दगी का विमुख होना था। अब वह सर्वहारा मनुष्य भी समझता है कि उसकी इस पीड़ा के मूल में उस व्यवस्था का हाथ है जो कुछ रक्तखोरों ने मनुष्य को धोखा देकर खड़ा किया है। मनुष्य उस चिथड़े को, उस धोखे को अलग करना चाहता है।

कारखानों के सम्मुख मजदूर लेट जाते। पुलिस उन्हे भय दिखलाने के लिए सड़कों पर हवा मे गोली चला देती। किन्तु मनुष्य वदल चुका था। जलूस तुमुल स्वर मे चीख उठता—

'हमे रोटी चाहिए!'
'हमे जिन्दगी चाहिए!'
'हमे समानता चाहिए!'

सड़कें थर्रा उठतीं। एक वार वे सैनिक भी कॉप उठते जिन्होंने सदा से दमन करना ही सीखा है! मनुष्यों का वह समूह उमड़ता और गरजता। तोंदियल सेठ थुलथुल करते हुए किचकिचाते! किन्तु जिन्दगी करवट वदल रही थी। मुर्दगी हॉफने लगी थी"....

—

रामचरण दफ्तर में कह रहा था—'न जाने वह फाइल क्या हो गई!'' ''''अब कुछ होगा उमानाथ'''''' देखते हो यह उठता हुआ बवन्डर!'''

''केशव बच्चों को पढ़ा रहा था—कुछ इतिहासकारों का मत है कि वारेन हेस्टिंग्स ने ऐसा नहीं किया ''''उसने चेतसिंह से पाँच लाख रुपया माँगा, जब चेतसिंह ने नहीं दिया तो भारतवासियों की रक्षा के लिए उसने धावा बोला''''''अवध की बेगमों ने भी उसकी आज्ञा नहीं मानी थी, तभी उनसे जबरदस्ती वसूल किया गया ' वह जालिम नहीं था '''उसके हृदय में भारतवासियों के लिए मुहब्बत थी

जलूस के सामने अमलेन्दु मुकर्जी कह रहा था—'पूँजीवाद की नींव को हिला दो नहीं तो यह तुम्हारी हस्ती चाट जायेगी। अपने अधिकारों को कभी मत भूलो। धरती के कामगारो, तुम भारत की जिन्दगी हो '''

भीड़ मचल रही थी, जैसे अधमरी लाशें जिन्दा हो रही हों।

कफन फट रहा था और इन्सान के सिर उन कफनों से झाँक रहे थे''''''

कलकत्ते की स्थिति बिगड़ती गई। जीवतराम मिल्स् में जब काम बंद हो गया और कमकर कारखानों के फाटकों पर लेटने लगे तो आग फैलने लगी। यह आग ही थी जो मनुष्य के हृदय मे युगों से दबती आ रही थी। उन डरावनी चिमनियों के बीच जिनका जीवन था—सदा से जिन्हे समझाया गया था कि जीवन मजदूरी है, दबना है, सेवा करना है और करते-करते मर जाना है, वे आज तन कर खड़े थे और दहाड़ रहे थे कि अब हम जिन्दगी को समझने लगे हैं। हमारे अधिकार वापस करो नहीं तो पिस जाओगे।

मोटे-मोटे सेठ घबड़ाये से कभी कारखानों तक जाते और कभी दूर ही से सहस्रों लाल ऑखों का भाव समझ कर लौट आते क्योंकि उस लाली मे इन्सान का रक्त उबल रहा था।

जलूस पर एक दिन लाठियॉ बरसी थी और विषैली गैसे छोड़ कर मनुष्य को तितर-बितर किया गया था। पुलिस ने समझा था, आदमी दब गया। रक्त बहने से उन सेठों ने सोचा था, मजदूर दब गया और फिर व्यापार चमकेगा क्योंकि दब जाने पर उनकी नकेल उन लहू से भीगी उंगलियों में फिर आ जायेगी।

किन्तु ज्वार उठा था और दब गया था। फिर उठा और सड़के दूसरे ही दिन जिन्दगी से भर गई। अपने अधिकारों की मॉग करने वाले लोग कलकत्ते के सीने पर पुनः उमड़ पड़े। लगता था, धरती फट जायेगी और उसके अन्दर से वह सहनशक्ति

चोलेगी जिसने अभी तक मानवता को पशुत्व के पंजों में छटपट करते देखा था……

कारखानों के स्वामी, जो समझते थे व्यापार के नाम पर रक्त पीना उनका काम है, इस वार वेचैन हो उठे और वह बेचैनी ऐसी थी जैसे गीदड़ मरे हुए शेर को जीवित देखकर घबडा उठे। गीदड़ सोचता था—शेर मर गया होगा। अब चलेंगे, उसका भेजा लेकर खायेंगे और शेर के भेजे मे कितना रस होगा!

कारखानों से सामान निकाल देनेवाले मजदूरों मे कितना रस होता है। वे कच्चे माल को मोहक से मोहक वस्तुओं मे बदल देते है। सेठ सोच रहे थे, अब उनसे इतना काम लेंगे कि उनकी हड्डियॉं चरचरा उठेगी …

किन्तु यह तो फिर वे डट गए हैं। फिर कलकत्ते की सड़कों पर गूँजने लगा था—

'हमारे अधिकार लौटा दो'
'कारखाने हमारे हैं'
'हम नही दबेंगे
…नही दबेंगे'

तो शेर मरा नही था?

गीदड़ की धमनियों का रक्त जमने लगा। सेठों के हृदय की गति रुक सी गई। लाठियों से भी ये नही दबे? विषैली गैसें भी इन्हे पीछे नही हटा सकी? सेठ कॉपते-कॉपते मुस्करा उठे। बुद्धि से काम लेना होगा? अपनी सरकार है ही किसलिए?

इस वार लाठियॉं नही बंदूखे थी। उन वन्दूखों मे बारूद होता है। बारूद जलता है और जिसे छूता है वह भुन जाता है।

मजदूर बढ़ रहे थे। एक ओर वे काले-काले हड्डियों वाले मुर्दनी के ढॉचे थे और बढ़ रहे थे जैसे धीरे-धीरे बुदबुदाने वाला

सागर हो, जो वहता है, उछलता है और तूफान बनकर सब कुछ हिला देता है। दूसरी ओर वर्दियों के सिपाही थे, उनके हाथों मे वन्दूकें थी, तेज धारवाली संगीनें थीं, जो मनुष्य का सिर चीर सकती हैं, उसे झुका नही सकतीं। एक ओर मनुष्य के अधिकार की माँग मचल रही थी और दूसरी ओर पूँजीवाद की वर्बरता वंदूकों और संगीनों में अट्टहास कर रही थी।

पुलिस के सबसे बड़े अफसर ने कहा—'जलूस तोड़ दो। १४४ है। यदि नियमों का पालन नहीं करोगे तो भून दिए जाओगे। आज लाठियाँ नहीं बंदूकें हैं।'

रोटी के लिए विवश सैनिक बन्दूकों में तन कर खड़े थे। वे मासूम लोग जिनके हृदय में भी पिता, पुत्र और भाई का स्नेह रहता है। पूँजीवाद के दानव ने उन्हे भी तो नहीं छोड़ा है।

राजू, अहमद और नरेश सबसे आगे थे। पीछे वह अथाह जन शक्ति थी जिसका नारा था 'इस बदबूदार जीवन से द्रोह करो!' ववन्डर घूम रहा था, गरज रहा था।

राजू ने दृढ़ता से उत्तर दिया—'बन्दूकों का भय दिखलाने वाले अफसर हम उतने दुर्बल नहीं हैं, जितना तुम समझते हो। हमारा काम शान्ति भंग करना नहीं है—अपना स्वर उठाना है।'

'बकवास कम करो' अफसर ने एक बार उस ववन्डर की ओर देखा जो वातचक्र सा घूमने ही वाला था। सैनिक तन कर खड़े थे। यातायात रुक गया था। सड़क के दोनों ओर मनुष्य जमने लगे थे। लगता था कुछ होने वाला है, कुछ होकर रहेगा।

अचानक जलूस बढ़ने लगा। उसमे इतनी गति आ गई कि लोग छितरा गए। सैनिकों के उस समूह की ओर सैकड़ों व्यक्ति झुक गए। भगदड़ मच गई, जैसे कलकत्ता अब जल उठेगा।

सहस्रों व्यक्तियों का वह समूह आपस में टकराने लगा। तभी कंकड़ बरसने लगे। एक सैनिक के कान को छीलता हुआ कंकड़ निकल गया। वह चीख पड़ा। एक सैनिक ने बन्दूक के कुन्दे से भागने वाले के सिर पर मारा तब उसकी नाक मे किसी के फेंके गए जूते का लोहा चुभ गया। वह गिर पड़ा।

अफसर घिर गया था। स्थिति भयंकर थी! अफसर ने आज्ञा दे दी—'गोली चलाओ!'

लोहे की बन्दूकें गरज पड़ीं। उस भगदड़ के बीच जलता हुआ बारूद जब बरसता तो मनुष्य की चीत्कार बढ़ कर अघोर हो जाती। मनुष्य भाग रहा था कि जैसे दानवता अपने भयकर नाखूनों को फैला कर उसके कोमल शरीर को दबोच रही हो। उन नाखूनों का विष इन्सान के अन्तर तक पहुँच रहा था। बन्दूके गरज रही थीं। तभी भागते हुए लोगों मे से किसी ने एक देशी बम सैनिकों की ओर फेका। दो के मुँह झुलस उठे। गोलियाँ और क्रोध से छूटने लगीं.......

धीरे-धीरे सब कुछ तितर गया। बीसों लाशें सड़क की छाती पर बिछ गईं। जो घायल था, वह कराह उठता। जो मर चुका था उसकी पथराई आँखों में पूँजीवाद की छाया मड़रा रही थी। गोलियाँ चलनी बन्द हो गईं। सरकार की रक्षा करने वाली पुलिस के सिपाहियों ने लाशों को अपने बूटों से ठुकराया। उनके चेहरे पर विजय के चिन्ह थे।

तभी किसी सैनिक ने एक घायल की ओर देखते हुए कहा—'यह भी 'नेताओं' मे से था। पकड़ लो साले को।'

और सैनिक आ गए। घायल के दाहिने हाथ मे गोली घुस गई थी। अहमद था। वह असीम पीड़ा से कराह रहा था। जब तक 'एम्बुलेंस' आ गई थी। घायलों को उनमे भरा गया। लाशों

को भी ठूँस-ठूँस कर गाड़ियों में भरा गया। और वे अस्पताल पहुँचाई गईं।

सड़क साफ हो गई। मनुष्य के रक्त से वे मुर्दा सड़कें भीग गई थीं। जहाँ थोड़ी देर पहले जिन्दगी की तड़प बिजली की भाँति कौंध-कौंध जाती, वहाँ साँय-साँय फैलने लगा था और मजदूरों की हर बस्ती मे थके से लोग बारूद का खेल सोच कर काँप जाते।

सरमायादार हर्ष से फूल गया था। अब तो ये मजदूर नाक रगड़ेंगे। सरकार है कि खेल है और ···और चाँदी है, व्यापार है कि सरकार को अपने हाथों से लेकर नचाती है। उन पूँजीवाद के मरियल गीदड़ों की ओठों पर लहू लगा हुआ था जो मनुष्य का कलेजा कचर-कचर करके चबा जाते हैं। गोलियों के बीच जब कामगार तड़प-तड़प जाते तब वे गीदड़ रक्त से भीग गई अँगुलियाँ चाट रहे थे

दूसरे दिन बिड़ला और डालमिया के अखबारों मे निकला—मजदूर लूट करने को तत्पर थे। जब उनके मालिकों ने कहा, 'काम करो पैसा बढ़ा देंगे' तब भी नहीं माने। उन्होंने काम बन्द कर दिया। सारा व्यापार पिछले कई दिनों से बन्द है। घाटे की सीमा नही। और यही नही जब पुलिस आई और उनसे शान्त रहने के लिए कहा तो उन्होंने पुलिस पर वार किया मजबूर होकर पुलिस को अपनी रक्षा के लिए गोली चलानी पड़ी। दो मजदूर मर गए" आठ घायल हैं और सैनिकों मे से एक का मुँह झुलस गया है"

बीस इन्सानों का लहू दो बन कर रह गया। अन्य बीसियों का अखबारों के मालिकों ने पी लिया। क्यो न हो, जब कारखानो में मनुष्य काम करते कह उठता है,—आठ घंटे हो गए अब तो पाँव

नहीं उठते। तब पूँजीवादी गीदड़ 'हुँआ-हुँआ' करते हुए चीख पड़ते हैं—'आठ घंटे तो कुछ भी नहीं हैं, वे दिन भूल गए जब सामन्त अट्ठारह घंटे काम लेकर तुम्हारी देह पर कोड़ों के गहरे निशान बना देता था,—वहीं गोलियों में भून दिए गए वह आठ घंटे काम करने वाले लोग और गांधीवाद कहता है, 'मालिक से हिल-मिल कर रहो। एक न एक दिन तुम्हारे मालिक का मन अवश्य पसीजेगा।'

कलकत्ते की धरती उमस-उमस कर कह रही थी—'यह खून न भूलना! बारूद की वे गर्म लपटें न भुला देना—ओ कामगारो, ओ घुट-घुट कर मर जाने वाले दफ्तरों के बाबू।'

* * * *

नरेश पकड़ लिया गया था। पचासों व्यक्ति जेल में ठूस दिए गए थे। इतना सब कुछ हुआ किन्तु मजदूर दबे नहीं। उन बस्तियों में जहाँ लोग उपवास करके, हड़ताल के पहले भी रहते थे—एक ललकार अब भी थी। आज मनुष्य दबना नहीं जानता था। बुभुक्षित मानव खुल कर परम्परा के कीड़ों पर थूकने को तत्पर था।

वे काम पर नहीं गए।

अब सेठ घबड़ाने लगे थे। इतना उन्होंने सोचा भी नहीं था। अखिर इन दुर्बल लोगों में कहाँ से यह शक्ति आ गई है कि ये भूखों मर रहे हैं, तड़प रहे हैं किन्तु झुकते नहीं।

इस बार सरमायादार झुका। मनुष्यता के गोरे मुखड़े पर फैल जाने वाली कोढ़ मिटना चाहती।

किन्तु कमकरों की माँग थी, 'हमारे साथी छोड़ दिए जाँय! हमें मनुष्य समझ कर काम लिया जाय। हमें इतना पैसा मिले कि हम भी जिंदगी को बनाए रख सकें।'

कितना अन्याय था! बिचारे धनपति सोच रहे थे—काम करना भी बंद कर दें और जब पकड़े जाँय तो कहें कि छोड़ दिए जाँय। काम नही करेंगे, ऊपर से मजदूरी भी बढ़ा दी जाय। यह तो चमारों से भी बढ़ गए है। जो अछूत पहले चुपचाप पुरोहितों की वाणी को देववाणी समझते थे, वही अब कहते है, 'हमे तुम्हारी बात पर विश्वास नहीं। तुमने हमें आदमी नहीं समझा। तुम खून चूसने वाले जोंक हो

किन्तु काम निकालना है। कारखानों के मालिकों ने थोड़ी मजदूरी बढ़ाने की माँग स्वीकार कर ली। जेल मे बंद लोग छोड़ दिए गए, अचानक—जिससे जेल के फाटकों पर उनके साथी न जमा हो सके।

नरेश भी छूट गया। बाहर आने पर उसे लग रहा था कि उसके व्यक्तित्व मे कुछ और बढ़ गया है। नौकरी छूट जाने के बाद, ऐसे-ऐसे क्षण—जो गरीबी और विवशता के चोले में बढ़ते, इतना बढ़ते कि जैसे वे व्यक्ति की सत्ता को मिटा देंगे—अब गायब हो जाने लगे और वह भी इस तरह कि जैसे वे कुछ भी नही थे। यदि थे तो उनमें जहर नहीं था, भड़क उठने वाले ऐसे बीज थे जो शोषण की तह में घुन बन कर उसे चाट जाते हैं....

कोठरी तक पहुँच कर उसने देखा, श्यामू आकुल सा बैठा था। उसकी आँखों मे अनेक भावों के सपने तिर रहे थे। कभी वह सोचता, रतनपुर मे उसका बूढ़ा बाप · कभी नरेश को जेल के सीखचों के भीतर याद करके उसका हृदय थर्रा उठता... वह दृश्य सामने नाच उठता जब गोलियाँ बरसी थी, जब बंदूक की लोहे वाली देह से जलती हुई बारूद मनुष्य के जिंदा मांस को चीर कर चीख पड़ती....

नरेश को देखते ही श्यामू की नसों में बिजली दौड़ गई। बिजली जब तारों पर दौड़ती है तब उसे कोई नहीं देख पाता, वही जब मनुष्य की धमनियों मे गति सी मचल उठती है तब ऑसू वरसते है, नसें फूल जाती है, शरीर का हर पोर हिल कर मौन ही गरज उठता है... ....

श्यामू, नरेश के पॉवों पर झुक गया किन्तु उसे सीने से लगाते हुए नरेश ने कहा—'तुम मेरे सबसे बड़े साथी हो श्यामू! जिन कठिनाइयों में तुम मेरे साथ रहे हो, वे इतनी भयंकर थी कि एक बार मैं भी कॉप उठा था।

उस गरीब इन्सान की ऑखों मे स्नेह का अपूर्व भाव था। वह भाव बरस पड़ा। अनेक बार उन ऑखों से खारा जल बरसा था किन्तु इस बार जैसे जल नहीं वह भावना बरस रही थी जिसे स्नेह कहते हैं और जो चुम्बक की भॉति मानव के अंतस मे पनप कर उसे छोड़ती नहीं, कभी नहीं।

'बाबू।' श्यामू केवल इतना ही कह सका।

नरेश ने उसे थपथपाते हुए कहा—'रोते नहीं। अभी तो देखते हो चारो ओर से खूनी ऑखे हमे घूर रही हैं। ये सरमायादार इस बार झुके हैं किन्तु अपने स्वार्थ से, हमारे साथ सहानुभूति रख कर नहीं।'

फिर जेल की बाते होती रहीं। नरेश ने कोड़ों के चिन्ह दिखला दिए और कहने लगा—'यह अपनी सरकार के चिन्ह है। जब अंग्रेज लाठियॉ चलाता था और कोड़े बरसाता था तो यही लोग जो आज सरकार हैं—कहते थे, जुल्म है, नादिरशाही है। अब ये कोड़े फूल बन गए हैं श्यामू!'

वह एक फीकी हॅसी हॅस पड़ा। श्यामू का सारा आकार सिहरने लगा था।

सचमुच यह अनाचार उसी साम्राज्यवादी मनोवृत्ति का काला धब्बा है जिसे हिटलर ने मनुष्य की पीठ में राष्ट्रीयता कह कर कोंच दिया था और जिसे अब विश्व की पूँजीवादी व्यवस्थायें शान्ति कह कर आदमी के फेफड़ों मे भोंक रही हैं।

नरेश ने पूछा—'कितने लोग घायल हुए ? राजू और अहमद कहाँ है ? बहू बाजार, चीतपुर और अन्य बस्तियों के लोग तो काम पर जाने लगे है ?'

श्यामू की आँखों मे फिर वह हाहाकार नाच उठा । उसने कहा—'बीसों लाशें निकल गईं बाबू ! सुना अखबार मे दो ही आदमियों के लिए छपा था । घायलों में अहमद भाई भी हैं। उनके दाहिने हाथ मे गोली लगी। कोई रामनाथ था, वह भी मर गया। किशोरी कहता था—'बड़ा अच्छा आदमी था।'

'अच्छा आदमी कौन नहीं होता ? पर जब किसी के कलेजे में कील ठोंक दी जायेगी तब क्या वह उस कील को निकालने का भी प्रयत्न नहीं करेगा ? जब भूख इन्सान को हिला देगी तब वह चीखेगा भी नही ? वही चीखे आज फैल रही हैं और जब 'ऊँचे' लोग सुनते हैं तो कहते हैं भिखमंगे हैं, जिसका अर्थ है बुरे आदमी हैं क्योंकि भिखमंगे है।'

श्यामू चुपचाप सुनता रहा । वह काम पर जाने ही वाला था, जब साइरन चीख-चीख कर बुलाने लगा तब वह चला गया।

नरेश के सम्मुख फिर वही एकाकीपन हुँकार उठा। सचमुच शोर में जितना स्वर होता है, सूनेपन में भी उतनी ही आवाज होती है। सूनापन गूँजता है । वह गूँज अतीत की व्यथा को ताजी करती है। उसी से आगत का रूप उभरता है। इन्हीं के बीच

जीवन है। यही गूँज और उभरन व्यथा है, आस की अनन्त रेख है।

अब क्या होगा ? जीवतराम ? हा हा हा ! वही जीवतराम जो गरीबों के रक्त से चाँदी का व्यापार करता है और जिसने मुझसे कहा था—यदि मेरे विरुद्ध पॉव उठाओगे तो मेरे कारखानों की छाया भी नहीं छू सकते। अब क्या उसी छाया मे फिर जाना होगा।

किन्तु वह तो अधिकार है ! नौकरी से अलग किए गए सभी व्यक्ति वापस ले लिए गए है। वह भी जा सकता है।

वह भीख है ! जिसे छोड़ दिया, उस नौकरी के लिए फिर नहीं जाऊँगा। जाना भी किसके लिए ? और सन्तोप ? वह व्यक्ति जिसके साथ उसने पूँजीवादी सभ्यता का विष देखा था ! भूल गया—जैसे गाड़ी मे सफर के बाद दो यात्री एक दूसरे को भूल जाते हैं ! किन्तु यात्रियों की विस्मृति मे कोई कारण नहीं होता। और सन्तोप—जैसे उसने बरबस भुला दिया हो, वह प्यार, वह अपनापन……

उसे लगा, कोई हृदय के सबसे निर्मम कोर मे हथौड़े की चोट कर रहा हो। ज्यों-ज्यों हथौड़ा गिरता है, निर्ममता का सीना फट जाना है और उस सीने से मनुष्य की विदारक चीख निकल कर दहक उठती है ……

मनुष्य के सीने पर बज्र उठने वाला हथौड़ा टूट गया है ……

अब उसके हाथ का हथौड़ा गरजता है……वह उसके रक्त और पसीने की देन है … वह अजेय है, वह अटूट है ……

नरेश प्रशान्त सा सोचता रहा। इमारत गूँज रही थी और नीचे उस इमारत से लग कर कलकत्ते का सीना धड़क रहा था …… मजदूर चल रहे थे …… दफ्तरों के बाबू चल रहे थे……

अन्दर ही अन्दर उन चुपचाप चलने वाले लोगों में, ज्वालामुखी की आग चल रही थी, जो भड़कने वाली है—जिसके सीने का लॉवा अब रुक नहीं सकता······बाहर आयेगा··· ·· बाहर आयेगा······ बाहर आयेगा··

संध्या परी की धूमिल अलकें कलकत्ते पर बिखर गई हैं। अभी अलकें है, संध्या भी है। कुछ देर बाद संध्या डूब जायेगी और चारों ओर धरती के विशाल वक्ष पर अलकें ही ही अलकें होंगी। तब उन अलकों के बीच से गोरा चॉद निकलेगा ....

बिजली के लट्टू जल उठे हैं। हुगली का प्यासा जल सागर की ओर थिरक थिरक कर बह रहा है। ऊपर हवड़े का पुल है। हुगली के थिरकते जल मे प्रकाश की झिलमिल करती किरणें एक हो गई है। कलकत्ता दहाड़ रहा है। मनुष्य के असीम बल की एक पतली रेखा है—यह कलकत्ता। इसकी गोद मे मनुष्य का फैलाया हुआ जहर है ......

बहूबाजार की गंदी नालियों की दुर्गान्धि अब भी उठ रही है और मनुष्य उन नालियों के पास रहता है, हॅसता है और सो जाता है। किन्तु वह सो जाने वाला मानव अब ऊब गया है। जहॉ ऐंठन थी और घुट-घुट कर मर जाने वाले जीवन की परछाईं थी, वहॉ आशा की नई किरण फूट रही है। उस किरण की फैलती लाली से हड्डियॉ जगमगा उठीं है—धरती का सर्वहारा मानव उस लाली की ओर प्यार से, अबोध ऑखों से देखता है.......

उन अंधेरे घरों में मनुष्य की जिन्दगी बन्द थी। अब वह जिन्दगी मुक्त हो रही है....

राजू लोचन से कह रहा था—'इस बार वे दब गए हैं किन्तु यदि हम अपने को भूले कि उन्होंने हमारा गला घोंटना आरम्भ किया।'

लोचन प्रसन्न था। इस बार सेठ दबे तो। वे, जो मनुष्य की विपस वेदना पर अट्टहास करते थे, उन्हे यह तो मालूम हो गया कि अब वे हँसे तो उनके विषैले दाँत तोड़ दिए जायेंगे। राधो अभी जोहरा के पास से आई थी। उनका दुख देखकर ही उसका हृदय फट रहा था। नारी! जिसे भारतीय पुरुष ने इस तरह कुचला है कि उसकी सारी चेतना का गला घुट गया है। अब उस निशक्त नारी की ओर समाज खूँखार आँखों से देखता है। उन आँखों मे घृणा रहती है। गुलाम बनाए रखने की वह भावना रेंगती रहती है जो कोढ़ है और जिस कोढ़ से केवल नाखून नहीं गलते, उँगलियाँ नहीं गलतीं वरन् सारा शरीर गलता है और बदबू करता है, जिन्दगी मौत हो जाती है।

लोचन ने कहा—'नरेश बाबू नही आए?'

कुछ याद करता हुआ वह पुनः बोला—'अच्छा राजू दादा, नरेश बाबू क्या अब उस कारखाने में नौकरी नहीं करेंगे?'

राजनारायण के सामने नरेश का सारा व्यक्तित्व घूम गया। वह व्यक्ति जिसने अपनी घड़ी बेच कर मकान का किराया दिया है, जिसने फाका करके रातें काट दी हैं, वह जीवतराम के पास फिर जायेगा?

'नही' उसने उत्तर दिया—'नरेश अब वहाँ शायद ही जाय। वह इस्पात है लोचन, जो हम नही हैं।'

लोचन आह्लाद से भर गया। सचमुच पहली बार जब वह मिला था तब उनमें कितनी हमदर्दी थी। वही हमदर्दी आज उनके पथ को रोके खड़ी है—जैसे कह रही हो—कहाँ जाओगे?

उधर गहरी खाई है—चाँदी की उस दुनिया में। मेरे पास ही रहो! हम और तुम आदमी को उस खाँई से बाहर निकालेंगे ...

बाहर स्वर उठ रहा था—'नहीं बाबू, उसके कोई नहीं था, किन्तु वह बहुत भला आदमी ... ..

यह किशोरी का स्वर था। नरेश और श्यामू भी आ गए थे। नरेश ने कहा—'देर हो गई भाई! अहमद से मिलने चला गया था।'

'अभी-अभी आप ही की बात हो रही थी।' लोचन बोला।

नरेश ने देखा, यह भी एक दुनिया है। हृदय कितना विशाल होकर इस दुनिया में रहता है किन्तु गरीबी जब उस हृदय को घेर कर हुँकारती है, तब निश्छलता की साँसे फूल जाती हैं। गरीबी वह जहर है जो मनुष्य को धीरे-धीरे मरोड़ता है और ज्यों-ज्यों जहर फैलता है, मरोड़ बढ़ती जाती है। जब गरीबी का जहर मर जायेगा, तब नई जिन्दगी फूटेगी।

नरेश ने राधो की ओर देखा जो सकुचाई सी खड़ी थी। उसे वह दिन याद आ रहा था, जब पेट की पीड़ा से वह काँप उठी थी और नरेश ने उससे कहा था—'चली जाओ, मजदूरी तुम्हे मिलेगी कृतज्ञता से उसकी पलके झुक रही थीं। दीए की लौ रहती-रहती काँप जाती वह बच्चा भी तो नही रहा!' गरीबी उसे मरोड़ कर हँस पड़ी थी—वह चुड़ैल जिसके नाखूनों मे भयंकर विष रहता है!

श्यामू, राजू की ओर देख रहा था।

राजू बोला, 'सेठ जिंदा हैं किन्तु उनके जुल्म की लाश धीरे-धीरे उठ रही है।'

सब उसकी ओर देख रहे थे!

नरेश ने कहा, 'हमे साहस नही खोना है। जो आज तक

हमारे मुँह पर थूक देता था वह दूसरी ओर मुँह करके काँप रहा है। यह हमीं थे जिन्होंने उसे कँपा दिया है। अब उससे कहना है कि ओ थूकने वाले भाई, काँपो मत! हम तुम्हारा अधिकार नहीं लेंगे। हम अपना अधिकार वापस चाहते है—उसे दो और यदि नहीं दोगे तो विवश होकर हमें टकराना होगा।'

राघो ने उसकी ओर देखा और उसे लगा, कुछ वापस मिल गया है—जो नही मिला है, वह मिल जायेगा। किशोरी सोच रहा था—नरेश बाबू कितना सच कहते हैं। हम यदि काम पर चले जाते तब तो कुछ नहीं होता! वही पशुता हमारे सीने पर चढ़कर गरजती!

श्यामू को लग रहा था—यह दुनिया अब हड्डियों की नहीं रहेगी। उन हड्डियों पर मांस चढ़ेगा। वे डरावनी चिमनियाँ अब धुआँ नही सोना उगलेंगी। और आदमी उस सोने को बाँट लेगा···दूर गाँव की उस कठोर धरती से वह बीज फूटेगा, जिससे खलिहान भर जायेंगे, फूस की मरियल छायाओं में पलने वाले लोग हँसेगे· उसका बूढ़ा बापू···वह सारा गाँव····अछोर धरती · लोचन के मस्तिष्क मे एक भावना चकरा रही थी। तब · तब ये दिन नही रहेंगे·· यह कूढ़ों वाली दुनिया ·सामने बजबजाती हुई नालियाँ···

राजू उठा। उसने कहा, 'मुझे एक काम से जाना है। तुम भी चलोगे नरेश?'

नरेश ने कहा, 'हाँ मैं भी कमरे तक जाऊँगा।' और वह उठ खड़ा हुआ! उसने उन सबसे कहा, 'मै आया करूँगा राघो ···किशोरी!'

श्यामू भी उसके साथ जा रहा था। गली मे कुछ युवक मस्ती से गा रहे थे—सिनेमा के चलते गीत····

तेरे नैनों ने मारी कटारी
कि मन मोरा घायल···

मनुष्यता के पॉव डगमगा रहे थे····

गीत लय होता जा रहा था। वह भूखी बस्ती उसे अपने में खींच कर निगल जाती थी। वे तीनों बढ़ते जा रहे थे। राजू ने नरेश की ओर देखते हुए कहा, 'यह गीत वाले लोग, इनकी आत्मा—सब कुछ, कितने नीरस है। ये गा रहे है बीभत्स श्रृंगार के मचलते गीत और उस गीत से कोई दर्द झॉक रहा है।'

गीत गूॅज रहा था:—

कि मन मोरा घायल···

नरेश ने उत्तर दिया, 'यह व्यक्ति नहीं, व्यवस्था गा रही है। इसके भीतर का मनुष्य छिप गया है। दोस्त! नई व्यवस्था मे नया मनुष्य ऊपर आ जायेगा।'

श्यामू सुन रहा था। आस-पास के घरों मे कोई शराब के नशे मे भद्दी गालियॉ दे रहा था—स्त्री रोती और शराबी ऑखे निकालता, चीख उठता। कोई खॉस उठता और फेफड़ा खर्र-खर्र करके टीस उठता—फिर थूक, कफ और तपेदिक! बदबूदार कुत्तों का झुण्ड, कूड़ों के पास कुछ चाटने का सामान खोज रहा था। इन बस्तियों के मरियल कुत्ते भूॅकते नहीं रोते हैं और उन बाड़ों की तरह के घरों मे इन्सान गल-गल कर मौत के पंजों में दम तोड़ देता है।

धीरे-धीरे गंदगी हटती गई—ऐसी गंदगी जो सीधे मस्तिष्क पर चोट करती है। अब रोशनी आरंभ हो गई थी। अब उस गंदगी ने अपना चोला दिखाना आरंभ कर दिया था, जो ऊपर से सफेद होती है किन्तु अन्दर ही अन्दर जिसके हर अणु मे बजबजाती नालियॉ बहती हैं। इन बड़ी-बड़ी अट्टालिकाओं के

भीतर जहाँ का संसार प्रकाश की किरणों से नहा उठा है—मनुष्य के प्राणों की धरोहर लुट रही है। व्यापार के नाम पर मनुष्यता की छाती पर आग के अंगारे रख दिए जाते है—चोर बाजारी, लूट और पशुता के अंगारे ! तब आदमी कराहता है, व्यापार गरजता है।

प्रत्येक बड़ी सड़क पर कलकत्ते की आत्मा चीखती है—मोटरें, बसें, आदमी जिन्हे खींचता है, उन रिक्शों की घन्टियाँ, आदमी के स्वर की पीड़ा—यह सब कुछ जैसे एक हाहाकार है जिसका फफकना ऊपर तक छितराने लगता है। धनिक कहते है—यह सभ्यता है, यह नई जिन्दगी का मोहक रूप है, किन्तु इस रूप के भीतर गंदगी है, यह बर्बरता है जो सहस्रों वर्ष से इन्सान की धमनियों मे पली थी। यह सफेद रोशनी, ये ईंट-ईंट जोड़ कर ताड़ की तरह जटाएँ फैलाए इमारतें भयंकर धोखा है—इनके भीतर गरीबी हँस रही है, खिलखिला रही है और गरीबी का खिलखिलाना मानवता की हड्डियों का कटकटा उठना है ...

नरेश और राजू फुटपाथ पर चल रहे थे। पीछे श्यामू था। सड़क पर यातायात दौड़ रहा था—मशीनी यातायात, जो चलता है, गरजता है जो धरती पर ट्राम और रेलें बन कर भागता है, सागर के अछोर धरातल पर जलयान बन कर पाँव रखता है और ऊपर, बहुत ऊपर नील गगन की छाँव मे डैने फैला कर तैर उठता है।...... मोटरें दौड़ रही हैं, इन्सान दौड़ रहा है......वह रिक्शा लेकर भागने वाला इन्सान और बगल में ठीक, उसी से लग कर किसी इक्के का घोड़ा दौड़ता है......घोड़ा हाँफता है तो कोड़े बरसते हैं इन्सान हाँफता है तो रिक्शे पर बैठा हुआ तोंदियल सेठ कहता है ! जल्दी चल बे ! देर हुई तो पैसे नहीं दूँगा...... हे हे हे !

'पैसे नही मिलेंगे ?' यह सोच कर ही मनुष्य हथेली पर प्राण रख कर दौड़ रहा है।

राजू ने कहा—'उधर देखो उस रिक्शेवाले को, हॉफ रहा है और खीच रहा है। ऊपर का सेठ हँसता है, जैसे चिम्पैंजी के बड़े-बड़े दॉत निकले हों।'

नरेश ने देखा और कहने लगा—'गलती उस सेठ की उतनी नहीं है जितनी उसकी जो उसे हँसने देता है, जो उसे यह अवसर देता है कि जब कभी मै रोऊँ तुम हँसो और मेरे रक्त की हर बूँद को चाट जाओ। किन्तु वे लोग जो मनुष्य के सीने पर चढ़ कर उसकी जिन्दगी का रस पी रहे है--ये सेठ, ये सरमायादार, ये धर्म के छिछले पुजारी, ये भी दानव है। इनके विपाक्त पंजों को तोड़ ही देना होगा।'

मोटरों के हार्न घनघना रहे है।

सारी सड़क--उसके ऊपर खड़ी विशाल अट्टालिकाएँ प्रकाश से भर गई हैं। यह विज्ञान है, जो रात के काले अंधकार मे रोशनी की चादर की तरह लेट गया है। मनुष्य उसकी लपेट मे हँसता है--ऐसा प्रतीत होता है जैसे जीवन का सारा रस इस चादर के नीचे बह रहा है और मानव की बुभुक्षित आत्मा उस रस को पी जाना चाहती है--पी रही है किन्तु तृप्ति नहीं मिलती ! तृप्ति एक छलना है जो युगों से मनुष्य के हृदय मे घुमड़ रही है। ' ये मोटरें '' ये लोग यह नीली पीली रोशनी जैसे कुछ खोज रहे हैं, कुछ पाते नही और चले जा रहे हैं जैसे ये कोई स्रोत हों जो फूट पड़े है, जो बह रहे है, जो गरज रहे है, मनुष्य इस स्रोत का जीवन है। उसकी मांसल, गर्म हथेलियाँ उसकी बुद्धि के अथाह कोष मुर्दगी को प्राण देते है। तव स्थिरता चलती है,, मुर्दगी करवट बदलती है'' ' 'वही मानव अब सो

गया है'' ''मुर्दगी को प्राण देकर वह नीरव सा थम गया है और मुर्दगी की साँसें आज उसके सीने पर हुँकार रही हैं ''''' नींद टूट रही है '''मानव अब जागेगा '''उसके मन का पशु मर जायेगा और मशीन उसकी होगी' ' मशीन के भँवर मे जो जिन्दगी मृत हो गई थी फिर उसकी गर्म हथेलियों की छुवन उसे शान्त करेगी—तब सेठ नही होंगे, समाज के वे रक्तखोर जोंक नहीं होंगे जो मशीन बन गए है, जो मुर्दगी है--तब जिन्दगी होगी, वह लाली होगी जो मुर्दगी का कलेजा फाड़ कर क्षितिज तक फैल जायेगी और सोई जिन्दगी का गोरा मुखड़ा गोरे चॉद की तरह खिल उठेगा''' ''''''''

वह जगमगाती सड़क श्यामू के मन में उतर रही थी। वह प्रतिदिन ऐसी ही सड़कों से गुजरता है। नित्य यह आकर्षण इस को कॅपा देता है। वह बड़ी दूकान, जहॉ केवल घड़ियॉ हैं '''''' उसके आगे जहॉ मोटरें रुकती है, लोग उसमें घुसते है—साथ में सुन्दरियॉ होती हैं, महकती लचकती, जहॉ खाने का संसार है''

श्यामू ने देखा और नरेश से कहा—'बाबू, संतोष भैया जा रहे है।'

नरेश चौक उठा।

संतोप ? यह शब्द उसके मस्तिष्क से हृदय तक झनझना कर बज उठा।

'कहॉ ?'

श्यामू ने दिखला दिया। संतोप ही था। साथ में कोई लड़की थी जिसके ओठों की लिपस्टिक उस प्रकाश में चमक रही थी। उसकी बड़ी ऑखों की पुतलियॉ इस तरह हिलतीं जैसे वे नाच रही हों। वह हॅस रही थी और उसके सफेद दॉत झलक रहे थे। वह सचमुच सुन्दर थी। उसके शरीर मे एक खिचाव था।

संतोष हँस रहा था वह रेस्त्रॉ ही था जिसमे से वे निकल रहे थे। नरेश ने देखा संतोष के मुख पर वही चंचलता खेल रही थी जो माया के साथ रहती, जो मिसेज कौल के साथ डान्स् मे पॉव थिरकाते समय फैल जाती। वही संतोष था—संतोष मलकानी !

और नरेश ?

उसे स्वयं पर ग्लानि हुई। एक दिन उसी व्यक्ति के साथ बैठ कर उसने भी शराब ढाली थी। उसने समझा था, वह मित्र है। जीवतराम मलकानी का पुत्र—उस जीवतराम का जो डरावनी मिलों के बीच कराहने वाले कामगारों के दर्द पर हँसता है। नरेश अपने ऊपर मुस्कराया ! उन्मन, अन्दर का अणु-अणु खिलखिला पड़ा। तो यही व्यक्ति उसका मित्र है ? हड़ताल हुई। नौकरी जाने के पूर्व वह एक बार यह कहने आया था कि वह उसकी नौकरी नहीं जाने देगा ! और फिर ? जब नौकरी नही रही, जब बिना खाए वह सो जाया करता है तब—तब वह कहाँ है ? वह संतोष ! उसका मित्र !

भीतर कोई भरपूर व्यंग से अट्टहास कर उठा। संतोष मोटर मे बैठ कर चला गया। लड़की बगल मे बैठी थी ··· ···

राजू ने कहा—'नरेश, मै तो दूसरी ओर जाऊँगा।'

'अच्छा।' राजू मुड़ गया। उस विशाल जन-सागर मे राजनारायण खो गया। मोटरे भाग रही थी, रिक्शे भाग रहे थे, फुटपाथ पर चलने वाले मनुष्य भाग रहे थे—जैसे वह गुञ्जान विश्व ही भाग रहा था, दौड़ रहा था !

नरेश के मन मे कोई कील चुभ रही थी। अतीत उमड़ रहा था। वह दुनिया शराब ·· डान्सर और स्प्रिंगदार काउचे····पीछे श्यामू था—आगे भविष्य की खाइयॉ थी, मीनारे थी, गुम्बदे थीं ··· ····फूल और कांटे ··

जीवतराम का व्यक्तित्व हिल उठा। सदा से चुपचाप सड़ने वाले लोगों में इतनी शक्ति कहाँ से आ गई? कहाँ से उठा था वह बवंडर जब धरती बोल रही थी, जब कलकत्ते की सड़कों पर हड्डियों के ढाँचे दहाड़ रहे थे? कितनी बार ऐसी माँगें उठी थीं और दबा दी गई थीं। इस बार उठीं तो इस तरह शक्ति बाँध कर उठीं कि बारूद की गोलियाँ भी नहीं दबा सकीं! कामगार जीत गया, सरमायादार के पंजों को चोट पहुँची! यह सरमायादार की हार थी! यह जीवतराम का अभिमान तोड़ा गया था!

न जाने क्यों उनके हृदय में कुछ रेंगता सा लगा। जो रेंगता है वह हृदय को हिला देता है। वही भय है जो जीवतराम के मन में रेंग रहा था! तो इनकी माँगें बढ़ती जायेंगी ''अभी ये मजदूरी के लिए लड़ते हैं, कल कारखानों के लिए लड़ेंगे''' फिर ' फिर कोठी के लिए लड़ेंगे '' पूँजी की माँग करेंगे तब वे कहाँ होंगे? वे, उनके हाथ का व्यापार—ये बुदबुदों की भाँति फूट जाने वाले काले लोग हाथ से निकल जायेंगे जाल की ताँतें कट जायेंगी'''पींजरे के मजबूत सींखचे टूट जायेंगे। कैदी मुक्त होंगे—युगों से पिसते जीवन की शलाखों के बीच ढेर हो जाने वाले कैदी'''

जीवतराम का सारा शरीर काँप गया। उनके पोर-पोर में

वे दहाड़ें भर गईं। उनकी पत्नी ने कहा, 'इधर कई दिनों से क्या सोचते रहते हो ?'

जीवतराम हँस पड़े। जैसे भय पर हँसी की तह रख रहे हों। उन्होंने कहा, 'सोचता यही हूँ कि पिछली वार काम वंद हो जाने से बड़ी हानि हुई। ये मज़दूर भी दूसरों के वहकाने में खूब आ जाते है—अपढ़, गंदे !'

ममी बोलीं, 'इतनी गोली चली फिर भी ये काम पर नहीं गए। ऐसा तो कभी नहीं हुआ था।'

कभी नहीं हुआ था ? जीवतराम का भय फिर कसमसा उठा। सचमुच यह नई बात थी, पूँजीवाद का पशु इस वार मनुष्य को नही दवा सका। चोट खाकर भी मनुष्य वढ़ता गया।

जीवतराम ने भय छिपाते हुए कहा, 'अवँ ये नीच पढ़ने लगे हैं न ? इसीलिए नीची जातियों को पढ़ने का अवसर देना पाप कहा गया है। वेद शास्त्र इसके प्रमाण है।'

उन्हें कुछ संतुष्टि हुई—जैसे उन्होंने 'नीची' जातियों के विपय मे हिन्दू धर्मग्रंथों का सार कह दिया हो।

किन्तु रेखा ने कहा, 'तब का सामाजिक दर्शन वहुत ही सीमित था डैडी, नीची जाति के लोग तो अमरीका मे भी शिक्षा पाते है।'

'अमरीका मे ?' जीवतराम विचित्र ढंग से गंभीर हो उठे, जैसे अमरीका कोई नायाव जगह हो, 'वहाँ की और इस देश की क्या तुलना ? वहाँ और यहाँ मे अन्तर है। वहाँ के लोग पढ़-लिख कर यह सव नही करते। जीवन का आनंद लेते है।

रेखा बोली, 'जीवन के उसी आनंद की माँग यहाँ भी है। कुछ भी हो, गोली न चलती तो अच्छा था।'

जीवतराम ने कठोरता से कहा,—'गोली न चलती तो ये अधनंगे जानवर सब कुछ लूट लेते।'

यह जीवतराम नहीं वह 'वाद' बोल रहा था जो इनके जैसे हज़ारों लोगों मे पल कर, करोड़ों इन्सानों का जिगर चाट जाता है। यह उस आर्थिक विषमता को बल देने वाली पशुता का स्वर था जिसने मनुष्य को बीच मे डाल कर सैंडविच की तरह कच् से खा लिया है!

उनकी पत्नी ने कहा,—'यह सरकार भी तो कुछ नहीं करती। वह तो हमें ही दबाती है।'

जीवतराम बोले—'नहीं-नहीं सरकार को कुछ मत कहो। वह तो हमारे साथ है।' वे उठ गए। कहने लगे, 'सेठ लक्खीमल के यहाँ जाना है, फिर मन्दिर जाऊँगा।'

जब वे चले गए तो रेखा ने कहा—'ममी, डैडी को उन मजदूरों की मौत का कुछ भी दुख नहीं है। क्यों नहीं है ममी ?'

'चल-चल! ऐसे ही दुख होता रहे तो हो चुका' और वे उठ कर दूसरे कमरे में चली गईं।

'सन्तोष कपड़े पहन रहा था और गुनगुना रहा था—उनके वे भीगे गेसू लहराते जा रहे हैं......मुझको बुला रहे हैं! धीरे-धीरे वह नीचे की ओर उतर गया और उसकी मोटर भाग चली।

इधर कुछ दिनों से सन्तोष का दर्शन (Philosophy) लौट आया था। जब माया चली गई, मिसेज कौल खिची सी रहने लगीं तब उसने समझा था, जीवन की छाया ही उसे मिली—वह एक चोट थी जो मनुष्य को दार्शनिक बना देती है। उसे नारी से भय लगने लगा था। वह समझता दूसरा कोई भी इसी तरह खिच कर दूर हो जायेगा। यह जीवन एक धोखा है। वह उसी के जाल में उलझ गया है। नारी उस धोखे की सत्य है—और वह उससे

भागने लगा।.......पैंजी की ओर वह झुका था किन्तु वहाँ स्थान नही था। सेक्स फिर उबलता है क्योंकि सेक्स अन्तेंजात प्रवृति है, जो नहीं दब सकती ! गरीबी उस प्रवृत्ति को उभाड़ देती है, अमीरी उस प्रवृति को सहला-सहला कर आगे बढ़ाती है !

उसे लगा—जीवन धोखा नही गति है। जो इसे धोखा कहता है वह विचार करना ही नही चाहता।

नरेश का साथ छूटा। दोनों की दिशाएँ भिन्न हो गईं। किन्तु ऐश्वर्य साथ है, जीवतराम उसका अपना है ! और सन्तोप जीवत-राम से अलग है ही क्या ?—यौवन की ओर सेक्स के लिए दौड़ने वाला व्यक्ति, फिर रुक जाना—अपनी ही दौड़ पर आश्चर्य—फिर उस पिछले जीवन का अकर्पण याद आते ही उससे लिपटना, आलिगन और एक होजाना !.... 'पूँजी वह शक्ति है जो एक के हाथ मे पड़कर भयंकर बन जाती है। सामन्ती प्रथा उस पूँजी की छाया मे पली थी और बढ़ कर उसने धरती पर वह लहू बहाया जिससे इतिहास अब भी लाल है। साम्राज्यवाद उसी पूँजी का दास है ..

सन्तोप उसी पूँजी की छाया मे पला है। वह, उसकी हर साँस से निकलते स्वर को समझता है। इसीलिए अब चारो ओर मस्ती है—कुछ छलक रहा है। यह छलकती मस्ती इस नई सभ्यता की 'क्रीम' है। सन्तोप के सम्मुख विश्व का वही रूप है, जहाँ केवल मस्ती है, नारी के शरीर की ज्वाला जहाँ बढ़-बढ़ कर पास आती है, छूती है और सन्तोप आग की भाँति जल उठता है। किन्तु धीरे-धीरे वह ज्वाला फैलती है, पुरुष को अपनी लपेट मे खींच कर अट्टहास करती है और तब लगता है, पहले वह ज्वाला कितनी अपरूप थी, अब कितनी भयावह है ?

सन्तोष उस ज्वाला की लपेट में आ गया है क्योंकि पूँजी उससे लग कर, पास-पास छूती सी चल रही है—उसे बाँधे हुए, न छूट सकने वाले जाल में !!

एक गली मे उसकी मोटर रुकी। द्वार पर सूनापन था। सन्तोष अन्दर गया। वह सीढ़ियों से होता हुआ उस कमरे तक पहुँचा जहाँ से मद्धिम संगीत की लहरी बाहर आ रही थी। द्वार पर खड़ा होकर वह उस लहरी की प्रेरक उँगलियों को देखने लगा। नारी उन निर्जीव तारों पर अपनी उँगलियाँ फेर कर मादक संगीत पैदा कर रही थी। सन्तोष ने पुकारा—'सुजाता।'

उँगलियाँ थम गईं। संगीत की वह मादक ध्वनि लहर-लहर कर खो गई।

'संतोष बाबू ?' उसके ओठों पर मुस्कराहट खेल उठी। वह पास आ गई। कमरे में बिछी हुई उस कोमल कालीन पर सुजाता के वे पद चाप छुप जाते।

'आइए ! मैं तो आप का ही इन्तजार कर रही थी।' वह बोली।

संतोष ने कहा—'मेरी ही प्रतीक्षा मे यह तार झनझना रहे थे, ...? क्या कोई और नहीं आ सकता ?'

सुजाता की आँखों में क्षण भर को कोई दर्द उभरा और खो गया। उसने कहा—'आ सकता है ! मैं सबकी हूँ, इसीलिए कोई भी आ सकता है। अभी नई हूँ। केवल बड़े लोग आते हैं।'

वह हँस पड़ी। उस हँसी मे नारी के अन्तर का चीत्कार था।

संतोष उस हँसते मुखमण्डल की ओर कामुक सा देख रहा था। उन आँखों में प्यास थी, ऐसी तृष्णा थी जो कभी नहीं बुझती—बढ़ती है और अनन्त हो जाती है। पुरुष की ये आँखें

नारी के जलते यौवन को पीना चाहती हैं। गरीबी उस जलते यौवन को असंख्य पिपासित आँखों के बीच फैला देती है—वे आँखे सब कुछ घोंट जाती हैं—वह यौवन, वह जीवन !

संतोष ने कहा—'सुजाता, नाचो ! तुम्हारे स्वर से अधिक शक्ति तुम्हारे नृत्य मे है। वे थिरकते पाँव "?'

सुजाता ने उसकी ओर देखा और मुस्कराई। उस मुस्कराहट मे एक खिंचाव था। वह खिचाव इसी तरह सब पर चलता है। वे आँखें पुतलियों के बहुत भीतर रोती है, घोर पीड़ा से कराहती है और ऊपर हँसती है, इस तरह नाचती है जैसे वे झूम रही है—जैसे ऊपर जो कुछ है वही भीतर भी है—बहुत भीतर, धरातल तक, हृदय तक ! सुजाता ने घुँघरू बाँध लिए ! पाँव नाच उठे घुँघरू कह उठा—

छूम छननननन ' छन छन छन छन छन "

सुजाता नाच रही थी। उसके पाँव थिरकते। उसके अंगों की स्फूर्ति से कालीन की चिकनी सूतों-सूतों मे भी कुछ अनुभूति होती। संतोप उन अंगों मे देख रहा था—वे, जो हिल रहे थे, वे, जो झूम रहे थे ! पायल का वह कोमल स्वर झन-झन करके द्वार तक फैल जाता। सब कुछ कितना मादक था। संतोप की नस-नस मे बिज़ली भर रही थी। नारी का वह रूप उसकी आँखों में भर उठा था और उसके भीतर का पुरुप उस रूप का स्पर्श चाहता ···मादक, मधुर आलिंगन, जब वे फूलते, उभरे हुए सीने के दो गोरे चाँद उससे लग जायेंगे '

पायल की ध्वनि रुक गई। वे झूमते पाँव थम कर शिथिल पड़ गए। उन श्लथ अगों में भी एक लहर थी—एक मधुज्वाल थी, जो संतोष के मन पर छा जाती !

संतोष ने उसे सामने बैठाते हुए कहा—'तुम नाचती हो तो

मैं झूमता हूँ। जिन्दगी कितनी हसीन है सुजाता ! तुम मेरी उस जिन्दगी की साँस हो।'

सुजाता हाँफ रही थी। नृत्य ने उसके हर अंग को हिला दिया था। उसने कहा—'हाँ जिन्दगी बड़ी हसीन है। यह नाचना, मुस्कराना—क्यों संतोष बाबू ?' और वह धीमी हँसी हँस पड़ी !

'और जो कहते हैं, जीवन एक धोखा है, एक जाल है जिससे बाहर आना चाहिए, वे कितने झूठे हैं।' संतोष जीवन के रूप पर मुग्ध था—जीवन जो नारी का भभकता सौन्दर्य है !

सुजाता ठीक सामने बैठी थी। उसकी आँखों की अबोध पीड़ा बाहर आ रही थी। उसने हँस कर कहा—'और जो कहते हैं, जीवन सुख की अनटूटी कड़ी है, वे कितने सच्चे हैं ? सन्तोष बाबू ! मुझे इस बन्धन मे बँधे कितने कम दिन बीते पर लगता है, मै मनुष्य नहीं अभिशाप हूँ। फिर भी जीवन से मुझे प्रेम है और यदि ऐसा नहीं होता तो मै यहाँ नहीं आती। इन पाँवों की रुनझुन तब कौन सुन पाता और कौन मेरे पास ही आता ?'

वह मौन हो गई। हृदय का फूटता स्रोत रुक गया। जैसे वह सामने के पहाड़ से टकरा गया हो। पहाड़ पत्थर है और मनुष्य के भीतर का पत्थर जो हिलता है, काँपता है।

सन्तोष ने उसके हाथों को अपने हाथों मे लेकर दबा दिया। वह नारी का रूप देख कर उबल रहा था। वेश्या की वे बातें एक बार उसके अन्तर से टकराईं और वह मुस्करा उठा। पशु का भीतरी आकार नारी की परवशता को दबोच कर कह उठा—'तो तुम्हे इस जिन्दगी से सन्तोष नहीं ? सुजाता ! मेरी रानी, मै तुम्हें वैभव के उस महल पर छोड़ दूँगा जहाँ की हर ईंट से ऐश्वर्य की गन्ध आती है।'

दस-दस रुपए के अनेक नोट उसने वेश्या के हाथों में भर दिए। वह काँपी और मुस्करा उठी। यही रुपया ही तो है जिसने उसे विवश किया कि वह पशु की उन बाहों से लिपट जाय, जिसके रोंए भी काँटे जैसे होते हैं। जीवन की आग जो बुझ नहीं सकी, अर्थ की शून्यता में लाल-लाल होकर भभक उठी। वही जीवन तो निष्प्राण सा हाँफ रहा था.....जब वह यहाँ आई और रुपया उसके पाँव चूम कर उसकी जवानी से टकरा उठा तब उसे जिन्दगी मिली! वह जीवन जो यौवन है। जब तक यौवन है, पुरुष अपनी लोलुप आँखों में एक प्यास लेकर आता है। जब यौवन नहीं होगा, तब... "तब ? इन्तजार बाई को कौन पूछता है ? .. वह मर रही है... 'कहते हैं—अपनी जवानी में वह एक आग थी। पुरुष उस आग से खेलता था! अब इन्तजार बाई राख है—वह आग जो बुझकर राख हो गई है ...और वह भी तो एक दिन.. सारा शरीर झनझना उठा! लगा, यह धरती हिल रही है और कोई उसे मसल रहा है। उसकी माँसल हथेलियों में एक स्पर्श का अनुभव ही उसे जलते हुए अंगारे सा लगा जो उसे अपने साथ ही बुझा देगा ..शीतल, निष्प्राण... .... मुरझ गया ..

'नहीं नहीं, मैं नहीं लूँगी।' उसने रुपये सन्तोष के हाथ में रख दिये—'सन्तोष बाबू, आज तक मैं रुपए ही लेती रही! मैंने अपनेको बेच दिया है। मैंने मनुष्यता को बेच कर दानव का विष खरीदा है बाबू। मैं तड़प रही हूँ। मुझे प्यार नहीं मिला। मुझे लोगों ने क्षणिक आनन्द के लिए नचाया है, अपने सीने से लपेट लिया है। मैं लोगों के साथ सोई हूँ। हर एक आदमी यही समझता है मैं उसकी हूँ। मैं किसी की नहीं हूँ...... अपनी भी नहीं......'

वह बोल नहीं सकी।

सन्तोष घबड़ाया सा देख रहा था। उसने कभी उसे ऐसी दशा में नहीं देखा था। उसका कोमलतम भाग छू गया था। नारी की वह कोमलता जो प्यार न पाकर दूसरों की भूख बन गई थी, छलक आई! वेश्या अपने को भूल गई थी। सामने पड़े कागज के नोट जो वेश्या की आँखों में सदा नाच-नाच उठते, आज अर्थहीन से कालीन के सूतों में सो रहे थे। वे आँखें निर्मल सी अपने व्यक्ति को खोल कर कुछ कह रही थीं जो एक निर्मम कहानी है, जो नारी के अन्तर में युगों से घुट-घुट कर जी रही है.....

सन्तोष ने उसका हाथ पकड़ कर कहा—'तुम कैसी बातें कर रही हो, सुजाता? तुम भूल रही हो कि जीवन एक पलक का झपना है। इसमें किसी भी वस्तु के लिए तड़पना धोखा है।'

सुजाता ने अपने हाथ हटाए नहीं। वह न हँसी, न उसने आँखों को घुमाया। वह निश्छल सी देख रही थी। उसने कहा, 'अभी तुम कह रहे थे, जीवन सब कुछ है। अब कहते हो इसके लिए तड़पना धोखा है। तुम नहीं समझ सकते संतोष बाबू कि मेरे दिल मे कितना तूफान उठता है और दब जाता है। तुम दौलत के स्वामी हो और मै तुम्हारी आँखों मे एक नाचने वाली—जो न तड़प सकती हूँ, न प्यार कर सकती हूँ।'

संतोष ने उसकी ओर सतृष्ण नेत्रों से देखा। वह हँस नहीं रही थी। वह श्लथ, टूटी हुई सी, पुरुष के सम्मुख अन्दर की पीड़ा से छटपटा उठी थी। संतोष ने उसे अपनी बाहों में खींच लिया। शिथिल सुजाता ने उसे समर्पण कर दिया। कमरे की नीरवता भयंकर हो उठी। जहाँ अभी नूपुर की रुनझुन गूँज

रही थी, गोरे-गोरे पॉव मचल रहे थे—अब एक शून्यता भर उठी थी।

संतोष ने उसके अधरों पर अपने अधर रख दिए और कहने लगा, 'तुम प्यार के लिए तड़प रही हो सुजाता ? मैं तुम्हे प्यार दूँगा।'

सुजाता मुस्कराई। संतोप बोला, 'अब पीऊँगा ! जानती हो शराब मे कितनी मस्ती होती है ! मै पीऊँगा और तुम भी।'

··· अंग्रेजी शराब की गंध से कमरा भर उठा। संतोप पी रहा था। वेश्या अपनी मादक ॅगलियों से शराब की प्याली संतोप के अधरों तक ले जाती। वह पी लेता। उसने मदिरा की प्याली सुजाता के ओठों से छुला दिया। वे ओंठ, वह शराब, कॉपती हुई संतोप की वे उॅगलियाँ जैसे सब कुछ निर्मम सत्य थे और उस सत्य मे सब कुछ बह रहा था—नीचे का उठने वाला जनरव, चीखे और हाहाकार ! इस मंजिल मे एक दुनिया थी। जो झूम रही थी—पुरुप में, नारी मे ! वहाँ नारी वेश्या थी और पुरुप कामुक पशु। वेश्या फिर खिलखिला रही थी, ऑखों को नचा कर हॅस रही थी, पुरुष उन हॅसती ऑखों मे मधु देख रहा था।' ·· सड़कों की कठोर धरती पर कामगार चल रहे थे, दफ्तरों मे हड्डियों की दुर्बल काया लिए मानवता खॉस-खॉस उठती। कार-खानों का दानवी शरीर हुँकार उठता, मजदूर बोझों से दबता और कराहता। संकरी गलियों के भीतर नालियों से लगे मकानों में स्त्रियाँ जिंदगी का ज़हर चुपचाप निगल जाती। और इधर इस मंजिल मे, इसी तरह के सैकड़ों मंजिलों मे शराब ढलती, आलिंगन होते, अधरों से अधर कस जाते।

·· संतोष का स्वर लड़खड़ा रहा था। मदिरा अब बोलने

लगी थी—'तुम सुजाता ? मेरी रानी?""तुम तड़प रही हो?""
तुम्हे प्यार चाहिए ?" प्यार एक सपना है। मुझे प्यार नहीं
मिला" मै भी उसी का भूखा हूँ मेरा एक दोस्त था" वह भी
कभी-कभी दार्शनिक बन जाता" उसने हड़ताल करा दी""
उसकी नौकरी छूट गई। वह मेरे ही कारखाने में था हड़ताल
अपराध है वह हमसे टकराया था हा हा हा हा" और ढालो
सुजाता ! तुम्हारे हाथों में शराब कितनी मोठी हो जाती है"
सुजाता आ आ आ "

सुजाता ने कहा, 'अब मत पीओ संतोष बाबू। बेहोश हो
जाओगे।'

'क्या कह रही हो ? शराब मेरी जिंदगी है" जब तक मेरे
पास धन है—तब तक शराब है, तुम हो, यह जिंदगी है।
जिंदगी कितनी मीठी होती है ? मेरी रानी""बोलो बोलो।'

उसने अपने दोनो हाथ सुजाता के गले में डाल दिए। वह भी
नशे मे थी—खिलखिला पड़ी। संतोष मलकानी कहता जा रहा
था—जिंदगी तीन चीजों से बनती है"नारी शराब" और
रुपया" रुपया सब कुछ है—उसी से नारी मिलती है" शराब
आती है" वह जिंदगी है

जीवतराम की मिलों के भीतर व्यापार गरज रहा था—
इन्सान के सीने पर, सँकरी गलियों मे बजबजाते कीड़े थे, आदमी
था और वेश्या की देह से लिपटा हुआ संतोष कह रहा था—यही
जिंदगी है "" जिंदगी""ढालो" मेरी रानी और" और""
और""""

नरेश को एक प्रेस मे काम मिल गया था। जीवन का व्यंग हहर हहर कर मौन हो गया। वे दिन जब समाज उसे भय की दृष्टि से घूरता—क्योंकि वह जेल की शलाखे देख चुका था—धीरे-धीरे पिघल गए जैसे परिस्थितियाँ ऊपर से गरजने वाली समूह हैं और भीतर सब कुछ खोखला है। जो इनके स्वर से काँपता है, वह उस खोखलेपन से भय खाता है, जो कुछ नहीं होता, जो धुये का महल है। किन्तु उसने उसी समय जीवन का विष भी देखा था। मनुष्य का वह रूप भी वह भरपूर समझ सका था जहाँ सब कुछ अपरूप और जीवन्त ही नहीं होता वरन भयावना होता है—दूसरे के दर्द पर इन्सान हँसता है और गरीब भिखमंगे के मुँह पर थूक दिया जाता है। यह एक सत्य था जो उसके सम्मुख आया था।.... ये कटु अनुभव मील के ऐसे पत्थर थे जहाँ राही अपने पथ की दूरी आँकता है, जहाँ बीती यातनायें गल कर शून्य हो जाती है और आगे के लिए चेतना के पंख फड़फड़ा उठते है!

जब वह प्रेस से लौटता तो सूना-सूना सा जैसे कलकत्ते की गुञ्जान बस्तियों मे गूँज-गूँज कर कोई सूनापन फैला देता और वह उस सूनेपन की छाया मे पल रहा था। उस जीवन के दो छोर थे—एक को श्यामू अपने मे बाँध कर मनुष्यत्व की तीव्र अनुभूति देता, दूसरे को उन बदबूदार बस्तियों के ढाँचे अपने में खींच रहे थे, जिनमे जिन्दगी हाँफती हैं और जहाँ के लिए

उसने सरमायादारों से विद्रोह किया था—उन सरमायादारों से जिन्होंने अवसर पाकर मानवता को बर्बरता का ऐसा चोला पहनाया है जिसके भीतर वह छटपटाती है, उसका दम टूट रहा है, उसके चारो ओर भयानक बेचैनी की खॉई है।

कोलाहल से भरी सड़कों पर से जब वह गुजरता तो उसे लगता कि मानवता दो टुकड़ों मे बॉट दी गई है। एक ओर लाल-लाल अधरों की मुस्कानें हैं, प्यार है, वैभव है, लचक-लचक उठने वाली जिन्दगी है, दूसरी ओर खून की कय करने वाले फेफड़े हैं, नैराश्य है, भूखापन है, कॉप-कॉप उठने वाला आदमी है! एक के पास जो महाकोष होता है उसे ऐश्वर्य कहते हैं, दूसरे के पास जो धरोहर होती है उसे गरीबी के नाम से पुकारते हैं।

कभी-कभी उसके मन मे एक टीस उठती। जब कभी वह देखता कि सड़कों पर हाथ मे हाथ डाले हॅसते हुए युग्म गुजर रहे हैं, कोई युवती मोटर के साथी से कुछ कह रही है और पुरुष उन ऑखों मे प्यार भर कर उत्तर देता है तो उसे चुभा देने वाली एकाकी जिन्दगी का आभास होता। आस-पास, दूर-दूर तक कोई नहीं था जिसके मन मे वह अपने मन का प्यार उड़ेल देता। सब कुछ सूखा सा चल रहा था—शून्य की भॉति। किन्तु वह टपकती हुई टीस दब जाती, जब वह देखता कि आदमी भूखा है, उसकी जिन्दगी चारो ओर चूसी जा रही है! सड़े हुए अनेक पुराने विश्वास उसे लपेट कर सो गए हैं ......

इन सारी स्थितियों से वह द्रोह कर रहा था। वह प्रणाली जो भेद को बल देती है, उसके विद्रोह की मूल थी।

... उलझनों मे, खोया-खोया वह प्रेस से लौट रहा था। सूर्य्य अपनी तीव्र किरणों से कलकत्ते की इमारतों पर चमक उठता। सुबह का काम करके वह वापस आ रहा था।........

भिखमंगों का समूह हाथ फैला कर जिन्दगी की मॉग कर रहा था।....'कोई कहता—'चलो, हटो धोखेबाज, तुम भिखमंगे आदमी नहीं होते।'...कोई भगवान की 'कृपा' के लिए दो पैसे डाल देता। मोटर से उतरने वाले लोग गम्भीरतापूर्वक दूकानों में चले जाते।

... मनुष्यता चीखती है'' ....'बाबू दो पैसे दे दो' .... ' तुम्हारे बच्चे अच्छे रहे ' तुम सुखी रहो,—पशुता घृणा से देख कर उस पुकार पर उबलती है'' '''और उधर कोई दफ्तर का बाबू चीखता है ...'मेरी जेब कट गई'''...मेरी सारी पूँजी लुट गई, मै लुट गया '' हाय हाय! '' '' हृदय रो पड़ता है, ऑखे भर आती है.......

यह हर दिन होता है।

नरेश बढ़ता जा रहा था कि किसी ने उसके कंधे पर हाथ रख दिया। वह चौक कर घूम पड़ा--'प्रोफेसर खेम-राज ?'

वह कौतूहल से प्रोफेसर की ओर देखने लगा।

प्रोफेसर ने कहा—'कालेज से आ रहा हूँ, दोस्त! और यदि आज जल्दी न चला होता तो शायद नरेश से कभी भेट होती या नही, कौन जाने ? छः महीने हुए और आज अचानक तुम मिल गए हो ?'

नरेश हॅस पड़ा—जैसे उमड़ते हुए दर्द को दबा रहा हो। उसने कहा—'क्या करूॅ प्रोफेसर! परिस्थितियॉ ही कुछ ऐसी थी कि नही मिल सका। और सब लोग तो ठीक है ?'

जैसे प्रश्न प्रोफेसर तक नही पहुॅचा। उसने नरेश का हाथ पकड़ कर कहा—'आज तुम्हे मेरे घर चलना होगा। जब तुम जेल मे थे और संतोष का सम्बन्ध-सूत्र टूट गया था तब भी मैं

कुछ ऐसी ही परिस्थितियों के बीच से गुजर रहा था, जिन्होंने मेरे जीवन की दिशा बदल दी !'

वह मौन हो गया। फुटपाथ पर फैलता हुआ प्रकाश चमक रहा था और जनरव इतना अधिक हो गया था कि लगता, प्रकाश की हर एक किरण बोल रही है और उस बोल में कुछ ऐसा है जो गरीबी का हाहाकार है, जो तंग होकर ऐंठ रहा है।

नरेश ने कहा—'आज रहने दो ! फिर किसी दिन आऊँगा।'

'नहीं-नहीं' प्रोफेसर ने कहा—'तुम्हें चलना ही होगा ! कौन जाने तुम कब मिलोगे ? इतने दिनों बाद तो आज मिल गए हो।'

नरेश ने एक बार दूर-दूर तक फैले हुए सूर्य के उस प्रकाश में आँखें गड़ाते हुए कहा—'अच्छा, चलो।' प्रोफेसर ने कहा—'रिक्शा कर लूँ ?'

'नहीं !' नरेश बोला—'ये पाँव अब पत्थर हो गए हैं। ये इन्सान के सीने पर नहीं चढ़ सकते। और कितनी दूर है ही ?'

फुटपाथ पर वे दोनों बढ़ रहे थे। बीच की सड़क पर यातायात चलते और सूर्य्य के चमकीले प्रकाश में तैरने वाला अनन्त जनसमूह ऐसा लगता, जैसे रोशनी की गोद में मानवता सरक रही हो। मौन चलने वाले आदमी के भीतर फफक-फफक कर कुछ रो रहा था। वह इन्सानियत थी जो इतनी रोशनी में लिपटे रहने पर भी, रास्ता टटोल रही थी.... ...

नरेश ने प्रोफेसर से कहा—'एक बात पूछूँ ?'

'क्या ?'

'पैजी ?'

प्रोफेसर के मुख पर एक गहरी वेदना भर उठी। वह मौन हो रहा।

नरेश ने फिर पूछा—'बोलते क्यों नहीं ?'

खेमराज ने उदासीन सा हो कहा—'क्या बोलूँ ? यह न पूछते तो अच्छा था। तुमने जीवन के वे दिन कुरेद दिए हैं जिसे याद करके ही व्यक्ति काँप उठता है। जब तुम जेल में थे, छः महीने हुए, पैजी ने एक पारसी से शादी कर ली। अब वह दिल्ली मे रहती है। समय इस तरह चक्कर काटता है दोस्त। वे दिन जो मादक से छलक पड़ते न जाने कहाँ खो गए। वह पैजी अब सपना हो गई, वह झनझना देने वाली दुनिया उमस-उमस कर इस तरह सो गई कि उसे कोई नही जगा सकता।'

नरेश ने उसकी ओर देखा। एक मलिन छाया प्रोफेसर खेमराज के मुख पर रेंग रही थी। सचमुच बीते हुए दिन वे टूट गए सपने है 'जो कभी नहीं जुड़ेंगे। आदमी उन सपनों की याद मे रोता है, मचलता है, काँप-काँप जाता है।

घर पहुँचते ही प्रोफेसर ने माधुरी को अंदर से बुलाया। माधुरी ने देखा, प्रोफेसर एक व्यक्ति के साथ बैठे है।

नरेश ने प्रणाम किया। माधुरी ने उत्तर मे हाथ जोड़ दिए और मौन सी खड़ी रही।

खेमराज ने कहा, 'ये नरेश हैं। कुछ दिन पहले तो उस रोमान्सिक जगत के ये प्राण थे जो संतोष, पैजी और उसके पहले माया आदि से भरा था।'

माधुरी ने नरेश की ओर परिचित आँखों से देखा। इस परिचय के पूर्व भी वह नरेश के विषय मे सुन चुकी थी। उसने कहा—'मैंने आप के विषय मे सुना था। और जब कानपुर गई तो नीली भी कह रही थी।'

'नीली ?' नरेश अचानक चौक पड़ा। कितने ही सजल क्षण मस्तिष्क के हर कोर मे अचकचा कर जाग उठे। दो अक्षरों के भीतर से झाँकने वाले मुख की सारी रेखाएँ सामने खड़ी हो

गई। उन रेखाओं में वह गॉव उभरने लगा—छोटे-छोटे फूस के घर, टेढ़ी-मेढ़ी पगडण्डियाँ और कॉपने वाले सॉय-सॉय करते वृक्ष जिनके आस-पास उसकी जिंदगी ने चलना सीखा था""वही घर जहाँ पिता कहते थे कि लोहे के पुल से भूत नहीं रेल दौड़ती है""मॉ ?"" वह नीली ? जब वे दोनों एक दूसरे के इतना पास रहना चाहते जैसे आपस में मिल गई मिट्टी की पर्ते जो कभी नहीं छूट सकतीं, कभी नहीं—किन्तु वह सब कहाँ हुआ ?""वह सब छलना थी, एक ऐसी मृगतृष्णा थी जो आँखों मे नाच-नाच कर अधरों के उस पार नहीं उतरी, नही बुझी—आज वह एक नंगी डाल की तरह फैला हुआ है और नीली के बच्चे हैं"" परिवार है""

माधुरी ने कहा, 'आप सोचने क्या लगे ? मुझे याद है जब वह आप के विषय मे बात करती, तो बड़ी गंभीर सी, चिन्तित, जैसे कुछ याद कर रही हो। उस समय मै कुछ भी नहीं समझ सकी थी किन्तु आज देखती हूँ कि रहस्य खुल गया है।' वह हँसी। प्रोफेसर हँस पड़ा। नरेश भी मुस्कराने का प्रयत्न करने लगा। माधुरी का वह परिहास उसके हृदय में भर कर फैल गया। 'रहस्य' की बात से उसे पीड़ा हुई। वह आकर्षण—पास रहने की वह मदिर पिपासा जो आग सी अंतस् मे जल उठती है, जो कभी पूरी नही होती, एक रहस्य बन जाती है और उसकी एकमात्र स्मृति ही भयंकर अग्निकुण्ड की भॉति जलती है निरन्तर, निर्विकार !

वह प्रयत्न करने पर भी अपने को छिपा न सका। बोला, 'कुछ भी रहस्य नही है। मै और वह बचपन के साथी हैं, इसीलिए यह खिचाव है। और कुछ भी नहीं मिसेज खेम।'

'मै आप पर विश्वास करती हूँ' माधुरी ने गंभीरता से कहा।

फिर कहने लगी, 'आज आप को यहीं खाना होगा।' फिर वह अंदर चली गई।

प्रोफेसर कहने लगा, 'पैंजी चली गई। मैंने धीरे-धीरे देखा कि मै अपने रास्ते से इतनी दूर निकल आया हूँ कि सोच कर ही भय लगता है किन्तु उस भूले हुए पथिक की भाँति, जो गलत रास्ते पर अपने को देखकर साहस नही खोता, मै फिर लौटा और मुझे माधुरी मिली। मैं माधुरी से नहीं मिलता यदि 'वह' इस तरह न चली गई होती। उसका जाना विजली का एक ऐसा शाक था जिसने मेरी धमनियों का रक्त जमा दिया और जब मुझे होश आया तो मैंने देखा, ऐसी मासूम आँखे मुझे देख रही हैं जिनमें मेरे ही कारण आँसुओं का विराट सागर मचला करता था। वे आँखें माधुरी की थीं।'

नरेश प्रशान्त सा सुन रहा था। खेमराज उन्मन हो गया था।

नरेश ने कहा, 'तुम्हारी इस घटना मे चाहे और कुछ भी न हो किन्तु इतना तो है ही कि ऐसी नारी की वेदना को तुम कम कर सके हो जो सामाजिक संस्कारों के कारण तुम्हे ही अपना सर्वस्व समझती रही है। मैं इसे घटना ही कहता हूँ क्योंकि इसमें स्थैर्य नहीं था—पैंजी की ओर तुम झुके और वह तुम्हे छोड़ कर चली गई। पाश्चात्य सभ्यता का अधकचरा प्रभाव हमारे समाज पर कितना अच्छा पड़ता रहा है, यह हम सभी देख रहे है और तुम्हारी यह घटना उसी सभ्यता से प्रेरित नारी से सम्बन्धित थी। इसलिए कि वह समाप्त हो गई, उसे भूलने का प्रयत्न करो। यह उस चलचित्र की भाँति है जो हमारे ही जीवन से लिया गया होता है किन्तु जब वह गुजर जाता है, उसके कुछ दिनों बाद, हमी उसे हैकनीड (पिटा हुआ) कह कर नही देखना चाहते!'

खेमराज मौन सा उसकी ओर देख रहा था। नरेश से मिल कर आज उसे बड़ी निकटता का अनुभव हो रहा था।

नरेश ने फिर कहा—'किन्तु खेम क्या तुम समझते हो इसमें पैंजी का ही सारा दोष है ? क्या केवल वही तुम्हारे हृदय में गहरी ठेस देने की एकमात्र कारण है ?'

प्रोफेसर अनजान सा बोला—'तुम कहना क्या चाहते हो ?'

'कुछ ऐसी बात नहीं' नरेश ने कहा—'जो तुम नहीं जानते। यदि तुम सारा दोष पैंजी के सिर पर ही रखते हो तो यह भूल होगी। युगों से घने अन्धकार में बलपूर्वक दबाई गई नारी यदि आज पश्चिम से मुक्ति का वह रूप ग्रहण करना चाहती है तो इसमें उसका दोष ही क्या ? जो बन्धनों के बीच में दम तोड़ रहा था, उनके टूटने पर नई आस से नए सपने बनाना चाहता है। यह नारी के बन्धन के बाद की मुक्ति है जो हमारे संस्कारों के कारण लगता है, अपनी सीमा पार कर गई है। इस बदबूदार समाज के शब्दों में 'हिन्दू' नारी का यह रूप घोर अपराध है। किन्तु ऐसा सचमुच है नहीं।'

प्रोफेसर कुछ नहीं कह सका। उसे पैंजी पर क्रोध नहीं था किन्तु विछोह की एक भावना अब भी हृदय में उठ रही थी। वह कुछ कहने ही वाला था कि माधुरी आ गई। बात का क्रम टूट गया। खेमराज के मन में विचित्र भाव भर रहे थे। एक ओर चंचल सा वह फिसल गया जीवन था जिसके छूट जाने पर दर्द का अनुभव होता और दूसरी ओर सामने की खुली हुई, जुड़ गई जीवन की एक नई कहानी थी जो अनुभूतियों और नए स्वर से भींग उठना चाहती। नरेश जैसे आज उन दोनों कहानियों का मध्यस्थ चेतन रूप था जो पिछले जीवन का नया विश्लेषण करके नए जीवन के प्रति राग भरना चाहता। एक जीवन की आत्मा

पैंजी थी जो सरक कर दूर चली गई थी। दूसरे की माधुरी थी जो भोली सी अपने नए संसार के प्रति अपरूप सी निहार रही थी।

नरेश को लग रहा था, यहाँ सब कुछ बदल गया है। यह प्रोफेसर जो नाज़नीनों के साथ मस्ती लेता आज जीवन के उस छोर तक पहुँच कर मुस्कारा रहा था—अन्तरद्वन्द्वों के बीच—जहाँ सब कुछ जो सड़ा हुआ होता है, गल कर वह जाता है।

जब तीनों खा रहे थे तो नरेश ने माधुरी से पूछा—'आप जब कानपुर मे थीं तो उमा बाबू की तबियत कैसी थी ? उनकी बीमारी तो दबी है न ?'

नीली के विषय मे पुनः सुन कर क्षण भर के लिए माधुरी सिहर उठी किन्तु संयमित स्वर मे बोली—उनका स्वास्थ्य तो बिगड़ा ही हुआ है। कभी-कभी तो बिल्कुल स्वस्थ से लगते हैं किन्तु कुछ दिनों बाद वही खाँसी, वही दुर्बलता जो उन्हे परेशान कर देती है।'

नरेश गंभीर हो गया। उसके मन मे एक गहरी कांक्षा मचलने लगी। जैसे पिछले ढहे हुए खंडहरों मे प्यार की भूखी वेदना कुछ पाना चाहती—अतृप्त सी जो समय की सबल बाहों ने अपने मे समेट कर न जाने कितनी दूर फेक दिया था। वही सब कुछ जैसे चेतन होकर करवट बदल रहा था।

वह खोया सा, अपनी ही मानसिक उलझनो मे, जब चलने लगा तो प्रोफेसर ने कहा—'फिर आना दोस्त। मै भी तुम्हारी उस कोठरी मे आऊँगा। न जाने क्यों आज तुमसे मिल कर मन की कोई छलना मर गई है।'

माधुरी बोली—'मैं पहली बार आप से मिली हूँ किन्तु मेरी इच्छा है कि आप यहाँ आया करें।'

नरेश ने हँसते हुए कहा—'अब तो आप से भेंट हो गई है। बिना कहे ही, आया करूँगा।'

*　　　*　　　*　　　*

और जब सूर्य्य की तीखी किरणें आकाश से धरती का सीना बेध देना चाहतीं वह कलकत्ते की उस जलती सड़क पर चल रहा था। जहाँ लगता है मानवता का सिर और धड़ अलग कर दिया गया है और दोनों चलते हैं—एक जलते हुए तारकोल पर सफेदपोश गरीबी के भीतर ऐंठता है और चलता है, दूसरा मोटरों की मुलायम गद्दियों पर मोटे-मोटे शीशे बन्द करके पूँजी की नकेल हाथ में लिए भागता है और बिजली के पंखों से निकलती हुई हवा में तंद्रिल सा सो जाता है। जहाँ खस की मोटी-मोटी टट्टियों पर अधनंगे नौकर हर घंटे पर उस खस को भिगोया करते हैं और मनुष्य से कहा जाता है—'ऊपर ईश्वर है और यह सब कुछ उसी की देन है.......

जब से नौकरी छूट गई, जीवन की गति में एक विशाल परिवर्तन हहर कर फैल गया है। नरेश ने सोचा था, जीवन के वे बोझिल क्षण—मादकता की रूपराशि से बोझिल—जीवन को सदा छुयेंगे, मुस्करायेंगे और वह, उस जीवन का स्वामी उस स्पर्श से पुलक उठेगा। किन्तु वह सब कुछ कहाँ रह सका? परिस्थितियों के सर्प कुन्डलियाँ बना कर फुफकार उठे और अब लगता है, पहले वे सपने यौवन की स्फूर्ति की देन थी—अब चारो ओर दूर-दूर तक आँखें गड़ाने पर न वह दुनिया है, न अधूरी साधों की फिसलती काया! अब सब कुछ कठोर है, उस पत्थर की भाँति जो टूट जाने पर भी पत्थर ही रहता है। जिंदगी नए-नए अनुभवों मे उभर रही है। उन्हीं के भीतर से जीवन का कठोर व्यंग तीखी हँसी हँस रहा है।

अपनी कोठरी में पहुँच कर वह चिन्तित सा बैठ गया। पिछले कई दिनों से उसे अपना गाँव याद आ रहा था—वह गाँव जहाँ आदमी चलता फिरता मुर्दा है, जहाँ गन्दगी के बड़े-बड़े नाखून हैं, किन्तु जहाँ वह बड़ा हुआ है, जिसकी गन्दी मिट्टी मे भी एक सोंधी-सोंधी महक है। नीली भी उसके मस्तिष्क में घूम गई। वह नारी जो गरीबी के हाथों में दबोच दी गई है, जिसकी गोरी-गोरी बाँहों मे एक खिंचाव था—वह अब कठिनाइयों के बीच पिस रही है—गन्दगी, घुटन और तपेदिक ! तपेदिक—जो आदमी को घुला-घुला कर हर अंग का रक्त पी जाती है और भयंकर स्वर फेफड़ों से बोलती है, जिन्दगी मौत की गोद से छटपटा कर छूटना चाहती है। यह सब कुछ उस नीली के साथ आ गए है और वह भी तो है उसका पति जो कारखानों के बीच मेज पर झुक-झुक कर दिन की सफेद रोशनी को भूल जाता है।

नरेश को यह सब एक भयानक सत्य लगा जो उसके चारो ओर फैल गया है। आज शिक्षित व्यक्ति भी कहता है—'चमार उठ रहे हैं, मजदूर मालिकों से टकराना चाहते हैं, किसान जमीन माँगता है। कलियुग है कलियुग। इसी कलिकाल का तुलसी ने 'रामचरितमानस' मे वर्णन किया है। वह सब ठीक उतर रहा है। भगवान ही रक्षा करे।'... ...सब कुछ मृत्यु की तरह नीरव हो गया है... मनुष्य आस भरी आँखों से भाग्य की ओर देखता है—आस बढ़ती है और बढ़ कर हिमालय बन जाती है—फिर टूटती है क्योंकि वहाँ कुछ नहीं होता, अर्रा कर छितरा जाती है ...... तब पीड़ा, कराह, भुखमरी ... अधनंगापन और पूँजीवाद के बड़े-बड़े नाखून ... ... तब जिन्दगी ढचर-ढचर, खिच-खिच करके चलती है... तब मनुष्य एक यंत्र होता है......तब

गाँवों के अधनंगे भिनभिनाते इन्सान होते हैं और यह सब कुछ एक लम्बी कहानी है……किन्तु क्रम टूटना चाहता है……कहानी समाप्त होना चाहती है……इस महा अन्धकार को चीर कर रोशनी की प्यारी किरण बाहर आना चाहती है…'वह सुबह वाली सफेद किरण जो धरती पर जब फैलती है तो सब कुछ बरबस हँस पड़ता है……वही……ऊषा के लहराते आँचल से झाँकने वाली…' नरेश की नसों में एक स्फूर्ति का अनुभव होने लगा……तभी किसी के जूतों की कठोर आवाज कोठरी तक आने लगी। सिर पर लाल साफा बाँधे और अपने जूतों की नाल बजाता हुआ डाकिया सामने आ गया !

नरेश ने उसे देखा।

डाकिया बोला, 'तार है बाबूजी'

'तार ?' नरेश के मुँह से निकल पड़ा।

'हाँ……यहाँ दस्तखत कीजिए बाबू' और उसने लिफाफा हाथ में देकर दूसरा कागज उसके सामने बढ़ा दिया। नरेश ने हस्ताक्षर किया और तारवाला अपने भारी जूतों को दबाता हुआ नीचे उतर गया।

उसने लिफाफा खोला, 'Mother's condition serious immediately start,—Shibu.

एकाएक हृदय का सारा द्वन्द्व पूरी गति से मस्तिष्क के कोरों में गरज उठा। हृदय कसमसा उठा और धमनियों मे दौड़ने वाला रक्त जैसे उबलना चाहता हो, जैसे किसी दूर के विश्व से एक ऐसा संदेश आ गया हो कि जिससे सब कुछ छिन्न हो जायेगा, सब कुछ—जीवन की वे अधूरी आशायें जो अन्दर ही अन्दर उमस-उमस कर रहती हैं, दूर, गाँव की सीमा में एकमात्र अपनी कही जाने वाली माँ जिसकी स्मृति में ही स्नेह का स्पर्श रहता। वही

माँ मृत्यु के पंजों के बीच कराह रही होगी और रोग के जहरीले पंजे अपनी नुकीली शक्ति से उसे छेद देते होंगे, और वह यहाँ है ·· बहुत दूर ···जहाँ सब कुछ तीखा सा, इतना तीखा कि स्नायु तक झनझना उठते हैं—उसे अपने में लपेटे हुये निगल जाना चाहते हैं। किन्तु कुछ भी हो, उसे जाना ही होगा। न जाने वहाँ क्या होता होगा ? गिरीश ? मेरा मासूम भाई उस परिस्थिति में क्या-क्या करता होगा ? अभी जो गाँव के सीवानों में घूम-घूम कर खेलता था—छिछली के हिलकोरों वाला खेल, वह पीड़ा से तड़पती हुई माँ के पास बैठ कर मोती जैसे कितने आँसू गिराता होगा, रोता होगा और घबड़ा कर चीख-चीख कर मुझे याद करता होगा—अपने भाई को, जो दूर-दूर रह कर उसे प्यार तक नहीं दे सका, कुछ भी नहीं—छूछा, अपनी हथेलियों का स्नेहपूर्ण काँपता स्पर्श ···

वह बेचैन सा सोचता रहा। प्रेस की नौकरी ? किन्तु माँ ? वह माँ जिससे जिन्दगी मिलती है ! आखिर वह भी छूट जायेगी और तब—तब क्या होगा ?

दिन ढल कर उतर रहा था। रोशनी की किरणें ऊपर की खिड़की से अन्दर नहीं आ रहीं थी। जब सूर्य्य नीचे चला जाता है तो न रोशनी की किरण आती है न इमारत की सूनी-सूनी जिन्दगी ही रह पाती है। कामगार दफ्तरों और कारखानों से उस इमारत में बजबजा कर भर उठते हैं।

श्यामू भी आया। आते ही उसने कहा—'यह खत डाकिया दे गया था। जब आप नहीं लौटे तो गल्ती से इसे मैं साथ लेता गया।'

और एक लिफाफा उसने नरेश के हाथ में रख दिया। नरेश अशान्त सा सोच रहा था। अभी-अभी उस तार ने उसकी मानसिक स्थिति को हिला दिया था। लिफाफा लेकर वह धीरे-धीरे उसे

खोलने लगा। जैसे लिखावट वह पहचान रहा हो। उसे कुछ याद आने लगा। उसने पत्र देखा—

प्रिय नरेश,

पिछली बार हम गाँव पर ही मिले थे। हम अब दूर हो गए हैं इसलिए दर्द की बातें ही हुई थीं। इधर विपत्तियों ने मुझे इस तरह दबोचने का प्रयत्न किया है कि मै अपना साहस खो बैठी हूँ। ये बीमार हैं! कभी-कभी तो इतना खॉसते हैं कि मै कॉप उठती हूँ और उस खॉसने के बाद कफ गिरता है—लाल और सफेद। बीमारी उभड़ आयी है। सब कुछ जैसे होम होने वाला है। चारों ओर से दुनिया, यह समाज, यह रोग और चुड़ैल की तरह मुँह फैलाए भूखी जिन्दगी मुझे खाना चाहती है—मुझ को और मेरे बच्चों को! चारों ओर जहॉ-जहॉ मैं देखती हूँ आफत ही आफत है। मै तो इस हालत से ऊब गई हूँ। अब तक पिछले जन्म के पापों का फल समझ कर मैंने सब कुछ सहन किया किन्तु अब हृदय के भीतर कुछ भी ऐसी वस्तु नहीं रह गई है जो कठिनाइयों का सामना कर सके। पापों का फल भोग रही हूँ। यह विश्वास मर गया है। निराश हो गई हूँ। इसलिए नहीं कि मेरा साहस छूट गया है वरन् इसलिए कि कहीं भी आस की कोई किरण नहीं दिखलाई पड़ती। झनझनाता अंधकार हृदय मे भर रहा है। रोग, आर्थिक स्थिति, आस-पास की बदबूदार बस्ती, यह सब मुझे चाट जायेंगे।

ये खॉस रहे हैं। छोटी बच्ची रो रही है, भूखी है, और मैं लिख रही हूँ। यह सब कुछ हृदय को दहला देता है किन्तु फिर भी मेरे मन मे केवल एक आस घुमड़ रही है और वह है कि तुम आओगे, मेरे बचपन के, मेरे मन के साथी होने के कारण, क्योंकि मेरे जीवन को रोशनी दिखलाने वाली दीए की लौ कॉप रही है

और मेरे शरीर का अणु-अणु पीड़ा की गोद में बेचैन हो रहा है—कौन जाने कब इस दीए का तेल सूख जाय और वह भक् से बुझकर सब कुछ काला अंधकार कर दे ....। —नीली

पत्र को हाथ मे लिए वह निर्जीव सा बैठा रहा। उसने अपने हाथों मे पत्र को मरोड़ा जैसे देखना चाहता हो कि यह सब सत्य है—यह पत्र, यह मुसीबतों का दुर्दम इतिहास? सब कुछ सत्य था—वह तार जिसमे माँ की भयंकर स्थिति का समाचार था, वह पत्र जिसमे उस गरीब नारी की दर्द भरी कहानी थी—नीली की—उसके अतीत के सुन्दर साथिन की। जैसे किसी भयंकर मशीन का रोलर अपने नीचे पड़ने वाली ठोस चीजों को भी चकनाचूर कर देता है, इन समाचारों ने नरेश के मस्तिष्क पर भरपूर चोट की और कलकत्ते की उस बजबजाती जिंदगी का भयावना स्वर बुरी तरह पिसकर चीख उठा।

श्यामू ने उसकी गंभीरता को देखकर डरते हुए पूछा—'कहाँ से आया है, बाबू? क्या लिखा है?'

नरेश के भीतर तूफान से यह प्रश्न टकरा गए, उसने कहा—'अभी एक आफत की खबर आई थी कि तुमने मेरी हथेली पर जलता हुआ दूसरा अंगारा रख दिया।' तार को उठाते हुए उसने कहा—'यह तार है जो गाँव से आया है और जिसमे माँ की बीमारी का भयंकर समाचार है। यह पत्र जो तुमने दिया है, नीली का है, जो मुसीबतों मे पड़ कर हाँफ रही है। माँ मर रही है और मुझे उसे देखना है, उसे बचाना है, नीली ने मुझे बुलाया है; क्योंकि कठिनाइयों के साँप अपनी जीभ लपलपा कर उसे चाट जाना चाहते है। अब बताओ क्या करूँ?'

श्यामू यह सब सुनकर काँप उठा। किन्तु धीमे स्वर में बोला—'माँ के पास पहले जाना जरूरी है। माँ फिर नहीं मिलेगी, बाबू।'

और नीली ? जिसके चारों ओर किसी चुड़ैल के नाखून बढ़े होते जा रहे हैं, जिसकी कहानी कितनी दर्दनाक है ? वहाँ न जाऊँ ? उस तपेदिकी समाज मे, उस गरीबी में, उस अंधकार में ? नहीं-नहीं, वहीं जाओ वहीं—कोई तुम्हारी राह देखता होगा। अन्तर के हर पोर से आवाज आई ! ...... वहीं......नीली के पास......नीली के

किन्तु माँ ? माँ !!! अन्तर चीख उठा, बाहर का वातावरण, बाहर की दुनिया, हर एक मुर्दा वस्तु जैसे बोल उठी माँ !!! जिसकी आँखों मे प्यार, अंतस् में प्यार, जो केवल प्यार ही प्यार है, वही छटपटा रही होगी, उसे बुढ़ापे का पिशाच पीस रहा होगा और वह यहाँ है—उसका पुत्र—जिसे हर उठती पलक में देखना चाहती होगी...... और वे आँखे मोती ढरकाती होंगी... सब कुछ गीला-गीला, दर्द से भर गया, मुर्दनी की तरह होगा... कहीं नहीं और कहीं नहीं मै माँ के पास जाऊँगा, माँ के पास जो धरती से भी बड़ी है.........

उसने श्यामू से कहा—'तुम ठीक कहते हो। मैं पहले गाँव जाऊँगा फिर कहीं और ? प्रेस जा रहा हूँ और उसके बाद ही स्टेशन चला जाऊँगा। थोड़े से कपड़े रख दो। राजू से कह देना कि मै जिन मुसीबतों के बीच यहाँ से गया, वह एक डरावने पहाड़ की तरह थी किन्तु फिर आऊँगा।'

जब वह उतर रहा था, श्यामू ने उसे रोक कर कहा—'मालिक मेरे बापू से भी मिल लेना। कितने दिन हो गए ?' उसकी आँखों के भीतर से गीला-गीला कुछ झाँक रहा था, मोती के गोले दानों जैसा, जिनमे बिछोह की अनन्त कहानी का पीड़ा कोप रहता है। वे कोश ढरक पड़े—गीली रेखाएँ बनाते.........

नरेश नीचे उतर गया। अंधकार का रूप हँसकर बिखरने

लगा था। बिजली के पीले लट्टू अपनी काया से प्रकाश की किरणें फेंक रहे थे और उन किरणों की शक्ति अंधकार का सीना फाड़कर पथ बनाती सी उसमें पैठ जाती। इमारत के नीचे सब कुछ पहले जैसा ही था—उस बदबूदार नाली और उसके पास बैठने वाली कुँजड़िनों का गंदा परिहास, चलने वाले लोगों की मनहूस शक्लें और उनके चेहरों को फाड़ते पूँजीवाद के जहरीले नाखून, वह गंदे लोग, वह कीड़ों की दुनिया ..

नरेश उन सबसे मिलकर एक हो गया था किन्तु हृदय मे एक आग जल रही थी—वह आग भभक कर कह रही थी, माँ और रतनपुर माँ...... नीली... तपेदिक की गोद के जिंदगी विताने वाली विवशता.... 'कलकत्ता गरज रहा था—मोटरों मे, चलने वाले इन्सानों मे और उन गीतों मे जो दूकानों पर गूँज उठते, फैलने लगते—धरती पर उससे लगकर, कुछ ऊपर तक, कुछ और ऊपर तक ......

नरेश जा रहा था।

शरीर के हर जोड़ में इतनी पीड़ा होती कि राजेश्वरी बेबस सी कराहतीं। गाँठों के भीतर जैसे कोई हड्डियों को दो पाटों के बीच में दबाता, कचकचा कर पीसना चाहता। वे चारपाई पर तड़पतीं। नरेश के लिए मन में एक भँवर सी उठती—क्या उससे नहीं मिल सकूँगी? क्या नहीं मिल सकूँगी? जीवन का मोह ऐसी छलना है जो सबको अपनी बाहों में बाँधता है। जब सब कुछ छूटने वाला होता है—रङ्ग का भारिल रूप, संसार के अणु-अणु का मोह ......तब दुख का सागर उबलता है........ टीस, मोह, वेदना की छेद देने वाली साँसें ....

राजेश्वरी आकुल हो जातीं। अब वे हड्डियाँ अपनी शक्ति खोती जा रही थी, जिनमें कभी बल था, जिन्हें पकड़ कर मांस-पेशियाँ लिपटी रहतीं। धीरे-धीरे मांस ने उन हड्डियों को छोड़ दिया। समय ने दहाड़ कर कहा—'चलो, मैं आ गया हूँ। तब भी मैं ही था, अब भी मैं ही हूँ।'

वे कमजोर होती गईं।

सोमा कहती—'रोओ मत माँ। नरेश भाई जरूर आयेंगे।' वे मौन सी देखतीं। मौन तोड़कर कहतीं, 'बेटा, तुम सबने मेरे साथ जितना किया, वह तो कोई अपना भी नहीं करता।'

'हम सगे नहीं हैं माँ?'

'हो। तुम दोनो हो सोमा, तुम और शिबू। मेरी बेटी'......

वे उसके हाथों को सहलाने लगतीं।

एक मंद-मंद उदास भावना कमरे की दीवारों से निकल कर फैलने लगती !

कहारिन पसली दबाने लगी। गिरीश डबडबायी आँखों से माँ की ओर देखता। उसे सब कुछ भूल गया था—तालों में छिछली का खेल वे सॉय-सॉय करते पेड़, और वे अधनगे साथी ......उसे माँ याद आ रही थी। उसके कानो मे, मन मे वह दर्द गूँज रहा था—माँ की वह छटपट.....

कमरे मे और कुछ नहीं था। केवल दर्द..... ..कराह और बुढ़ापे की वह हहरती जिंदगी .....

दूसरे दिन भोर मे जब पूरब की लाली बदल रही थी, राजेश्वरी का स्वर लड़खड़ाने लगा। उन्होंने कहा—'नरेश नहीं आया ......वह........नहीं ,आयेगा ? पानी ...... पानी दो बेटा गिरीश .....

पानी पीकर वह शान्त हो गई। आँखे झपने लगीं। कहारिन यह सब देखकर घबड़ा गई। गिरीश रोने लगा। जैसे अब सब कुछ बुझने वाला है जीवन का दिआ... काँपती लौ ...

तभी बाहर किसी के तेज पावों का स्वर गूँज उठा। उन पाँवों मे आशा और विकलता की ध्वनियाँ थीं। वह नरेश था—राजेश्वरी के बुझते दिए की अनबुझी लौ, उसका पुत्र जिसे उस मर्मांतक पीड़ा मे भी उसने सदा पुकारा।

वह अन्दर आया, तेजी से, जैसे हवा का कोई झोंका उठते हुए ज्वार को गति देकर ऊपर उठाना चाहता है किन्तु भाटा धीरे-धीरे उस गति की रीढ़ तोड़कर ज्वार को पी जाता है।

राजेश्वरी की आँखे झप गई थीं। कहारिन फफक कर रो उठी और गिरीश भी माँ को पकड़कर भयंकर क्रन्दन कर उठा। नरेश ने देखा—उसे लगा, सब कुछ बुझ गया है। उसके स्नायुओं

से जलते हुए लाल लोहे जैसी कोई वस्तु चुभने लगी। धमनियों का बहता हुआ रक्त थम कर जिंदगी का दम घोंटने लगा।

वह माँ के पाँवों तक बढ़ा। उसने पाँव छुए। गिरीश उससे लिपट गया, 'भइया, तुम आ गए; लेकिन माँ क्यों नहीं बोलतीं ?'

उसने गिरीश के सिर पर हाथ रक्खा और निष्प्राण मूर्ति सा खड़ा रहा। मौत हहर कर उस कमरे में जिंदगी के पास मड़रा रही थी।

नरेश को लगा, लाश हिल रही है। सचमुच राजेश्वरी ने आँखे खोल दी थी। उसे विश्वास नहीं हुआ किन्तु यह सच था और वह माँ से लिपट गया। गिरीश भी माँ को भींच कर रो पड़ा।

राजेश्वरी स्थिर भाषा में बोलीं—'तुम आ गए बेटा ! मैं तो समझती थी, तुमसे भेंट नहीं होगी। अब मैं जा रही हूँ। हम फिर नहीं मिलेंगे ''गिरीश ' 'नरे ''

वह उठने का प्रयत्न करने लगीं। वह मरने का प्रयत्न था। बुझने वाले दीए की अन्तिम लौ भभकती है। राजेश्वरी का सिर लुढ़क गया।

मृत्यु की खबर गाँव भर मे फैल गई। वे भी आने लगे जो जमीदारिन से घृणा करते थे। मृत्यु सब कुछ चाट जाती है—घृणा विद्वेप और संयोग की तीव्र अनुभूतियाँ। जैसे मृत्यु भी एक शक्ति है जो जिदगी की शक्ति को बढ़ाती है, जो स्वर की अनन्त कहानी को तोड़कर, जीवन का महत्त्व दूना कर देती है……

जब माँ की लाश जलने लगी तो नरेश को लग रहा था कि जिदगी का यही अन्त है—यह मरघट ! तो फिर यह सब संघर्ष क्यों है ?

यह सब कुछ झूठा है ? क्या मौत की यह लाल-लाल लपटें ही सत्य हैं और जिदगी इन लपटों में चटखने के लिए ही बनी है ?

नहीं, यह मौत सत्य नहीं है। सत्य है वह जिंदगी जो कभी भी मौत से हारी नही। सत्य है जीने की वह अमर भावना जो कभी नही मरी।

माँ का वह शरीर नही रहा किन्तु क्या उसके हृदय से माँ का वह प्यार मर सकता है। यदि नही तो जिंदगी अमर है और मौत उस जिंदगी की हार है—हार ! बुढ़ापे की लाश जल रही है और कभी-कभी उन चटखती हड्डियों का स्वर इस तरह गूँज उठता है, जैसे नदी की धारा से कुछ कह रहा हो और वह कुछ समझती है, किन्तु वह रही है अनवरत—इस तरह की अनन्त लाशों को राख होते देखकर जैसे प्रकृति का कोई नियम उसे याद हो आता है और वह प्रशान्त सी, फैली हुई दीवार सी स्थिर रहती है, मूक और भयंकर रूप से त्वरित !

सब कुछ समाप्त हो गया था। उठती हुई लाल लपटे जो फैल-फैल कर लाश को राख कर गई थीं।

घर लौटने पर नरेश को लगा, वह एकदम अकेला पड़ गया है—दूर-दूर तक फैले हुए आकाश के नीचे और फूस वाले घरों के गॉव मे। कोई वस्तु खो गई है जो दमकते सोने जैसी होती है, जो जानदार होती है, जिसे जिंदगी कहते है और वह भी ऐसी जिंदगी जो समय-समय पर स्नेह का वह कोष लुटा देती जो अपरूप है, वेजोड़ है।

घर की हर ईंट से कोई बोलने लगता—लगता, कोई हड्डियों वाले स्नेहपूर्ण हाथों से सहला रहा है। उन हाथों का स्नेह शान्ति देता, शक्ति देता किन्तु वह सब कुछ नही था—भयंकर भ्रम था। केवल भावनाओं की दौड़ थी—न जिंदगी के वे हाथ थे, न कोई सहला रहा था, न स्नेह कर रहा था। चारो ओर ठोस दीवारे थी। बाहर धरती थी और आकाश था। और वही सत्य था—

ऐसा सत्य जो टूट नहीं सकता। गिरीश था, जो रो रहा था। माँ चली गई थीं—हृदय के बिल्कुल पास तक खींच कर बाँध लेने वाली माँ। और सब कुछ सूना-सूना सा, मौत की तरह फैल कर जम गया था!

गिरीश भाई से लिपट कर कहता, 'भइया माँ अब नहीं आयेंगी क्या? माँ का क्या हुआ? तुम मुझे छोड़कर न जाना भइया नहीं तो मैं सिर पटक-पटक कर जान दे दूँगा।'

वह उसे सीने से लपेट कर कहता,—'मैं तुझे छोड़कर नहीं जाऊँगा मेरे बाबू, मेरे बच्चे!'

और वे आँखे आँसू ढरकातीं.........

*　　*　　*　　*

समय घावों को भर देता है—बाहर के और भीतर के भी। नरेश ने देखा, गिरीश फिर खेलने लगा था। वह भूलता जा रहा था मृत्यु की टीस और माँ को भी! सब कुछ इसी तरह भूल जाता है, खो जाता है। वर्त्तमान के संघर्षों और द्वन्द्वों मे कि जैसे अतीत कुछ भी नहीं था—एक साधारण घटनाओं का क्रम था जो मर गया है, इतनी दूर सरक गया है कि फिर नहीं आयेगा, फिर उठ नहीं सकता, उसकी कमर टूट गई है। भविष्य लहरता है वर्त्तमान अतीत बन जाता है। यही क्रम है जो नहीं टूटा, नहीं टूटेगा.......

मंगल बैठा था, कहने लगा, 'अब दुख न करो भइया! क्या करोगे? दुनिया का यही नियम है, मुझे ही देखो इस बुढ़ापे में श्यामू कितनी दूर है। उससे नहीं मिल पाता। कब उससे मिले बिना ही चला जाऊँगा, कौन जाने?'

उसका गला भर रहा था। मंगल सच कह रहा था किन्तु श्यामू भी तो उससे मिलने के लिए आकुल है। वह भी आते

समय उसका हाथ पकड़ कर रोया था—इसी पिता के लिए जिसे गरीबी ने इतनी जल्दी ही पस्त कर दिया और जो अब जिंदगी से ऊब गया है—खचर-खचर करने वाली जिंदगी से ।

नरेश के मन मे तूफान उठा हुआ था। वह ऐसी उलझनो के बीच दहक रहा था कि लगता, चारो ओर सब कुछ शून्य है जो मर्मर करता है और वह मर्मरता पीड़ा को जन्म देती है—हृदय उस पीड़ा के बीच बेचैन हो जाता है ।

उसने मंगल से कहा—'श्यामू भी तुम्हारे लिए व्याकुल है लेकिन नौकरी है न ! जल्दी ही आयेगा। तुम्हे कोई तकलीफ हो तो मुझसे कहना ।'

मंगल की आँखे भर आई थीं। जब कभी तकलीफ मे हमदर्दी मिलती है तो आदमी रोना चाहता है। मंगल बोला—'अभी तो बाबू तुम्हीं तकलीफ मे हो। मै अपना दुखड़ा क्या रोऊँगा ? माँ जी के चल बसने मे सबसे बड़ा सहारा खतम हो गया। अब यही रहो भइया, इसी गाँव मे। माँ-बाप की जनम-भूमि को सँभालो। यहाँ तो खूब लड़ाई चल रही है न ! बाँभन लोग ऊँचे तो है ही भइया सो ठाकुर-कायथ लोग उन्हे कुछ मानते ही नही। और वे लोग अपना अलग गुटट् बनाए है। दिन-रात यही सब होता है भइया ।'

'तो क्या चाहते हो ? मै भी इन लोगों के बीच, इन्हीं की तरह रह कर कट-मर जाऊँ। रह भी जाता श्यामू लेकिन अब लगता है, यह गाँव मेरे लिए ही कुछ नहीं रह गया ।'

तभी उसने देखा, सोमा चली आ रही थी। वह पास आ गई तो नरेश ने कहा—'आओ भाभी। बैठो, शिवू कहाँ है ?'

'वे खेत पर गए हैं ; लेकिन भाई जी इस तरह कितने दिनों

चलेगा, सुना है आप यहाँ से जा रहे हैं। गाँव का यह सब क्या होगा ?'

'भाभी !' नरेश ने बड़ी नरम आवाज में कहा—'देखना किसके लिए है ? मै हूँ और गिरीश है, यही न ! सो काम चल जायेगा। गॉव पर शिबू है, तुम हो, फिर इस घर, इन थोड़े से खेतों की मुझे क्या चिन्ता ?'

सोमा को बड़ी बेचैनी मालूम हुई। वह बोली—'अपनी धरती कौन छोड़ता है भाई जी ? क्या उसका कोई मोह नहीं होता ?'

नरेश ने एक फीकी हँसी हँस दी—'होता है। मुझे भी है। लेकिन जहॉ जन्म लिया वहीं रह कर सदा को सो जाऊँ यह भी तो ठीक नहीं। बाहर जाऊँगा ! फिर समय पड़ेगा, आ जाया करूँगा।'

'अच्छा, चलती हूँ। खाना बना रही हूँ। अब मैं क्या कहूँ जब तुम्हारी मरजी ही नहीं। खाने के लिए आ जाना जरूर।'

वह चली गई। नरेश को एक विचित्र शून्य चुभने लगा। यही सोमा भाभी है जो पिछली बार कहतीं—अब आओगे तो सिर पर मौर धरवा के छोड़ूँगी। मन मे बड़ी कचोट सी मालूम हुई। सर पर मौर नहीं तो कन्धों पर अरथी ही चढ़ गई !

मंगल चुप बैठा था। एक लम्बी सॉस लेकर बोला—'तो चले ही जाओगे भइया ! नहीं रुकोगे ?'

नरेश ने मंगल से कहा—'नही मैं यहॉ न रह सकूँगा। इसलिए नहीं कि मैं यहॉ के इस समाज से डरता हूँ बल्कि इसलिए कि पिछली कितनी बातें हर दिन मन में टीस उठा करेंगी। कहॉ रहूँगा, नहीं कह सकता। तुम श्यामू के लिए मत घबड़ाना। वह आयेगा।.......

मंगल चला गया था और एक उदासी फिर फैल गई थी—मुर्दगी की भाँति ! फिर वे दीवारें चीख उठीं—वह बीत गई बात वह जिन्दगी, जो कहीं नहीं थी। हिलती रेखाओं में खड़ी हो गई।''''''

'''''' एक दिन शाम को जब नीली की माँ आई तो उपचेतन में पैठी हुई भावना जाग उठी। एक पीड़ा को भूल जाने के प्रयत्न में दूसरी गहरी पीड़ा ने मुँह खोल दिया। वह नीली को भूल गया था। पिछले दिनों उसे सब कुछ भूल गया था, केवल माँ याद आती। नीली की माँ को देखना था कि नीली सामने खड़ी हो गई'''''' उसका वह पत्र, खाँसता हुआ उमानाथ'''''' वे मरियल बच्चे, वह गन्दी दुनिया जहाँ वह साँस लेती होगी''' जहाँ उमानाथ खून की कय करता होगा'''''' छटपटाहट, ऐंठन और मौत जहाँ जिन्दगी की देन है''''

उन्होंने कहा—'जाने दो बेटा ! कब तक उदास बैठे रहोगे ? वृद्धा थीं, चली गई। हम लोगों का कौन ठीक है ? जिन्दगी ऐसी ही चीज है बेटा। कोई नहीं जानता कब दुनिया छूट जायेगी ?'

नरेश ने जैसे बात सुनी ही नहीं। बोला—'यह बताओ, चाची कि इधर नीली का कोई पत्र आया था ? उमा बाबू की क्या दशा है ?'

वे बोलीं—'कई महीने हुए नीली का एक खत आया था। उमा बाबू की बीमारी का हाल था लेकिन इधर कोई खबर नहीं आई। न जाने उनका क्या हाल है ?'

वे बोल नहीं सकीं।

नरेश समझ गया। नीली ने माँ के पास नहीं लिखा। लिख कर करती भी क्या ? केवल माँ क्या करती ? इसीलिए उसने मेरे पास लिखा था !

नरेश को लगा, कोई कराह रहा है और उस कराह से आवाज आ रही है—मै हूँ, ओ मैं हूँ, नीली·······नीली । उसका मन घुमड़-घुमड़ कर कुछ कहना चाहता, वह चाहता कि उड़ कर उस नीली तक पहुँच जाय, जहाँ उसका पति यक्ष्मा की गोद में पड़ा होगा ।

उसने कहा—'चाची मैं कानपुर जरूर जाऊँगा—नीली के पास । तुम घबड़ाना नही ।'

चाची ने मन की सारी शुभिच्छाओं को बटोर कर कहा—'भगवान तुम्हारा भला करें बेटा । कानपुर से एक खत डाल देना ।'

जब वे चली गई तब भी नरेश बैठा रहा और उसे नीली की बड़ी-बड़ी आँखे याद आती रहीं, जो भर गई होंगी, जो झर रही होंगी !!

नीली की आँखों मे तैरती आकुल आस कहीं खो गई। कुछ झनझना कर टूटने लगा था। उसे आशा थी कि उसकी विपत्तियों का इतिहास सुन कर नरेश आयेगा और उस गलती ज़िंदगी के अंधकार मे रोशनी की कॉपती रश्मियाँ छहर कर फैल जायेगी किन्तु कुछ नही हुआ।

नरेश कहाँ आया? पन्द्रह दिनों से अधिक हो गए और आने को कौन कहे उस पत्र का छोटा सा उत्तर भी नही आया।

कभी-कभी नीली को क्रोध भी हो आता कि वह क्यों लिखने गई। क्या समझ कर उसने अपनी कठिनाइयो को नरेश के पास लिख भेजा? वह कौन था जो उसकी विपत्ति मे आता? केवल गॉव का सम्बन्ध था और वह भी 'उसे कौन याद रखता है? कौन उन टूट गए सम्बन्धों को जोड़ना चाहता है? न जाने नरेश ने क्या सोचा होगा? वह भी कैसा काम कर बैठती है। फिर भी उसे लगता, नरेश के मौन से कोई अदृश्य छाया, जो पीड़ा की है, हृदय पर रेग रही है। वह छाया नही हटती क्योंकि उसके अन्तरतम मे गहरी चोट लगी थी। जो वह सोचती थी, वह नहीं हुआ। नरेश नहीं आया। नही आया!

इधर उमानाथ पीला पड़ गया था। हड्डियाँ उभरने लगी थीं और ज़िंदगी उन हड्डियों के भीतर कॉपती हुई सी लगती। नीली पति को देखती और सिहर उठती। पिछले कई वर्षों से वह उन्हें रोगी ही देखती आ रही थी किन्तु इस बार उसे भय लगता और

उसका, इस समाज का नारी हृदय, जो युगों से पुरुष का गुलाम बन कर जीवन का बोझ ढोता रहा है, फफक कर किसी अज्ञात भावना से रो उठता। बड़े साहस से उसने अपने को उस खाँसती और बदबू करती दुनिया के भीतर बलपूर्वक हँसाया था, उस ज़हर को अनजान बन कर घोंट लिया था किन्तु धीरे-धीरे उस ज़हर से सब कुछ ऐंठने लगा था—उमानाथ, उसकी जिंदगी से जुड़े हुए वे मासूम बच्चे और वह स्वयं जो हँस कर सारी ऐंठन को पी जाना चाहती है। किन्तु अब वह भी अपने पर विश्वास खो रही थी। चारों ओर उसे अंधकार का झनझन करता भयंकर रूप फैलता हुआ लगता, जैसे वह अंधकार उसे और बढ़ कर निगल जायेगा—जिंदगी को, जिसमें कितना रस होता है, कितनी अतृप्त प्यास!

उमानाथ चारपाई पर पड़ा खाँसता। उठने का प्रयत्न करता तो लगता जिंदगी मौत की चपेट से फँस कर छूटना चाहती है। ओमू खेलता और बच्ची हाथ-पाँव फेंक कर रोती, रोगी उमानाथ ऊब जाता और क्रोध से दाँत पीस कर चीखना चाहता। उस घर की कफस में जिंदगी का दम घुट-घुट जाता और उस बदबू-दार बस्ती में तपेदिक का वह रोगी किचकिचा कर अपनी किस्मत पर रोता और कभी विवश आँखों से किसी ईश्वर को खोजता हुआ अपने को भुला देना चाहता किन्तु न भाग्य को लेकर रोने से और न ईश्वर की याद में ही सिसक उठने से दर्द कम होता—उसका दम फूलता और वह गंदा-गंदा कफ उगल देता...

उमानाथ जोर से खाँसने लगा, इतनी जोर से कि जैसे उसका दम फूल जायेगा। नीली उसकी पीठ पर हाथ फेरने लगी। धीरे-धीरे खाँसी कम हुई। उमानाथ लेट गया। उसकी

निरीह स्थिति उस घर के अणु-अणु में परिव्याप्त हो गई। शरीर श्लथ हो गया था। अन्दर के सारे अंग अपनी शक्ति छोड़ रहे थे। जिस जीवन की सक्रियता मनुष्य को प्रतिभा को तीव्र करती है वह तपेदिक धीरे-धीरे चाटने लगी थी। सड़ते हुए फेफड़ों का घाव बाहर की हवा से जब छू जाता तो उमानाथ कराह उठता। नीली घूरती सामने फैलते हुए शून्य का आकार ...

जब दर्द कम हुआ तो उमानाथ ने नीली की बाहों को पकड़ कर कहा—'न जाने क्यों नील, मेरा अपने पर से विश्वास उठता जा रहा है। यह तकलीफ और कितने दिनों तक सह सकूँगा। शरीर टूट गया है। मुझे दुख है कि जब से तुम आई मै तुम्हे कोई आराम नही दे सका। लेकिन मैं मजबूर था नीली! मै कुछ नहीं कर सकता था।'

उसका गला भर गया। गरीबी के बीच मे पिसती हुई जिदगी फफक उठी। वह मानव जो आर्थिक सर्पों के बीच मे जर्जर हो गया था, रोया!

नीली ने उसकी ओर देखा और वह कॉप उठी। क्या सच-मुच उसका संसार विनष्ट हो जायेगा? उसने अपने को सॅभालते हुए कहा, 'मुझे कोई तकलीफ नही हुई। तुम्हारे साथ मैने कभी कोई दर्द अनुभव किया हो मुझे याद नही। किन्तु तुम निराश क्यों हो रहे हो? तुम अच्छे हो जाओगे।'

'यही तो दुख है नीली कि तुमने कुछ अनुभव नहीं किया। यदि किया तो कहा नहीं। तुम्हारा चुप होकर सब कुछ पी जाना ही तो आज मेरा हृदय छेद रहा है।'

'चुप करो। अधिक मत सोचो' नीली ने बात बदल कर कहा—'राम 'बाबू कह गए थे कि आयेगे, अभी तक आए नहीं?'

उमानाथ के मुख पर एक चमक भर गई। रामचरण का नाम सुनते ही उसके हृदय में कोई बहुत कोमल स्पर्श हो उठा।

उसने कहा—'वह अवश्य आयेगा। तुम नहीं जानतीं नीली कि यह आदमी पिछले कितने वर्षों से मेरी सहायता कर रहा है। इसी ने मुझे सदा हिम्मत बँधाई है, जब से तुम आई तुम्हें कभी लगा कि यह घर का आदमी नहीं है।'

'सच, राम बाबू बड़े अच्छे हैं। जब आते हैं तो जैसे बेफिक्री का बवंडर लाते हों—हँसते है और मज़ाक तो ऐसा करते हैं कि मुर्दा आदमी भी एक बार हँस दे। उनमे जीवन है'

उमानाथ बीच ही मे बोला—'और उससे भी बढ़ कर उसमे मनुष्यता है जो सबसे ऊपर रहती है। एक बार अमलेंदु मुकर्जी कह रहा था कि यह आदमी जो शतरंज में इतना डूबा रहता है, किस तरह इतना हँसता है आश्चर्य है। किन्तु राम ने शतरंज छोड़ दी और वह गंभीर हो गया है।'

बाहर कई व्यक्तियों के पदचाप बरामदे में भर गए। नीली उठ कर जाने लगी कि रामचरण ने आते हुए कहा—'भाभी डाक्टर साहब आ रहे है और मुकर्जी हैं। तुम भी यहीं रहो न?'

उमानाथ और नीली अवाक से देखते रहे। उन्हें इसकी कोई आशा नहीं थी कि राम अपने साथ डाक्टर लायेगा।

डाक्टर आया। उसने एक बार आँगन और फिर उस नाली की ओर देखा।

उमानाथ ने बतलाया कि वह कितने दिनों से खाँसता है, कैसा कफ गिरता है, कहाँ दर्द होता है और किस तरह शाम को उसे सारी दुनिया नीरस लगने लगती है! डाक्टर ने आले से उसकी पीठ देखी, कफ का रंग देखा। उसने रोगी से कहा—

'घबड़ाइए नही, मै दवा लिख दूॅगा। लेकिन यह जगह तो आप के रहने के लिए बिल्कुल ठीक नहीं।'

उमानाथ ने 'हूॅ' किया।

बाहर आकर डाक्टर ने रामचरण और मुकर्जी से कहा-'इन्हे जल्दी ही पहाड़ ले जाइए और इस बदबूदार जगह से तो जितनी जल्दी हो बाहर ही रखिए। कानपुर की इस गंदगी मे यह बीमारी नहीं ठीक हो सकती।'

उसने नुस्खा लिखा, फीस ली और चला गया। फिर दोनों उमानाथ के पास आकर बैठ गए। उमा बोला—'राम! तुम अपने अहसानो से इतना दबा दोगे कि मुझे मरते दम तक उन्हे न भर सकने का दुख रहेगा।'

उमानाथ कृतज्ञता से भर गया था। नीली गुमसुम खड़ी थी। रामचरण मुकर्जी से बोला--'कोई ऐसा रास्ता नही निकल सकता अमलेन्दु कि उमा को पहाड़ पर ले जाया जा सके?'

नीली और उमानाथ चौक पड़े। अमलेन्दु कुछ सोचने लगा था, जैसे वह सारी स्थिति को समझ रहा हो। वह जानता था कि यहॉ जिन्दगी भस्म हो रही है। उसने आग की जलती भट्ठियों के समान खूॅखार गरीबी का किच-किच देखा था और वह जानता था कि किस प्रकार वह गरीबी अपने विकृत अंगों का प्रदर्शन कर रही है। इसीलिए रामचरण के उस प्रश्न मे उमानाथ का सारा भविष्य उसकी ऑखों मे घूम गया।

उसने कहा—'पहाड़ पर जाना जरूरी है, क्योंकि जिन्दगी को बचाना है—जिन्दगी को जिसे मै दुनिया की सबसे नायाब चीज मानता हूॅ, लेकिन कैसे? यह सोचना पड़ेगा। फिर भी मै पूरी कोशिश करूॅगा'।

रामचरण बीच ही मे बोला—'और वह कोशिश जल्दी से

जल्दी होनी चाहिए मुकर्जी। अब उमानाथ को यहाँ नहीं रक्खा जा सकता।'

नीली को लगा, यह दुनिया--गरीबी और कठिनाइयों की दुनिया--बदल रही है और उसके ऊपर, ठीक ऊपर झिलमिल करता स्नेह का ऐसा आवरण पड़ता जा रहा है कि जिसके नीचे सब कुछ छिपता जा रहा है, चाहे वह छिपना क्षणभंगुर ही क्यों न हो किन्तु उसके मन के बिल्कुल समीप तक भविष्य की सतरंगी काया है।

उमानाथ मौन न रह सका। उसने कहा--'यह सब तो सोच रहे हो तुम लोग किन्तु यह भी सोचा है कि मेरे जाने पर तुम्हारी भाभी कहाँ रहेगी और पहाड़ से यदि अच्छा होकर लौटा तो नौकरी का क्या होगा?'

'सब सोच लिया है' जैसे राम इस प्रश्न के लिए तैयार बैठा था—'यदि तुम्हें अनुचित न मालूम पड़े तो भाभी को मैं अपने गाँव पहुँचा दूँगा। मेरा घर जहाँ गरीबी तो है, लेकिन जहाँ इन्सानियत मरी नहीं है और यदि रामचरण अपना कर्त्तव्य पूरा कर सकता है तो वह उसी घर की इन्सानियत के ही कारण!'

उमानाथ मौन रहा। जैसे वह राम के उन भारों को नहीं चाहता था; उसके मन का अणु-अणु उस भार से दब कर कह रहा था—'अब नहीं मेरे दोस्त, अब अपने अहसानो का इतना भार मत रक्खो कि मैं उमस कर अपनी उन विवशताओं से मर जाऊ। मैं इन्हे नहीं लौटा सकूँगा ...... कभी नहीं '

अमलेन्दु ने कहा—'मै देखूँगा। मेरा एक साथी लखनऊ मे सरकार के चिकित्सा विभाग मे है। यदि हो सका तो वह भवाली मे प्रबन्ध करा देगा। और भवाली में भी तो बड़ी कोशिश के बाद जगह मिलती है......

उसने कठोर व्यंग से मुँह टेढ़ा कर लिया।.........

उमानाथ के मन मे एक नई आशा का जन्म हुआ। उसने देखा, रामचरण चिन्तित सा बैठा है। वह कुछ कहना चाहता था कि रामचरण ने अमलेन्दु से कहा—'जितनी जल्दी हो सके तुम यह प्रबन्ध करो और जिस दिन वह पहाड़ पर जायेंगे, केशव भाभी को मेरे गाँव पहुँचा आयेगा।'

फिर उमानाथ की ओर देख कर बोला—'नौकरी के लिए तुम चिन्ता न करो। यह जिन्दगी नौकरी से कहीं बड़ी है। इसीलिए पहले हमे इस जिन्दगी को बचाना है। और भी कठिनाइयाँ है किन्तु यदि हम उनसे घबड़ा गए तो कुछ भी नहीं कर सकेंगे। भाभी और बच्चों के तकलीफ की तुम्हें चिन्ता होगी किन्तु मै इतना ही कह सकता हूँ कि जब तक रामचरण की बाहों मे शक्ति है वह उनकी तकलीफ नहीं देख सकेगा।'

उमानाथ ने उत्तर देना चाहा किन्तु नहीं बोल सका। उसनें अपने को बहुत संयत करके कहा—'नहीं भाई! मुझे अपनी स्त्री-बच्चों की कोई चिन्ता नहीं रहेगी, जब वे तुम जैसे दोस्त के साथ रहेगे। न जाने वह कौन सा दिन था जब मुझे तुम मिले थे और इस कराहती जिन्दगी को वह सहारा मिला था जो नही टूटा, कभी नहीं टूटेगा। भाई राम, यदि तुम्हारी इस असीम देन का एक अंश भो लौटा सका तो ...

उसका स्वर भर्रा गया। वह खाँसने लगा। रामचरण ने उसे न बोलने का संकेत किया। अमलेन्दु यह सब देख रहा था। वह देख चुका था इससे भी अधिक गलते मानव की दुर्दमनीय पीड़ा किन्तु न जाने क्यों वह काँप-काँप जाता। उसे लग रहा था कि रामचरण के उस व्यक्ति मे अब भी वह मानवता जाग रही है जो कहती है, चीख-चीख कर कहती है—'ओ पिसने

वालो इन्सानो, गोरी जिन्दगी को यों ही न मर जाने दो। उसे बचाने के लिए सब कुछ करो और वह तभी बच सकेगी जब इस दिवालिए समाज का आर्थिक ढाँचा बदल दो, इस गन्दी जिन्दगी से बाहर आने के लिए उन प्रतिगामी साधनों की नींव हिला दो, जिनकी यह जिन्दगी शिकार बन गई है ......

कुछ देर बाद वे दोनों चले गए।

* * * *

एक दिन जब रामचरण, नीली और उमानाथ के पास बैठा हुआ था, अमलेन्दु तेजी से आया और कहने लगा—'मैंने सब ठीक कर दिया है। भवाली मे तुम भरती हो जाओगे और वहाँ तुम्हे सरकार की ओर से सब कुछ मिलेगा लेकिन किसी से मत कहना कि अमलेन्दु मुकर्जी ने यह सब कराया है, नहीं तो इतनी परेशानियों से किया हुआ काम भयंकर हो सकता है। मैं जा रहा हूँ। कल दर्शनपुर मे पुलिस ने हजारों मजदूरों पर इस बुरी तरह डंडे बरसाए कि स्थिति भयंकर हो उठी है। रामचरण सब प्रबन्ध कर देगा। यह चिकित्सा विभाग के मंत्री का पत्र है जो भवाली सिविल सर्जन के नाम है।'

उसने पत्र दिया और बिजली की तेजीके साथ बाहर हो गया। नीली को लगा एक लहर उठी, पास तक आई और लौट गई

रामचरण बोला—'अब देर करना ठीक नहीं है। भाभी को गाँव तक पहुँचाने के लिए केशव चला जायेगा और मैं तुम्हें संग लेकर भवाली चलूँगा। कल रात तक इस मकान के दरवाजों मे ताले लग जायेंगे। समझी भाभी ?'

उमानाथ ने यह सब सुना। उसने नीली से कहा—'सामान ठीक कर लो। केशव के साथ चली जाना।'

नीली सामान बाँध रही थी—विचारमग्न सी ! उसके

मस्तिष्क मे वह व्यक्ति घूम रहा था जिसे वह चाहती थी कि आ जाए। किन्तु वह नहीं आया। वह पीड़ा को दबा रही थी। भाव उभर रहे थे—जब ये अच्छे हो जायेगे तब शायद हम सुख से रह सके ··· नरेश नही आया—वह नरेश जिसके पास उसने अपनी दर्दनाक गाथा लिख भेजी थी।···· ऐसी है यह दुनिया—अंगारों और शोलों सी दहकती······

जब उमानाथ जाने लगा तो उसने नीली का हाथ पकड़ कर कहा—'यदि जीवित रहे तो फिर मिलेगे' और अपनी गीली आँखों से उसने छोटी बच्ची की ओर देखा, चूम लिया।

नीली का अन्तर धधक रहा था, जैसे उन दग्ध भावनाओं की सुलगन में वह जल जायेगी—जल कर राख हो जायेगी।

उमानाथ चला गया था—अपनी गलती जिन्दगी को फिर पा सकने की खोज मे। नीली चली गई थी, दूर—बहुत दूर अपने पति की छाया से परे जहाँ उसकी आँखे मवालो के किसी खाँसते इन्सान को देखने के लिए मचल-मचल उठेगी।

खलासी लाइन की वह बस्ती बदबू कर रही थी और उसके अन्दर का हाँफता मानव मौन होकर चीख रहा था, युगों से चीख पर चूसने वाले वर्ग ने थूक-थूक दिया है और उधर दर्शन-पुर की उस सड़ी बस्ती मे अमलेन्दु मुकर्जी के साथी—कामगार—रात की उस भयानक उदासी मे भी पूँजीवाद के जहरीलेपन के खिलाफ आवाज उठा रहे थे। मुर्दगी तड़प कर जाग रही थी···

नीली चली गई थी ···

नरेश अब भी नहीं आया था।

नीला आकाश आग बरसा रहा था। कानपुर का एक अंश जाग कर उन कारखानों मे खो गया था जहाँ मशीनी स्वर चीख-चीख कर आदमी का स्वर दबा देते हैं। सड़कों पर आदमी उमड़ आए थे और तारकोल की काली सड़कें इतना गलने लगी थीं कि जिन पर पाँव रखते ही इन्सान के कोमल तलवों में फफोले उभर आते किन्तु तारकोल की आग का दहकना नही रुकता, नंगे पाँव उस पर चलते क्योंकि वे मशीने गरज रही थी जो उत्पादन की माँ हैं और जिन मशीनों की विराट देह पर उन सरमायादारों के खूँरेज हाथ हैं जिन्होंने नई सभ्यता के नाम पर भोले मानव का लाल खून पी लिया है।······ कानपुर की इसी देह मे खलासी लाइन का मानव भी रहता है और जब वह भूख से कराहता है तो खूबसूरत इमारतों के अन्दर भले लोग अपनी आँखे मूँद कर नर्म-नर्म फिसलते कुशन्स पर लेट जाते हैं······

इसी बस्ती में नरेश उमानाथ का मकान खोज रहा है। गन्दगी और घनापन देखकर गिरीश का मन उबकने लगा। कहाँ वह खुला हुआ गाँव जिसमें दूर-दूर तक लम्बे खेतों का रूप है और कहाँ यह गन्दी नालियाँ और इन संकरी गलियों का बदबूदार मार्ग !

नरेश कठोरता से यह यह सब देख रहा था, जहाँ उस ऐश्वर्य की एक झलक भी नहीं मिलती जो शानदार सड़कों पर छाती खोल कर खड़ी है !

रिक्शेवाले ने रुक कर कहा—'वाबू किसी से पूछ लें। यहीं खलासी लाइन है और यही है उस वनिए की दूकान।'

नरेश ने उतर कर पास बैठी हुई कुँजड़िन से पूछा—'यहाँ कोई उमानाथ वावू रहते है जो कारखाने मे काम करते है ?'

कुँजड़िन ने मुँह वना कर पास के एक मकान की ओर संकेत कर दिया। नरेश तेजी से उस छोटे मकान के वरामदे में घुस गया। पहुँचते ही उसने जोर से उमानाथ का नाम लेकर पुकारा किन्तु वह तुमुल स्वर मकान की ईंटों से टकरा कर लौटा और उस गली मे कसे हुए व्यस्त लोगों की आवाजों के वीच खो गया। मकान खोजते हुए नरेश झुँझला उठा था। उसने और जोर से पुकारा किन्तु तभी रिक्शेवाले ने कहा—'वावू, किसे पुकार रहे हैं। मकान मे तो ताला लगा है। उस कोने वाले दरवाजे की ओर देखिए।'

क्षण भर के लिए नरेश का सारा व्यक्तित्व हिल गया। तो वे नहीं है ? नीली, उमानाथ और बच्चे ? किन्तु वे कहाँ गए ? उमानाथ का क्या हुआ ? नीली का क्या हुआ होगा ? वह कहाँ गई ? कहाँ गए वे दर्दनाक जिन्दगी के वीच तड़प उठने वाले लोग ?

एक साथ ही नरेश के मस्तिष्क मे अनेकों प्रश्न घूम-घूम कर खड़े हो गए। अव वह क्या करे ? कौन बतायेगा कि उमानाथ का क्या हुआ ? नीली कहाँ गई ?

ऊपर सूर्य्य तप रहा था, नीचे धरती का सीना गर्म था। धरती के उसी सीने पर होकर भोला इन्सान अपने जानदार पाँवों से सरक रहा था। उलझन की रेखाएँ नरेश के सम्मुख बड़ी होती जा रही थीं।

रिक्शेवाला पसीने से भीग कर सुस्ता रहा था।

गिरीश मौन था, भयभीत !

उसी क्षण हाथ मे हुक्का लिए दाढ़ीवाला वृद्ध मुसलमान सामने की मरी-मरी दीवारों से निकलता हुआ बोला—'किसे खोज रहे हो भइया ? उमा बाबू और नीली बिटिया को ?'

ऑखों में उत्सुकता का बवन्डर लिए नरेश ने पूछा—'हॉ बाबा, उन्हीं लोगों की खोज मे हूॅ। बतला सकते हो वे कहॉ गए ?'

वृद्ध बोलने लगा, 'अभी दो दिन हुए भाई वे सब यहॉ से गए हैं। उमा बाबू को तपेदिक हो गई थी न ? उनका एक दोस्त था बेटा, वही उन्हे पहाड़ पर ले गया है। इस जमाने मे भी ऐसे आदमी है जो इन्सान की तकलीफ को समझते है। दोस्त हो तो ऐसा हो। और सुना है कि नीली बिटिया को उस दोस्त ने, रामकरण या ऐसा ही कुछ नाम है, किसी साथी से अपने गॉव भेज दिया है। वह लड़की भी खूब है बेटा। इतने दिनों से मै देखता हूॅ, जिस तकलीफ में उसने गुजारा किया है, सचमुच कोई मामूली औरत होती तो खुदकुशी कर लेती लेकिन नहीं वह हिम्मत नहीं हारी और यहीं जाते वक्त उसने उमा बाबू को ढाढस बॅधाया। पीछे रोई होगी। जरूर रोई होगी। उसके दिल मे बड़ी मुहब्बत थी। खैर ! कोई.... '

वृद्ध जोर-जोर से खॉसने लगा। ऐसा लग रहा था कि जैसे उसके हाथ से हुक्का छूट जायेगा और वह लड़खड़ा कर गिर जायेगा किन्तु कुछ मिनटों के बाद जब खॉसी कम हुई, उसने कहना आरम्भ किया, '.... यह खॉसी ही तो जान लेने पर तुली हुई है। न जाने यह दमा कब पिंड छोड़ेगा ? यह जिदगी भी क्या हुई कि मौत का खिलौना हो गई ! सचमुच बेटा गरीबी ही इन सबकी जड़ मे है। हम इन्सान न हुए नाली के कीड़े हो

गए। गरीबों की कौन सुनता है ! सुना है दर्शनपुरवा में मजदूरों पर खूब डंडे बरसाए गए.......

नरेश ने उसे बीच में ही रोकते हुए कहा, 'सुनिए, उमा बाबू के दोस्त का घर आप जानते हैं ?'

उसने उत्तर दिया, 'नहीं मैं नहीं जानता और उससे भेंट भी कहाँ होगी ! वह तो भुवाली गया है, भुवाली—जहाँ तपेदिक के मरीज रहते हैं....

नरेश रिक्शे तक लौट आया। रिक्शेवाले से कहा—'स्टेशन वापस चलो !'

क्षण भर को रिक्शावाला चौंका किन्तु वास्तविक स्थिति समझ कर रिक्शा खींचने लगा।...खलासी लाइन के गंदे इन्सान धीरे-धीरे पीछे छूटने लगे और आगे वे बड़ी-बड़ी सड़कें आईं जिनके दोनों किनारों पर ऊँची इमारतें सीना तान कर खड़ी होती गई हैं। इन विराट् इमारतों के भीतर अमीरी का खूँखार पिशाच खड़ा है और वह इसीलिए खूँखार है कि वह मासूम इन्सानों की मेहनत पर थूक देता है, तब गरीबी के भयावने डैने फड़फड़ा कर खुल जाते हैं और वे मासूम इन्सान उस खूँखार पिशाच के नीचे हाँफते हैं, छटपटाते हैं और हिन्दुओं की उन देवमूर्त्तियों की तरह चुप हो जाते हैं जिन्हें ऊपर के बरसने वाले पत्थरी ओले भी नहीं हिला पाते...किन्तु नहीं, वे इन्सान हिलते हैं, करवट बदलते हैं.......

नरेश उन्मन हो गया था। नीली से न मिलने का उसे असीम दुख था। वह लौट रहा था। उसे कुंजड़िन और वृद्ध मुसलमान मिले थे जो उस गंदगी के भीतर जीवन से ऊब गए हैं......

नरेश इन सारी स्थितियों को देख चुका था, वहीं—उस कलकत्ते में। उसे लगा, यह कानपुर उस कलकत्ते का छोटा टुकड़ा

है। यहाँ भी आदमी कितना भूखा है, परेशान है। उसके अन्तर से कोई ठंडी चीज छू गई। द्वन्द्वों का ससपर्श……माँ नहीं रही। कानपुर में उसे कुछ नहीं मिला—न वे जिनकी खोज में वह आया था न अपनी पीड़ा को कम करने का कोई सहारा ही। फिर वह लौट रहा था कलकत्ते की ओर—वहाँ जहाँ आदमी चाँदी का पुतला है, जहाँ आदमी हड्डियों की नंगी तस्वीर भी है……

रिक्शे को स्टेशन की ओर लौटते देख कर गिरीश ने पूछा, 'भइया अब हम कहाँ चलेंगे। क्या नीली दीदी के पास? वह कहाँ होंगी?'

नीली!

जैसे लम्बे-लम्बे बाँसों को छूती हुई वायु की एक लहर आगे की उठती भँवर में पड़ कर बोल उठी हो। उसके मन में बहुत भीतर तक न मिल सकने की भावना गरज पड़ी और वह चाहता कि सब कुछ भूल जाय—वह नीली, जो उसके गाँव की साथिन थी, वह नारी जिसने अपने दर्द की कहानी उसे लिख भेजी थी, जिसे वह कुछ नहीं दे सका, कुछ नहीं……

उसने गिरीश से कहा—'हम कलकत्ते चलेंगे? नीली दीदी जाने कहाँ चली गईं।'

गिरीश उससे लिपट गया। उसे माँ याद आ रही थी" वे प्यार ढरका देने वाली हड्डियाँ……

नरेश ने उसके सर पर हाथ रखते हुए कहा—'क्या हुआ रे? क्यों डर गया?'

'डरा नहीं भइया। मुझे लगा, माँ अपनी बाहों में मुझे भर रही है।'

नरेश की भावनाएँ झन्न से टूट गईं। एक पीर थी जो चुभने

लगी। उसने स्नेह से वात को दवा दिया--'अव कलकत्ता चलेंगे गिरीश जो इस कानपुर से वहुत वड़ा है, जहॉ इतने लोग रहते हैं कि सदा मेला लगा रहता है।'

गिरीश मौन हो गया।

नरेश के मन मे रेखाएँ हिलती कॉपती आकार बनती जा रही थीं''' फिर वही कलकत्ते का जीवन जहॉ इन्सान एक ढॉचा है, जहॉ इन्सान, इन्सान नहीं है''' और वालीगंज पूल के जल में संध्या की लाल लाल किरनें'''बिक्टोरिया मेयोरियल की संगमरमरी छाती और धनिक वर्ग '' चौरंगी की रंगीन दुनिया के लोग सब कुछ हिलने लगे'''

लेकिन उस रंग का उससे क्या ? जिसकी नौकरी छूट गई ! उस धन का जोहरा से क्या ? जिसका भाई तपेदिक से मरा। उस सुख का नीली से क्या ? जिसका पति भुवाली चला गया।

अजीव हैं ये रंग, ये सुख, ये पूँजियॉ कि इनके रहते इस धरती पर आदमी को तपेदिक हो जाती है, वह भूख से मरता है, वह गरीव का गरीव है !!

कैसी है यह व्यवस्था कि यहॉ प्यार वढ़ते-बढ़ते घुट कर रह जाता है, कि यहॉ रोशनी की किरनों को कुछ घेरों मे बॉधा गया है कि ·

यही नीली थी न, जो हॅसती तो वेला के खिले-खिले पंखों से दॉत झलक जाते, जो बोलती तो मन को कितना प्यारा संस्पर्श होता और वही नीली सॉझ के आकाश की भॉति उदास हो गई जब उसे कहीं जाना पड़ा, जहॉ वह नहीं जाना चाहती थी '''आज मुझे भी तो कुछ हो गया है · उस उदासी की एक रेंखा मेरे मन तक भी खिंचती सी चली आई है, वह मन को घेरती जा रही है''' उसमे वही टीस है, वह याद की ऑसुओं से गूँथ दी गई है किन्तु मैंने कुछ नही किया '' मैं कुछ नहीं कर पाया'''

उमानाथ भुवाली चला गया। नीली उसके दोस्त के गाँव गई। तब मैं कानपुर में हूँ, तब मैं नीली की खोज में आया हूँ।

अगर वह भुवाली न जाता?

अगर वह भुवाली न जाता??

जैसे मन में कोई बोल उठा :—

यह भुवाली क्या है?
यह भुवाली क्यों है?
तपेदिक है इसीलिए न?
यह तपेदिक क्यों है!
भुखमरी है इसीलिए न!

रिक्शा चला जा रहा था। आदमी चले जा रहे थे। दोनों ओर दूकानें थीं, गुञ्जान समाँ थी।

... वे बरगद की जटाएँ ... और उनके नीचे पग दाबे-दाबे कोई पास आया, जुही सी प्यारी उँगलियों की छुवन हुई और सम्मुख वह खड़ी थी, बोलती हुई—ओ मैं आ गई हूँ। छोड़ जाओगे तो प्राण दे दूँगी ...

मैं नहीं नील, तू छोड़ जाएगी ...

तू छोड़ जाएगी ...

आँखों में तैरती परछाइयाँ झटके से फिसल गईं, फिसल कर हट गईं ...

अब सामने नीली नहीं थी।

उनका वह बरगद नहीं था, वह रस भरी छाँव नहीं थी!

उनको क्या हो गया? वह सब कहाँ बह गईं? कौन जाने??

रिक्शा खड़ा था और सामने ... सामने था कानपुर का ऊँचा ऊँचा, बोलता, हहरता स्टेशन!!

... नरेश फिर कलकत्ता जायेगा ......